जने... के ... सा...त्य में ...गचेतना अभिव्या...त के



...लाहाबाद वि...वविद्यालय, ...लाहाबाद

की

डी0 फि... 0 उपाधि हेतु प्र...त

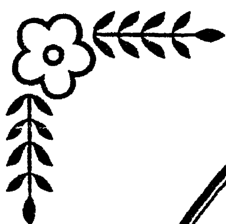
शोध-प्रबन्ध

2002

नि...शक
डॉ० मीरा दीक्षित
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधछात्र
अजय ...ताप सिंह

...लाहाबाद विश्वविद्यालय, ...लाहाबाद




जिनकी स्मृति

निरन्तर

प्रगति की प्रेरणा देती है

तथा

जीवन–संघर्ष

में

कर्त्तव्य–पथ

से

विमुख न होने

का

अटूट संकल्प सृजित करती है–

ऐसे

परम पूज्य पिता

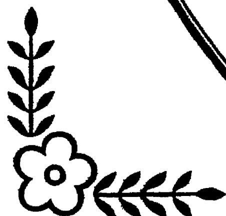
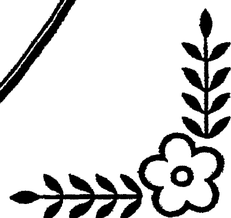
स्वर्गीय समर बहादुर सिंह

की

पुण्य स्मृति

को

सादर समर्पित !

आभार ज्ञाप्ति

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के पूर्ण होने पर उन महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने इस कार्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान की।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मैंने डॉ० मीरा दीक्षित (प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) के निर्देशन में पूरा किया। उनके सुचारु निर्देशन तथा सुदक्ष आलोचनात्मक प्रतिभा ने मेरी अल्पबुद्धि को बहुत कुछ देने की कृपा की है। उनके द्वारा किए गए उपकार के प्रति आभार प्रदर्शन का अभिनय मैं नहीं कर सकता। उनकी सहृदयता के समक्ष मैं नतमस्तक हूँ।

प्रो० राजेन्द्र कुमार (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), जिनका चिंतनशील व्यक्तित्व मुझे निरन्तर प्रेरणा प्रदान करता रहा है, के मंगलाशीष की मैं कामना करता हूँ।

मै कृतज्ञ हूँ प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) का, जिन्होंने मुझे यह विषय सुझाया तथा जिनका चिंतनशील व्यक्तित्व निरन्तर प्रेरणा प्रदान करता रहा है।

डॉ० बी०पी० सिंह (पूर्व चीफ प्रॉक्टर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), डॉ० बी०एन० मिश्र (रीडर, भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), डॉ० राम कृपाल त्रिपाठी (संरक्षक, डॉ० ताराचन्द छात्रावास, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), डॉ० के०पी० सिंह (अधीक्षक, डॉ० ताराचन्द छात्रावास, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद), श्री राम शिरोमणि उपाध्याय (पूर्व प्रधानाचार्य), श्री महेन्द्र नाथ मिश्र (प्रवक्ता), श्री जीत नारायण सिंह (प्रवक्ता) के अगाध स्नेह ने मुझे नई दिशा व प्रेरणा प्रदान की। इन महानुभावों के प्रति मैं आत्मिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

श्रद्धेय श्री विजय सिंह (सीनियर आडीटर, उच्च शिक्षा निदेशालय, इलाहाबाद), श्री नरेन्द्र सिंह 'राना' (अधिवक्ता) एवं श्रीमती कुमुद सिंह ने इस कार्य हेतु मुझे बार-बार प्रेरित किया, इनके प्रति मैं आत्मिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस अवसर पर श्री राकेश शुक्ल (जौनपुर), श्री नन्हकऊ शुक्ल (जौनपुर), श्री कमलेश उपाध्याय (जौनपुर), श्री रमेश सिंह 'राना' (इलाहाबाद), श्री उमेश सिंह 'राना' (इलाहाबाद), श्री शांति शेखर सिंह (मिर्जापुर), श्री विनोद तिवारी (जौनपुर), श्री धर्मेन्द्र सिंह 'नाटू' (जौनपुर) के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अध्ययन काल में मेरी हर संभव मदद की।

मैं कृतज्ञ हूँ श्री मकरन्द सिंह (सुल्तानपुर) एवं श्रीमती स्मिता सिंह (सुल्तानपुर), डॉ० वन्दना सिंह गौर (इलाहाबाद), श्री संजय सिंह गौर (इलाहाबाद), श्री विशाल सिंह (आजमगढ़), श्री विपुल श्रीवास्तव (फैजाबाद), डॉ० उमेश सिंह (प्रवक्ता, अर्थशास्त्र), श्री अर्जुन सिंह (अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद), श्री अतुल कृष्ण सिंह 'बंटी' (कर अधीक्षक), श्री सुभाष मिश्र (इलाहाबाद), श्री मनोज कुमार सिंह (जौनपुर), श्री वागीश मिश्र (बलिया), श्री मुनीश मिश्र (जौनपुर), श्री लक्ष्मी कांत सिंह (शोध छात्र, हिन्दी), श्री श्याम नारायण त्रिपाठी (प्रवक्ता, भूगोल), श्री वीरेन्द्र सिंह (शोध छात्र, हिन्दी), श्री मनमोहन सिंह (अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद), श्री ऋतेश उपाध्याय (अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद), श्री प्रेमेन्द्र कुमार त्रिपाठी (प्रवक्ता, हिन्दी), श्री प्रफुल्ल राय (आजमगढ़), श्री रजनीश पाण्डेय (ग्राम पंचायत अधिकारी), सुश्री अर्चना दुबे (सोनभद्र), सुश्री रुखसाना परवीन (वाराणसी), श्री मनोज कुमार सिंह (सुल्तानपुर), श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह (जौनपुर) का, जिनके सहयोग और प्रोत्साहन से यह कार्य संभव हो सका।

इस अवसर पर पूजनीया माँ श्रीमती शान्ती सिंह का स्मरण करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने अपने भौतिक सुखों की परवाह न करते हुए मेरे शैक्षिक उन्नयन से ही हर्षित होने का व्रत लिया है।

श्रद्धेय श्री आई०बी० सिंह (पूर्व प्राचार्य, रुइया कालेज, मुम्बई) के चिन्तनशील व्यक्तित्व ने मुझे निरन्तर प्रेरित किया है। उनके प्रति अपनी श्रद्धा और कृतज्ञता को व्यक्त करना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

मेरे मित्र डॉ० राकेश सिंह (प्रवक्ता, राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर), श्री संजय पाण्डेय (शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र) तथा श्री मृगेन्द्र प्रताप सिंह (शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र, शिक्षा संकाय) ने सामग्री संचयन से लेकर शोध-प्रबन्ध के मुद्रण तक जो सहयोग दिया वह अमूल्य है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना उनके द्वारा किए गए उपकार को कम करके आँकना होगा।

मेरे मित्र श्री सतीश कुमार सिंह (आजमगढ़) ने शोध-प्रबन्ध पूर्ण करने के लिए बार-बार आग्रह किया। उनकी प्रेरणा एवं सहयोग से ही यह श्रमसाध्य कार्य समय रहते पूरा हो सका। इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

मैं विशेष रूप से आभारी हूँ श्री राजेन्द्र बहादुर सिंह (कार्यालय अधीक्षक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) का, जिनका सहयोग मुझे निरन्तर मिलता रहा है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में जिन विद्वज्जनों के विचारों एवं ग्रंथों का सहयोग लिया गया है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इसी क्रम में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के पुस्तकालय के प्रति मैं आभारी हूँ, जहाँ मुझे बहुमूल्य ग्रंथों के अध्ययन का अवसर मिला।

इस अवसर पर 'जय माँ दुर्गे कम्प्यूटर प्वाइंट' मनमोहन पार्क, कटरा, इलाहाबाद परिवार के सदस्यों श्री रतन खरे, श्री रमेश कुमार यादव, श्री सन्तोष दास, श्री चन्द्र भान सिंह एवं श्री राम कुमार तिवारी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने तत्परता एवं आत्मीयता से शोध-प्रबन्ध का मुद्रण कार्य सम्पन्न किया।

अजय प्रताप सिंह

दिनांक : 19.12.2002 (अजय प्रताप सिंह)

विषयानुक्रम

विषय-क्रम

पृष्ठ संख्या

अध्याय–3

अध्याय–4

अध्याय–5

अध्याय–6

भूमिका

भूमिका

प्रेमचन्दोत्तर युग के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कथाकारों में जैनेन्द्र कुमार का नाम सर्वप्रमुख है। प्रेमचन्द के बाद जो सबसे सक्रिय रचनात्मक पीढी आई, जैनेन्द्र जी उसके अग्रदूत थे। उन्हें प्रेमचन्द का उत्तराधिकारी कहा जाता है। जैनेन्द्र जी और उनके कथा–साहित्य का हिन्दी साहित्य में असाधारण महत्व है। हिन्दी कथा–साहित्य को जो सघन अस्मिता और दार्शनिक दृष्टि जैनेन्द्र जी ने दी, वह आन्तरिक सत्य से हमारा साक्षात्कार कराती है। प्रेमचन्दोत्तर युग से रचना प्रारम्भ करके वे कथा–साहित्य जगत् में आये। क्योंकि अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा कथा साहित्य में युग को आत्मसात् करने की क्षमता अधिक होती है। कथा साहित्य में युग चेतना को अभिव्यंजित करना अपेक्षाकृत आसान होता है। इसलिए जैनेन्द्र को युग चेतना की अभिव्यंजना में अपनी प्रतिभा का उल्लास दिखाई पडा।

जैनेन्द्र ने उपन्यास–कहानी के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ लिखा है, किंतु साहित्य जगत् में उन्हें मूलतः कथाकार के रूप में जाना जाता है। इसी रूप में वह साहित्य–जगत् में प्रतिष्ठित भी हैं। उन्हें हिन्दी कथा–साहित्य को नवीन दिशा देने का श्रेय प्राप्त है। 'त्यागपत्र', 'सुनीता', 'परख', 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विवर्त', 'जयवर्धन', आदि उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक जीवन–दर्शन रूपायित हुआ है। जैनेन्द्र प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्ति के धरातल पर अपने पात्रों के माध्यम से मानवीय और कौतूहलपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं। उनकी चेष्टा बाह्य से अधिक अन्तर्मुखी होती है। उन्होंने जीवन की बाह्य समस्याओं को न लेकर जीवन के उत्स को अपनी रचना का

केन्द्र बनाया है। उनके कथा–साहित्य में मनुष्य के दिन–प्रतिदिन के जीवन–व्यापार से अधिक उसमें निहित आंतरिक सत्य की ओर दृष्टिपात किया गया है। उनके उपन्यासों तथा कहानियों में आधुनिक युग के मानव की मनोगत् समस्याओं जैसे–काम (सेक्स) तथा विभिन्न मानसिक द्वन्द्वों का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र हिन्दी साहित्य के ऐसे पहले समर्थ कथाकार हैं जिन्होंने अपने कथा–साहित्य में सेक्स (काम) को अध्यात्म मार्ग में बाधक नहीं अपितु अध्यात्म मार्ग की एक सीढी माना है।

जैनेन्द्र का कथा–साहित्य युग चेतना का संवाहक है। उनके कथा–साहित्य में युग चेतना का सर्वत्र बोलबाला है। युग के गतिशील धरातल पर जीवन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करके साहित्य की रचना करने वाले जैनेन्द्र विशिष्ट कथाकार हैं। उनके कथा–साहित्य में युग का स्वर ही सर्वाधिक मुखर है।

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य का पर्याप्त अध्ययन हुआ है और कई शोध–प्रबंध एवं समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाश में आ चुके हैं, जिनमें प्रमुख हैं –

1. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास–रघुनाथ शरण झालानी
2 जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा–रामरतन भटनागर
3. जैनेन्द्र–व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक–बाँके बिहारी भटनागर
4. जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० देवराज उपाध्याय
5. जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविश्लेषण–परक शैली–तात्विक अध्ययन–लक्ष्मीकांत शर्मा

6. जैनेन्द्र का जीवन दर्शन—डॉ० कुसुम कक्कड

7 जैनेन्द्र के उपन्यासों में शिल्प—ओम प्रकाश शर्मा।

8. उपन्यासकार जैनेन्द्र और उनके उपन्यास—डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव

9. उपन्यासकार जैनेन्द्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन—डॉ० मनमोहन सहगल

इन पुस्तकों में जैनेन्द्र के रचनात्मक साहित्य का मूल्यांकन करते हुए विभिन्न महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों की ओर संकेत किया गया है। किन्तु अभी तक जैनेन्द्र की समग्र कृतियों का विवेचन करते हुए युग के सन्दर्भ में उनकी जागरूकता और प्रगतिशीलता का, अर्थात् उनकी युग चेतना का पृथक् रूप में व्यापक और सर्वांगीण विवेचन अभी तक नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध इसी अभाव की पूर्ति की दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत शोध—प्रबंध को छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। अध्याय एक का शीर्षक है – 'साहित्य और युग चेतना : अन्तर्सम्बन्ध'। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, यह बात कथा—साहित्य के सम्बन्ध में और भी अनुकूल लगती है। कथा—साहित्य मानव जीवन की निकटतम विधा है। वह मानव जीवन की धरोहर है, उसका सजीव चित्र है। मानव जीवन की आरंभिक रूपरेखा का विधान कथा—साहित्य में ही मिलता है, जिसका प्रगाढ़ सम्बन्ध युग से होता है। कथा—साहित्य में युग का सर्वांगीण रूप सुरक्षित रहता है। उसकी विवेचना कर हम युग का परिचय प्राप्त कर लेते हैं। कथाकार अपनी कथा के माध्यम से अपने दर्शन एवं लक्ष्य को प्रस्तुत करता है। उसका यह दर्शन एवं लक्ष्य युग चेतना से जुड़ा होता है। कथा—साहित्य मानव—चरित्र एवं उसके यथार्थ जीवन के कार्यों की

अभिव्यंजना करने वाली विधा है। कथा—साहित्य में लेखक की निजी धारणाओं एवं इच्छाओं के साथ—साथ युग का स्वरूप भी समाया रहता है।

विश्व कथा—साहित्य का जन्म एवं विकास युग चेतना के समानान्तर ही हुआ है। कथा—साहित्य युग चेतना का संवाहक ही नहीं अपितु युग की गतिशीलता का भी चितेरा है। आज का जीवन उथल—पुथल और अन्तर्द्वन्द्व भरा है। मानव मन की जटिलताएँ बढ गयी हैं। इस कारण युग चेतना भी असाधारण हो गयी है।

कथाकार युग से प्रेरणा ग्रहण करता है तथा युग को प्रेरित भी करता है। वह जब युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है, तो युग द्रष्टा की भूमिका में होता है और जब युग का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करता है तब भी वह युग द्रष्टा ही होता है। वह युग द्रष्टा और युग स्रष्टा का सम्मिलित रूप होता है। प्रस्तुत अध्याय में, कथाकार की चेतना का युग चेतना से सम्बन्ध का विवेचन किया गया है। युग चेतना का आशय, उसका महत्व, उसके विविध स्तर, परम्परा और चेतना के अन्तर्सम्बन्ध, पृष्ठभूमि और चेतना का अन्तर्सम्बन्ध, परम्परा और पृष्ठभूमि का अन्तर्सम्बन्ध तथा युग चेतना से साहित्य, और समाज के जुडाव आदि के विवेचन का प्रयास किया गया है। कथा—साहित्य में युग चेतना का क्या स्वरूप है — इस विषय का भी विवेचन किया गया है।

अध्याय दो का शीर्षक है— 'जैनेन्द्र के कथा—साहित्य में युगीन सामाजिक चेतना'। इसके अन्तर्गत कथाकार और समाज के पारस्परिक संबंध का विवेचन किया गया है। मानव चेतना समाज—सापेक्ष होती है और कथा—साहित्य मानव चेतना का सवाहक होता है। साहित्य समाज निरपेक्ष नहीं हो सकता। वह जीवन की परिकल्पनात्मक अभिव्यक्ति है और उसके द्वारा जीवन के सौन्दर्यात्मक

और आनन्द पक्ष का उद्घाटन होता है। कथा–साहित्यकार सामाजिक चेतना का प्रेरक एवं प्रसारक होता है। उसमें सर्जनात्मक चेतना प्रबल होती है। परिस्थिति–जन्य अनुभव की अमूल्य राशि को कल्पना का पुट देकर वह कला के माध्यम से उसे व्यक्त करता है, जिस प्रकार अग्नि से अग्नि प्रज्वलित होती है; उसी तरह कथाकार युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रेरणा ग्रहण करके युग का चित्र प्रस्तुत करता है।

जैनेन्द्र का विशाल कथा–साहित्य युग का दर्पण है। जिसमें अनेक सामाजिक समस्याएँ विभिन्न रंगों में प्रतिबिम्बित होती हैं। कथाकार के लिए समाज वह आधार है, जहाँ वह स्वयं जन्म लेकर जीवन के विकासशील सोपानों पर चढ़ता हुआ, सामाजिक जीवन के स्वानुभूत चित्र प्रस्तुत करता है। जैनेन्द्र साहित्य को सामाजिक यथार्थ का दर्पण ही न मानकर उसे लोक–मंगल की कामना से जोड़ते हैं। उनके अनुसार साहित्यकार को सामाजिक यथार्थ लोक–मंगल की कामना से ही जोड़कर प्रस्तुत करना चाहिए। साहित्यकार लोक मंगल का साधक होता है।

कथा–साहित्यकार अपने को समाज से अधिकाधिक जोड़कर रखता है। जैनेन्द्र जैसे युगचेता कथाकार की सम्पूर्ण साहित्य–सर्जना युग चेतना का ही वहन करती है। जैनेन्द्र ने सामाजिक व्यवस्था की अनिवार्यता को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है। उनके कथा–साहित्य में पात्र सामाजिक मान्यताओं एवं मर्यादाओं का कष्ट सहकर भी निर्वाह करते दिखाए गए हैं। जैनेन्द्र व्यक्ति–मन के कथाकार हैं, उनके कथा–साहित्य में व्यक्ति मन की स्थितियों का निष्पक्ष चित्रण हुआ है। इस चित्रण में जैनेन्द्र की सहानुभूति व्यक्ति के साथ होते हुए भी सामाजिक अवहेलना नहीं पाई जाती। वह अपने कथा–साहित्य में सामाजिक तथा पारिवारिक स्तर पर व्यक्ति के

विभिन्न रूपों का चित्रण करते हैं। सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्थाओं एवं समय और परिस्थितियों के कारण उपजी समस्याओं का भी उनके कथा–साहित्य में चित्रण हुआ है। कथाकार जैनेन्द्र के इसी सामाजिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति, परिवार और समाज के परिप्रेक्ष्य में ब्रह्मचर्य, विवाह, प्रेम–विवाह, प्रेम और विवाह, अनमेल विवाह, विवाह–विच्छेद, मातृत्व, वेश्या का स्वरूप तथा वैधव्य आदि का विवेचन किया गया है।

अध्याय तीन का शीर्षक है – 'जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में सांस्कृतिक–धार्मिक–आर्थिक चेतना'। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में सांस्कृतिक चेतना के स्वरूप का विवेचन किया गया है। इसमें संस्कृति शब्द के अर्थ एवं महत्त्व को स्पष्ट करते हुए जैनेन्द्र के कथा साहित्य में अन्तर्निहित सांस्कृतिक तत्वों का मूल्यांकन किया गया है। जैनेन्द्र का कथा–साहित्य प्राचीन और नवीन दोनों संस्कृतियों को अपने में सँजोए हुए है। पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के आगमन ने भारत में शिक्षित और अशिक्षित दो अलग–अलग सांस्कृतिक वर्गों का निर्माण किया। ये सांस्कृतिक वर्ग नागर और ग्राम्य दो रूपों में जाने गए। जैनेन्द्र ने भारतीय समाज में पाश्चात्य संस्कृति के आगमन और उससे पड़ने वाले प्रभावों को बखूबी समझा था। वह भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षधर थे। किन्तु पश्चिम के सम्पर्क से उत्पन्न हुई नवीन चेतना का उन्होंने विरोध नहीं किया। यह नवीन चेतना विचार–स्वातंत्र्य की पक्षधर थी। जैनेन्द्र की सांस्कृतिक चेतना युग जीवन से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी। वह अपने कथा–साहित्य में युगीन सांस्कृतिक तत्वों को अभिव्यक्त करने में कितने सफल हुए हैं – इसी का विवेचन प्रस्तुत शोध–प्रबंध में किया गया है।

जैनेन्द्र के कथा—साहित्य में धार्मिक चेतना के अन्तर्गत जैनेन्द्र की धार्मिक दृष्टि, धर्म का अर्थ और स्वरूप, धर्म और सम्प्रदाय, धर्म और विज्ञान, धर्म और राजनीति, जीवन में धर्मों की उपादेयता आदि का विवेचन किया गया है। जैनेन्द्र ने धर्म को जीवन का आवश्यक अग माना है। मानव जीवन के सभी कार्यों की सार्थकता उसके धर्ममय होने में है। जैनेन्द्र स्वयं जैन धर्म को मानने वाले थे, फिर भी हिन्दू, बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई आदि धर्मों का सम्मान करते थे। उनके पात्र धर्म में अपनी अटूट आस्था प्रकट करते हैं। दुःखों और संघर्षों को झेलते हुए भी उनके पात्र धर्म—मार्ग से विचलित नहीं होते।

उनके अनुसार धर्म का मूल उद्देश्य मनुष्य को मोक्ष दिलाना है। यह मोक्ष अहं से मुक्त हुए बिना नहीं मिल सकता। धर्म जीवन का वह केन्द्र हैं जहाँ से मनुष्य अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है और अन्त भी करता है।

जैनेन्द्र के कथा—साहित्य में आर्थिक चेतना के अन्तर्गत सामाजिक और आर्थिक विषमताओं का उनके कथा—साहित्य के संदर्भ में विवेचन किया गया है। जैनेन्द्र के कथा—साहित्य में आर्थिक विषमता से पीड़ित मानव अनेक रूपों में दिखाई पडते हैं। 'कल्याणी', 'सुखदा', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर' और 'अनामस्वामी' में उन्होंने आर्थिक वैषम्य का विशद् चित्रण किया है।

जैनेन्द्र ने समाज के स्तर को बढ़ाने के लिए मानवीय मूल्यों को विशेष महत्व दिया। उनका कहना था कि ये मानवीय मूल्य अमीरी के प्रति व्यर्थ के गर्व को समाप्त करके ही स्थापित हो सकते हैं। उन्होंने मनुष्य की अवहेलना और अर्थ के सत्कार को लेकर गहरा दुःख व्यक्त किया। अर्थ की शक्ति ने ही गरीब और अमीर में भेद उत्पन्न किया, जिससे मनुष्य मनुष्य को पहचानने में असमर्थ है।

अपने कथा–साहित्य में जैनेन्द्र पूँजीपतियों के प्रति गहरा आक्रोश व्यक्त करते हैं। वह समाज में उत्पन्न आर्थिक विषमता का मूल दायित्व पूँजीपतियों पर ही मानते हैं। उन्होंने अपने पात्रों द्वारा पूँजीपतियों के विरूद्ध हिंसात्मक आक्रोश को भी व्यक्त किया है। प्रस्तुत अध्याय में जैनेन्द्र की आर्थिक दृष्टि, अर्थ और मानव का सम्बन्ध तथा उनकी पूँजीवादी दृष्टि का विवेचन किया गया है।

अध्याय चार का शीर्षक है– 'जैनेन्द्र के कथा साहित्य में दार्शनिक चेतना'। इसके अन्तर्गत कथा–साहित्य और दार्शनिक चेतना का अन्तर्सम्बन्ध, जैनेन्द्र की दार्शनिक चेतना का स्वरूप, नियतिवादी दार्शनिक चेतना, आस्थामूलक भाग्यवादिता, निष्काम कर्मयोग, पुनर्जन्म, मृत्यु और अमरत्व आदि का जैनेन्द्र के कथा–साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया है।

दर्शन और साहित्य का गहरा सम्बन्ध है। दर्शन जीवन और जगत् के रहस्यों का उद्घाटन करता है और साहित्यकार भी यही करता है। परन्तु दोनों की क्रियाएँ भिन्न–भिन्न हैं। साहित्य में अन्तर्दृष्टि के माध्यम से जीवन के विविध रूपों की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। एक सफल साहित्यकार जीवन और दर्शन–दोनों का समन्वित रूप अपने साहित्य में प्रस्तुत करता है।

जैनेन्द्र आस्थावादी कथाकार हैं। उनके कथा–साहित्य में जो दार्शनिकता दृष्टिगत होती है, उसमें उनकी आस्था की हार्दिकता ही अन्तर्भूत है। उनके कथा–साहित्य का प्रमुख आदर्श सत्य का साक्षात्कार करना रहा है। सत्य आत्मतत्व है। दर्शन का उद्देश्य सत्य के प्रति व्यक्ति की जिज्ञासा को शांत करना है। इसी दार्शनिक सत्य को जैनेन्द्र अपने कथा–साहित्य में उतारते हैं। जैनेन्द्र के अनुसार जीवन संघर्ष–पूर्ण यात्रा है। मनुष्य अपने भाग्य और परिस्थिति से जूझता हुआ अपनी जीवन–यात्रा को पूर्ण करने का प्रयास करता है।

इस जीवन–यात्रा में आए अवरोधों को दूर करने का उपाय दर्शन ही बताता है।

जैनेन्द्र की दार्शनिक चेतना उनकी कृतियों में नारी–पुरुष सम्बन्धों, अन्तः–बाह्य परिवेशों आदि के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने आत्मानुभूत सत्य का प्रकटीकरण अपने कथा–साहित्य के माध्यम से किया है।

अध्याय पाँच का शीर्षक है – 'जैनेन्द्र के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक चेतना'। इसके अन्तर्गत कथा–साहित्य और मनोविज्ञान का अन्तर्सम्बन्ध पुरुष पात्रों के माध्यम से व्यक्त जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक चेतना तथा नारी पात्रों के माध्यम से व्यक्त जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक चेतना का विवेचन किया गया है।

मनोविज्ञान के प्रवेश ने साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की। मनोविज्ञान से सबसे अधिक प्रभाव कथा–साहित्य ने ग्रहण किया। जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में मनोविज्ञान का प्रभाव प्रत्यक्ष है। उनके पात्र मनोवैज्ञानिक दर्शन की अभिव्यक्ति करते हैं। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण उनके कथा–साहित्य में मिलते हैं।

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में व्यक्ति की प्रधानता है। उनके पात्र व्यक्तिपरक हैं। उनका मूल्यांकन, उनकी निजी चिन्तन पद्धति और उनकी निजी परिस्थितियों तथा अलग प्रकार के आचरण पर आधारित है।

अध्याय छः का शीर्षक है – 'जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में शिल्पगत चेतना'। इसके अन्तर्गत कला और शिल्प तथा युगचेतना के अन्तर्सम्बन्ध का विवेचन करते हुए कला का स्वरूप, साहित्य में शिल्प–प्रयोग तथा उसका आशय, जैनेन्द्र के कथा–साहित्य में

शिल्पगत चेतना के विविध तत्वों का विवेचन किया गया है। साहित्य में कला और शिल्प दोनों का समान आदर है। कोई भी कला युगीन सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक गतिविधियों से जुड़ी होती है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ–साथ मानव की अभिरुचि और सौन्दर्य–चेतना में परिवर्तन होता रहा है। सौन्दर्य–चेतना कला की जननी है। अतः युग चेतना कला और शिल्प सापेक्ष होती है।

साहित्यिक कला के संदर्भ में शिल्प का अर्थ बहुत व्यापक है। शिल्प विधि भी है और विधान भी। शिल्प के अन्तर्गत वे सभी उपाय–विधियाँ–प्रविधियाँ, क्रियाएँ–प्रतिक्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा कलाकार सौन्दर्य की सृष्टि करता है। शिल्प विषय और अनुभूति को विशेष प्रकार से अभिव्यक्त करने का साधन है।

जैनेन्द्र कुमार ने अपने कथा–साहित्य में परम्परा से चले आ रहे शिल्प–विधान को एक नया आयाम दिया। शिल्प के सम्बन्ध में उन्होंने स्वतंत्रता पूर्वक काम लिया। उन्होंने शिल्प को इतना सजीव बना दिया कि पाठक की कल्पना–शक्ति जाग्रत हो उठी। चाहे पात्रों का चरित्र–चित्रण हो या कथा का वर्णन, उन्होंने भाषा और शिल्प के स्तर पर बड़ी सूझ–बूझ से काम लिया। उनके कथा साहित्य मे शिल्प–प्रयोग के विविध रूप मिलते हैं। एक तरह से शिल्प–वैशिष्ट्य ही उन्हें अपने समकालीन कथाकारों से अलग एक विशिष्ट स्थान प्रदान करता है। उनके शिल्प में प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। इस अध्याय में उनके शिल्प–प्रयोग की विविधता का उनके कथा–साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विवेचन किया गया है और यह भी विवेचन किया गया है कि उनकी शिल्पगत चेतना कहाँ तक युग–चेतना–सापेक्ष है।

उपसंहार में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के निष्कर्षों का समाकलन करते हुए जैनेन्द्र की युग चेतना का मूल्यांकन किया गया है। इसके अन्तर्गत यह मूल्यांकन किया गया है कि जैनेन्द्र का कथा–साहित्य

उनकी युग चेतना का प्रतिफल है। उनके सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक एव रचना सम्बन्धी शिल्पगत प्रयोगो एव अवधारणाओ का भी मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध से यदि जैनेन्द्र के कथा–साहित्य और उनकी युग चेतना का स्वरूप स्पष्ट हो सका, तो शोधकर्त्ता का प्रयास सार्थक होगा, इसी प्रत्याशा मे यह शोध–प्रबन्ध विद्वज्जनो के सम्मुख प्रस्तुत है।

अजय प्रताप सिंह

दिनाक: 19.12 2002

(अजय प्रताप सिंह)

अध्याय–1

साहित्य और युग चेतना : अन्तर्सम्बन्ध

अध्याय–1

साहित्य और युग चेतना : अन्तसम्बन्ध

युग चेतना

'चेतना' शब्द अपने आप मे बडा व्यापक अर्थ रखता है। यह 'बोध' या 'चैत्य' का समानार्थी माना जा सकता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' मे 'चेतना' को परिभाषित करते हुए लिखा गया है–

'चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है, अर्थात् वस्तुओ, विषयो, व्यवहारो का ज्ञान। चेतना की परिभाषा कठिन है, पर इसका वर्णन हो सकता है। चेतना की प्रमुख विशेषता है– निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह, इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओ में एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य। चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव–वैचित्र्य से प्रमाणित होता है और चेतना की अविछिन्न एकता हमारे व्यक्तिगत तादात्म्य के अनुभव से। विभिन्न विषयो की अलग–अलग समय पर चेतना होने पर हम सदा यह भी अनुभव करते है। कि 'मैंने अमुक वस्तु देखी थी।' यह हमारी चेतना अखण्ड और अविच्छिन्न न होती तो यह अनुभव हमें न होता। लेकिन यह अखण्डता और अविच्छिन्नता साहचर्य से ही सम्भव होती है। विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओ मे साहचर्य (अथवा आसग) के द्वारा इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है कि वे मिलकर एक चेतना का अग बन जाती हैं। मानसिक संघर्ष, अत्यधिक दमन और भावात्मक आघातो से ये साहचर्य नष्ट भी हो जाते है। तब चेतना भी बिखरी –बिखरी सी हो जाती है और व्यक्तित्व खण्डित । चेतना मे साहचर्य नष्ट होने की अनेक मात्राएँ हो सकती है, यदि कम मात्रा मे हो तो कोई विशेष

व्यवहार, कोई विशेष मानसिक क्रिया सम्पूर्ण चेतना से वियोजित हो जाती है, पर व्यक्तित्व के लिए गम्भीर समस्या नही उठती। पर यदि अधिक मात्रा मे हो तो बहुव्यक्तित्व, खण्डित–व्यक्तित्व आदि रोग हो जाते हैं।[1]

'चेतना' शब्द का उपयोग प्राय उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक अर्थ मे होता है, पर कभी–कभी इसका प्रयोग दार्शनिक अर्थ मे भी हो सकता है। विज्ञानवादी और प्रत्ययवादी दार्शनिक चेतना या विज्ञान को शाश्वत और एकमात्र सत्ता मानते हैं। इस अर्थ मे 'चेतना' शब्द 'आत्मा' का समानार्थक हो जाता है, परन्तु साहित्य मे और दर्शन मे भी इस अर्थ मे प्राय 'चैतन्य' शब्द का प्रायोग किया जाता है। 'चेतना 'शब्द सामान्य मनोवैज्ञानिक अर्थ मे ही अधिक आता है।

चेतना की मुख्य विशेषता है–लगातार परिर्वतनशीलता अथवा वेग के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओ मे एक अविच्छिन्न एकता और साहचर्य। इसी सन्दर्भ मे डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं–

'चेतना' स्वय को और अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातो का मूल्याकन करने की शक्ति का नाम है। किसी विशेष युग की अपनी मौलिक चेतना हुआ करती है जो युगों के परिवर्तन के साथ–साथ अपने कलेवर को भी परिवर्तित किया करती है। साहित्य मे युग की परिस्थितियॉ और समाज की चित्रवृत्तियॉ प्रतिबिम्बित हुआ करती हैं।[2]

---

1 हिन्दी साहित्य कोश भाग–1 सम्पादक डॉ०– धीरेन्द्र वर्मा पृष्ठ – 247

2 डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी–हिन्दी विश्व कोश, पृष्ठ – 282

युग चेतना को हम अवधि की सीमा, विशेष की सीमा और जगह की सीमा से बॉध नही सकते, बल्कि इसमे लगातार परिवर्तन होता रहता है। समाज, सस्कृति, राजनीति, धर्म, दर्शन, अध्यात्म तथा विज्ञान आदि का स्वरुप जिस युग मे जैसा रहता है, उसे ठीक उसी रुप मे ग्रहण कर अभिव्यक्ति करना कथाकार के साहित्य की युग चेतना कही जाती है। डॉ० पन्ना द्विवेदी के शब्दो मे—

'युग भावनाओ की अभिव्यजना साहित्य मे युग चेतना की सज्ञा पाती है।[3]

'युग चेतना' युग के शुभ, सत्य तथा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक प्रवृत्तियो की जानने की क्षमता है, जो इससे अवगत कराती है कि उचित क्या है और अनुचित क्या है। साधारण व्यक्ति परिस्थितियो से प्रभावित नही होता, न प्रभाव ही ग्रहण कर पाता है, परन्तु साहित्यकार युगीन परिस्थितियो से प्रभावित हो अपनी साहित्यिक चेतना के माध्यम से उस युग को अपने कथा साहित्य मे व्यक्त कर देता है। चेतना स्वय मे एक स्वतन्त्र अस्तित्व का अनुभव करती है।

मनोविज्ञान के अनुसार—चेतना मनुष्य मे उपस्थित वह महत्वपूर्ण तत्व है, जिसके कारण उसे विभिन्न प्रकार की अनुभूतियॉ प्राप्त होती हैं। इस तत्व के बिना मनुष्य सवेगहीन हो जाता है और वह जीवन की अनुभूतियो से वचित भी हो जाता है। अनुभूतियो के बिना मनुष्य, मनुष्य नही। वह पशु की भॉति हो जाता है। इसे अनुभव कहा जाता है। यह एक आन्तरिक क्रिया होती है। जो बाह्य परिणामो की प्रतिक्रिया स्वरुप उत्पन्न होती है।

---

3 डॉ० पन्ना द्विवेदी – दिनकर के काव्य में युगीन चेतना, पृष्ठ – 3

सुख—दु ख की अनुभूतियॉ चेतना की देन है, जिनकी उत्पत्ति बाह्य परिस्थितियो के माध्यम से हुआ करती है। साहित्यिक क्षेत्र मे अनुभूतियो का अत्यधिक महत्व है। 'हिन्दी साहित्य कोश' मे विचार व्यक्त किया गया है—साहित्य क्षेत्र मे विभिन्न प्रकार की अनुभूतियो का वर्णन हुआ है— इसमे काव्यानुभूति, रसानुभूति, भावनानुभूति, लौकिकानुभूति, विलक्षणानुभूति, रहस्यानुभूति, दिव्यानुभूति, प्रत्यज्ञानुभूति, समानानुभूति, सहानुभूति तथा सौन्दर्यानुभूति प्राप्त होती है।[4]

चेतना एक ऐसा साधन है जिसके कारण ही हम देखते, सुनते, समझते एव अनेक विषयो पर चिन्तन करते है। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने अपने मत का प्रतिपादन निम्नाकित शब्दो मे किया है —

'चेतना का प्रवाह जीवन का द्योतक है। 'अह' इस चेतना की अभिव्यक्ति है। एक ओर यदि चेतना जीवन के भार को वहन करती है, तो दूसरी ओर वह जीवन के प्रसग मे सक्रिय भाग लेती हैं।[5]

सक्रिय भाग का अर्थ निष्क्रियता नही है और न ही उसका उद्देश्य यह है कि चेतना उर्ध्वमुखी हो, अर्न्तमुखी न हो।

चेतना और मानव — चरित्र मे मौलिक सम्बन्ध होता है तथा उसमे एक विशेष गुण है, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण चरित्र सगठित रहता है और जीने की वास्तविक अभिव्यक्ति के साथ — साथ उसके विभिन्न कार्य सम्पादित होते रहते हैं। डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी के शब्दो मे —

'किसी मनुष्य की चेतना और चरित्र केवल उसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति नही होते, यह बहुत दिनो के सामाजिक प्रक्रम के परिणाम होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने वशानुक्रम को स्वय प्रस्तुत करता है।

---

4 हिन्दी साहित्य कोश भाग—1, सपादक — डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ — 27
5 श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा — नई कविता के प्रतिमान — 224

वह विशेष प्रकार के सस्कार पैतृक सम्पत्ति के रुप मे पाता है। वह इतिहास को स्वय मे निरुपित करता है, क्योकि उसने जीवन मे अनेक प्रकार की शिक्षा तथा प्रशिक्षण को प्राप्त किया है। इसके अलावा वह अन्य लोगो को भी अपने माध्यम मे निरुपित करता है, क्योकि उनका प्रभाव उसके जीवन पर उनके उपदेश तथा उदाहरण के माध्यम से पडा है।[6]

मानवीय चेतना मे ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक चेतना का समावेश होता है। वह मनुष्य की विशिष्टता है जो उसे वातावरण के बारे मे ज्ञान कराती है। इस प्रकार के ज्ञान को विचार शक्ति कहा जाता हैं। मनुष्य की सभी क्रियाओ मे गतिशील प्रवृत्तियो का प्रमुख कारण चेतना ही है। चेतना की प्रगति सामाजिक वातावरण के साथ होती है। वातावरण के प्रभाव से मनुष्य नैतिकता और व्यवहार–कुशलता प्राप्त करता है। यह चेतना का विकास कहा जाता है। समय की गतिशील पृष्ठभूमि पर साहित्यकार की बदलती अनुभूतियो को युग चेतना के नाम से विभूषित किया जाता है। विकास की चरम सीमा मे चेतना स्वतन्त्रता की अनूभूति करती है। वह सामाजिक बातो को प्रभावित कर सकती है और उनसे स्वय प्रभावित भी होती है, परन्तु इस प्रभाव से वह अपने को अलग भी कर सकती है। डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी ने चेतना की इस प्रकार की अनूभूति को शुद्ध चैतन्य माना है।[7] साहित्यकार सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक स्वरुप से प्रभावित होता है और उसे उसी मे प्राप्त कर साहित्यिक स्वरुप प्रदान करता है। यही साहित्यिक स्वरुप युगचेतना का साहित्य कहा जाता है, और यदि कवि है तो उसका काव्य युगचेतना का काव्य कहलाता है। साहित्यकार, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो रूपो में मानव – जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है।

---

6 डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्व कोश, भाग–4, पृष्ठ – 182
7 डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी – हिन्दी विश्वकोश भाग–4 पृष्ठ – 283

मानव—जीवन से प्रेरणा प्राप्त करते समय भावुक ह्रदय दो प्रकार से उत्प्रेरित होता है—प्रथम तो उसके हृदय पर मानव—जीवन की घटनाएँ यथार्थ रूप मे उतर आती है, जिन्हे वह कला के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। द्वितीय वह है, जब साहित्यकार घटनाओ के क्रियात्मक रूप से प्रेरित नही होता, अपितु उनके प्रति उसके हृदय मे प्रतिक्रिया होती है और उनकी आलोचना—प्रत्यालोचना करता हुआ एक अभिनव भावी मार्ग की ओर अग्रसर होकर युग जीवन को आदर्श की ओर ले जाने का भावनात्मक प्रयत्न करता है। ऐसी रचनाओ को युग—प्रतिनिधि के रूप मे स्वीकार किया जाता है, जिनमे युग चेतना के प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी देते हैं तथा इनकी प्रेरणाएँ युगीन तो होती ही हैं, साथ ही उनमे भावी युग के नवनिर्माण का सन्देश भी होता है।

युगचेतना की महत्ता

साहित्य मे युग चेतना का अपना विशिष्ट स्थान है। युग का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्यकार युगीन चेतना को अनिवार्य रूप से स्वीकार करता है। युग चेतना के अभाव मे वह मानव—जीवन की वास्तविक समस्याओं को न तो पहचान सकता है और न ही जीवन की यथार्थ समस्याओ से समाज को अवगत करा सकता है और न ही उसे उचित दिशा—निर्देश करा सकता है।

साहित्यकार का परम कर्तव्य हो जाता है कि वह केवल व्यक्ति के दृष्टि—कोण को ही महत्व न दे, अपितु सामाजिक दृष्टिकोण की सूक्ष्मता से निरीक्षण करे। साहित्य जो समष्टिगत चेतना की देन होती है, उसमे युगचेतना सश्लिष्ट होती है। डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के शब्दो मे हम कह सकते हैं—

'चेतना जो अनुभूतियो की जननी है वह साहित्यात्मा है तो युग चेतना उसके आलोकमय नेत्र है, जिनसे वह सारे ससार का सौन्दर्य आत्मसात् करता है।[8]

साहित्य चेतना के अभाव मे निर्जीव हो जाता है तथा युग चेतना के अभाव मे अधा, जो न वर्तमान के बारे मे कुछ कह सकता है और न भविष्य के बारे मे कुछ देख सकता है।

युग चेतना और उसके विविध स्तर

किसी भी साहित्य के निर्माण मे समसामयिक सामाजिक, राजनैतिक, सास्कृतिक, दार्शनिक एव धार्मिक परिस्थितियो का विशेष योगदान रहता है। ये परिस्थितियाँ तत्कालीन जन–जीवन की आशा और आकाक्षाओ का दर्पण होती हैं। सामाजिक परिवर्तन एव नियन्त्रण के विभिन्न रूप युगचेतना के द्वारा सृजित साहित्य मे मिलते हैं। किसी युग विशेष के साहित्य का अध्ययन उस युग विशेष की परिस्थितियो का दर्पण होता है। अत उससे हम उस युग के तत्कालीन जीवन को भली–भाँति समझ सकते है, जो नैतिक मूल्य तत्कालीन समाज के लिए आवश्यक थे, लेकिन आज के परिप्रेक्ष्य मे मात्र रूढि बनकर रह गये हैं। ऐसे मूल्यो को साहित्यकार अपने साहित्य मे रचना नही करता है, बल्कि युगानुकूल नैतिक मूल्यो की स्थापना करता है। जिस साहित्यिक कृति मे युग द्रष्टा एव युग सृष्टा दोनो का समन्वय पाया जाता है, वह युग–साहित्य के नाम से पुकारा जाता है। युग चेतना से न तो साहित्यकार ही अपने को अलग कर पाता है न साहित्य ही, अर्थात् दोनो पर युग चेतना का प्रभाव रहता है। साहित्यकार युग चेतना से अपने साहित्य को अलग कर

---

8 डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल–भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में 'युग चेतना', पृष्ठ –9

कल्पना–लोक का सहारा लेकर समाज को कुछ समय के लिए आनन्दानुभूति करा सकता है। लेकिन स्थायी अलौकिक आनन्द नही दे सकता। इस प्रकार के साहित्य, कुछ समय भले ही अपना अस्तित्व बनाये रख सके लेकिन कालान्तर मे उनका कोई साहित्यिक मूल्य न होगा और न ही वह शाश्वत मूल्यो की अमिट छाप छोडने मे समर्थ हो सकेगा । युग और मान्यताओ के साथ–साथ युगचेतना भी स्वाभाविक रूप से अपना स्वरूप बदलती रहती है। हर एक भावी युग की युगचेतना वर्तमान से अलग नये रूप मे आती है। युगचेतना का क्षेत्र इतना बडा होता है कि उसे सर्वांगीण रुप से साहित्य से जोड पाना किसी साहित्यकार के लिए कठिन है। फिर भी साहित्य मे युगचेतना की अभिव्यजना सरलतापूर्वक ही हो सकती है क्योकि साहित्यकार यथार्थ जगत का यथार्थदर्शी होता है।

प्रत्येक युग की अभिव्यक्ति का माध्यम अलग–अलग हुआ करता है। परम्परागत शिल्प की भले ही पुनरावृत्ति हो परन्तु भाव और अभिनव मे मौलिक भेद परिलक्षित होता है। कभी–कभी तो प्रत्येक युग की भावविभूतियॉ अपने अतीत से इतना अधिक अलग होती हैं कि जिनके कारण भावाभिव्यक्ति की कला भी परिवर्तित दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार हर युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर युग चेतना का परिवर्तन सहज एव स्वाभाविक प्रतीत होता है और उसके प्रभाव से साहित्य अपने को अलग नही रख पाता है अर्थात् पूरी तरह से प्रभावित होता है।

परम्परा और चेतना

परम्परा अत्यन्त व्यापक शब्द है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से इसका सम्बन्ध हैं। धर्मशास्त्र, दर्शन, विज्ञान, व्यवहार, कला, समाज साहित्य के क्षेत्र में परम्पराओ के अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। परम्परा

मे स्वीकार की हुई विधियो, प्रथाओ तथा प्रणालियो का अनुसरण तो होता ही है, साथ ही पूर्वकाल से चली आती हुई विचारधाराओ की अभिव्यक्ति भी होती है। सामाजिक जीवन की समस्त बाते एव व्यवहार परम्परा के क्षेत्र मे आते हैं, जिनको पीढियो से समाज ग्रहण करता चला आ रहा है। साहित्य जीवन के शाश्वत मूल्यो, आदर्शो, रीतियो, प्रथाओ, प्रणालियो एव स्थापनाओ को अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारो से उत्तराधिकार के रूप मे प्राप्त करता है। साहित्य के क्षेत्र मे इन्हे ही परम्परा नाम से जाना जाता है। इन परम्पराओ के निर्धारण मे तत्कालीन साहित्यकार को कोई प्रयास नही करना पडता बल्कि वे स्वत ही साहित्य मे प्रचलित हो जाते है। साहित्य मे इन बातो का वर्णन गतानुगतिक न्याय से चलता रहता है, उसके लिए किसी भी शास्त्रीय विधान की आवश्यकता नही होती। सफल से सफल साहित्यकार भी इसे अपने साहित्य में सर्वप्रथम स्थान देते हैं। परम्पराओ की परिवर्तनशीलता उनका अस्तित्व बनाये रखती है और स्थिरता पतन का कारण बनती है। टी० एस० इलियट के अनुसार –

'परम्परा मूलत· रूढिवादी सैद्धान्तिक विश्वासो की मान्यता नही होती, अपितु परम्परा का निर्माण जीवन्त विश्वासो मे होता है।[9]

मैथ्यू अर्नाल्ड ने कवि के तीन साधन स्वीकर किए हैं—भाव, भाषा एव वस्तु।[10] साहित्य—क्षेत्र की समस्त मान्यताओ का आधार ही विश्वास और भ्रान्ति पर निर्मित है। मनुष्य अपने भावो एव विचारो को शब्दो द्वारा प्रकट करता है। शब्द और ध्वनि सकेत मात्र हैं। ध्वनि से जिस वस्तु का बोध होता है, शब्द का उसके साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नही होता। शब्द द्वारा अर्थ कल्पित होता है। विभिन्न शब्दों

---

9 TRADITION is not solely, or even primarily the maintenance of certain dagmatic beliefs these beliefs here come to take their living form in the course of the formation of a tradition (Selected Prose of T S ELIOT Edited by John Hayword, Page-20)

10 जॉन लिबिंग्सटन – कन्वेंशन एण्ड रिवोल्ट इन पोयट्री, पृष्ठ–10

द्वारा प्रकट अर्थों का रूप दीर्घकालीन सार्वजनिक मान्यता है। डॉ० प्रभाकर माचवे परम्परा का अर्थ परिपाटी से लेते हुए, उसे रूढि का परिचायक मानते हैं। परम्परा परिपाटी तो अवश्य है, रूढि नही, क्योकि विभिन्न रूपो मे लकीर पीटने वाली दार्शनिक विधि नही है। साहित्य मे जिसे ट्रेडिशन कहते है, वह रूढि नही है। परम्पराये विकासशील युग के साथ विकसित हो नवीन मे घुल–मिल जाती है और उनका अवशेषाश जो काई की तरह सडने लगता है उसे रूढि कहते है।[11] 'ट्रेडिशन' एव रूढि के आधार पर बने 'वाद' को ट्रेडिशनलिज्म या रूढिवाद कहते है। इस प्रकार प्राचीन सभ्यता से जो पूर्ण प्रवाह निकलकर आया, जिसने साहित्य को रूप तथा एकान्वित प्रदान की है, वही आदर्श परम्परा है।

परम्परा की जडे पर्याप्त गहराई मे होती है, जिन्हे समय का चक्र विनष्ट नही कर सकता है। मानव और परम्पराओ का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। साहित्य और मनुष्य का भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।।अत साहित्य भी परम्पराओ से अछूता नही रह सकता। इतना अवश्य है कि परिस्थितियो से प्रभावित होकर परम्पराओ के मूल रूप मे कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाता है। साहित्य मे औचित्य मर्यादा एव पूर्ववर्ती परिपाटी आदि को सुरक्षित रखने के लिए निर्विवाद रूप से परम्पराओ का अपना विशेष महत्व है।

˙ष्ठभूमि और चेतना

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है, जिसमे युगीन परिस्थितियो का अवलोकन किया जा सकता है। पृष्ठभूमि प्रतिबिम्ब की वह शक्ति है जिसमे बिम्ब–विधान परिलक्षित होता है। पृष्ठभूमि मे

11 गिलवर्ट मरे – दि क्लासिकल ट्रेडिशन इन पोयट्री, पृष्ठ – 5

युग अपने वैभव के साथ आसीन होता है। वह एक आधार है, जिसके सहारे साहित्यकार युग से परिचित होता है। परिस्थितियाँ देश–काल मे परिर्वतन उत्पन्न करती हैं। राष्ट्र की राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक दशाओ मे एक अमूल्य परिर्वतन होता है, जिससे पुरानी परम्पराएँ विनष्ट होती हैं और उसके स्थान पर वर्तमान के अनुसार उपयोगी–अनुपयोगी युगीन परिस्थितियाँ युग–पृष्ठभूमि बन जाती हैं। तत्कालीन जग–जीवन को जानने के लिए युगीन पृष्ठभूमि से परिचित होना नितान्त उपयोगी है। परिस्थितियाँ पृष्ठभूमि का प्राणतत्व होती हैं, उनके बदलने से युगान्त उपस्थित होता है और नवीन युग का आरम्भ होता है।

अत साहित्यकार के लिए युग–पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण उपादान है, क्योकि परिवर्तनशील जग–जीवन सामाजिक व्यवस्थाओ के बदलने से परिवर्तित हो जाया करता है। कोई भी साहित्य समीक्षक पृष्ठभूमि के बिना साहित्य और साहित्यकार का मूल्याकन नही कर सकता है। पृष्ठभूमि ने व्यक्ति एव समूह के पारस्परिक सम्पर्क सम्बन्धो को लेकर अनेक युगान्तकारी प्रश्नो से आज की युगचेतना को प्रभावित किया है, जिसके कारण अनेक मौलिक उद्भावनाये एव समस्याओ का जन्म हुआ है। पृष्ठभूमि के बिना युग–बोध की कल्पना नही की जा सकती है। युग बोध सात्यिकार की प्राण शक्ति है तथा उसके अभाव मे न तो उसका कोई अस्तित्व ही है और न वह साहित्य सर्जना ही कर सकता है। किसी भी युग की पृष्ठभूमि उस युग की जन्मदात्री हुआ करती है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि युग पृष्ठभूमि में समाया होता है और पृष्ठभूमि युग मे। साहित्य सगीत तथा ललित कलाओ का मूल्यांकन युगीन पृष्ठभूमि के बिना नहीं किया जा सकता है। पृष्ठभूमि युग की जीती–जागती झाँकी प्रस्तुत करती है, जिससे युग विशेष के यथार्थ स्वरूप का अध्ययन किया जा सकता है। किसी साहित्यकार, वैज्ञानिक, सगीतकार, एव दार्शनिक के निर्माण मे युगीन

पृष्ठभूमि की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पृष्ठभूमि सदैव वर्तमान से जुडी होती है। प्रत्येक आने वाला और विगत अपने समय का वर्तमान है और उस वर्तमान के साथ पृष्ठभूमि जुडी रहती है। गतिशील समाज मे पृष्ठभूमि मे निरन्तर परिवर्तन होता रहता है।

साहित्यकार एक प्रयोगवादी व्यक्ति होता है, अतएव वह युगीन पृष्ठभूमि के अनुसार अपने प्रयोग क्रियान्वित करता है। वह साहित्य मे पृष्ठभूमि के अनुसार अपने प्रयोग क्रियान्वित करता है। वह साहित्य मे नवीन प्रयोग पृष्ठभूमि के प्रति जागरूक होकर करता है। साहित्यकार का सबसे बडा दायित्व यह है कि वह पृष्ठभूमि के प्रति ईमानदार हो तथा जनजीवन का यथार्थ चित्रण युग के अनुकूल प्रस्तुत करे। सफल साहित्यकार युग–चितेरा होता है। वह किसी भी अवस्था मे युग की पृष्ठभूमि की अवहेलना नही कर सकता । इस प्रकार युग चेतना और पृष्ठभूमि मे घनिष्ठ सम्बध है।

परम्परा और पृष्ठभूमि

परम्परा और पृष्ठभूमि एक दूसरे से सम्बद्ध होते हुए भी एक दूसरे से पृथक हैं। परम्पराओ का क्षेत्र सीमित होता है, जबकि पृष्ठभूमि का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। परम्पराओ की नीव प्राचीन मान्यताओ पर टिकी होती है, जीर्ण–शीर्ण परम्पराये विनष्ट होती है और उनके स्थान पर नवीन परम्पराओ का सृजन होता है। इस प्रकार परम्परा जब रूढि का रूप ग्रहण कर लेती है, तो उसका साथ युगीन परिस्थितियो से अलग हो जाता है। ऐसी रूढियो से जकडा हुआ साहित्य प्राणविहीन एव असत्य हो जाता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' का कथन है –

'सस्कृति, परम्परा और इतिहास जब लम्बे सम्बद्ध होते हैं, तो दमघोटू बन जाते है और वर्तमान को ठीक से सास नही लेने देते । ऐसी स्थिति मे जीवन गत परिस्थितियो से प्रसूत प्रेरणा क्रान्ति करती है और परम्परा के स्रोत मे अभिनव परिवर्तन आ जाता है।'[12]

परम्परा का सम्बन्ध अतीत से होता है तथा पृष्ठभूमि का वर्तमान से। किन्तु अतीत और वर्तमान, प्राचीन और नवीन सापेक्षता मे देखे जा सकते है। कर्तव्य और अधिकार की भॉति परम्परा और पृष्ठभूमि मे अनिवार्य सम्बन्ध है।[13] कर्तव्य से मुक्ति मिलना कठिन है, अधिकार का आभास तब होता है, जब उसका प्रयोग किया जाय। कर्तव्य के माध्यम से ही अधिकार प्राप्त होता है, इसी तरह परम्परा के आधार पर ही पृष्ठभूमि निर्मित हुआ करती है। पृष्ठभूमि के अनुसार परम्पराऍ परिवर्तनशील होती है तथा प्रत्येक वर्तमान अपने भूतकाल का परिणाम हुआ करता है। परम्परा आदर्शोन्मुखी होती है और पृष्ठभूमि यथार्थोन्मुखी होती है—इन दोनो पृथक—पृथक धाराओ का सगम उस समय होता है, जब परम्परा परिस्थिति से प्रभावित होती है। परम्परा को पृष्ठभूमि से समझौता करना पडता है और यह युग प्रतिनिधि साहित्यकार के द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

परम्परा और पृष्ठभूमि के बिना साहित्य का अपना अस्तित्व सदिग्ध बना रहता है। अत· वह न तो परम्पराओ की उपेक्षा कर सकता है और न ही पृष्ठभूमि से अपना सम्बन्ध अलग कर सकता है। साहित्य मानव—जीवन एव उसके अनुभव की छवि है, किन्तु उसकी अविरल भावधारा औचित्य की सीमा को लॉघ जाती है। जीवन और जगत का सत्य विभिन्न रूप धारण कर साहित्य में साकार रूप से अभिव्यक्त होता है। राजनैतिक, समाजिक, आर्थिक, धार्मिक एव

---

12 डॉ० रामधारी सिह दिनकर – साहित्यमुखी, पृष्ठ – 11
13 गोपाल दत्त सारस्वत – आधुनिक काव्य परम्परा तथा प्रयोग पृष्ठ – 11

सास्कृतिक नीरस सिद्धान्त साहित्य के अग बनकर प्रस्तुत होते है एव उनकी नीरसता का इसमे परिहार हो जाता है। डॉ० प्रभाकर माचवे के शब्दो मे –

'परम्परा के कुछ अश जीवित रहते हैं जो कि सप्राण नवीनतम मे घुल–मिल जाते है, जबकि परम्परा का बहुत सा हिस्सा काई की तरह सड जाता है।[14] परम्परा का जीवित अश ही युग के साथ जुडा होता है, शेष नष्ट होकर अस्तित्वविहीन हो जाता है। परम्परा का वह अश जो युग से सम्बन्ध स्थापित कर पृष्ठभूमि की भूमिका बनाता है, वह परवर्ती साहित्यकारो को मार्ग दिखाता है।

कला की शाश्वत धारा परस्पर–विरोधी मार्गों से बहती है। कभी तो वह परम्परा के आधार को स्वीकार करती है और कभी मुक्त होकर क्रान्तिकारिणी हो जाती है। यह मानव–स्वभाव की विशेषता है कि कभी उसे प्राचीन प्रवृत्तियो के अनुकूल चलना प्रिय लगता है और कभी वह दोनो को अपनाकर समन्वय करता है और इसी मे उसे आनन्द आता है।[15] युग की परिस्थितियॉ साहित्य की दिशा मे परिवर्तन लाती है। राष्ट्र की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक क्रान्तियॉ प्राचीन परम्पराओ को नष्ट कर नवीन पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं। प्राचीन साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य के अनुशीलन से मालूम होता है कि परम्पराएँ पृष्ठभूमि को बदल देती हैं और पृष्ठभूमि युगचेतना को जन्म देती है। साहित्य मे मानव जीवन तथा उसके व्यापक अनुभवो को युग सापेक्ष्य चित्रित करने की परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। डॉ० सुषमा धवन के अनुसार– 'साहित्य–सृजन'

---

14 हिन्दी साहित्य कोश भाग–2 सम्पादक – डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ – 477

15 जॉन लिविंग्सटन – कन्वेंशन एण्ड रिवोल्ट इन पोयट्री पृष्ठ – 87

की प्रेरणा आदि काल से व्यक्ति समाज मे सन्तुलन एव सामजस्य की समस्या तथा उसके परिवर्तनशील सम्बन्धो से होती है।[16]

इस प्रकार जीवन को ऑकने के लिए मुख्यतया दो प्रवृत्तियो का सहारा लिया गया है – एक का सम्बन्ध वैयक्तिक हित से और दूसरी का सामाजिक कल्याण की भावना से जुडा हुआ है।

सामाजिक क्रान्तियो के परिणाम स्वरूप विभिन्न प्राचीन परम्पराओ का विनाश और नवीन चेतना का विकास होता है। जब प्राचीन परम्पराये युग के अनुकूल महत्वपूर्ण नही रह जाती, तब नवीन परम्पराओ का जन्म होता है। उस समय साहित्य और सामाज एक नवीन दिशा मे मोड लेते है। युग चेता साहित्यकार अपने युग का कुशल साहित्य सर्जक एव युग का सफल निर्माता होता है। उसकी प्रमुख विकासोन्मुख चेतना बॅधी–बॅधायी सारणियो एव परम्पराओ से जुडकर नही बॅधना चाहती है। वह नवीनता मे विश्वास रखता है तथा परम्पराओ से विद्रोह करके नवीन मार्ग का यात्री बनने के लिए व्याकुल हो जाता है। आधुनिक युग के अनेक 'वाद' विकासशील युग चेतना के परिणाम हैं। यह सब परम्पराओ का विद्रोह है जो कई युगो तक चलता रहता है। कोई भी साहित्य परम्परा से बिल्कुल अलग नही हो पाता है। नवीन जीवन एव परिस्थितियो के परिवर्तित हुए परिवेश मे एक तरफ तो वह परम्परा से सामन्जस्य रखता है और दूसरी तरफ नवीन मित्र का साथ निभाने के लिये सामयिक परिस्थितियो का प्रायोजन करता है।

परम्परा और पृष्ठभूमि सरिता के दो कूलो की तरह हैं जिसकी मर्यादा मे बंधकर वह अविरल गति से प्रवाहमान रहती है। जिस प्रकार दो कूल कभी एक दूसरे से मिलते नहीं, वे मौन रहकर

---

16 डॉ० सुषमा धवन – हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ–3

सरिता के जल को सहेजे रहते है। यदि उनमे से कोई एक कूल टूट जाय तो सरिता अपनी सहज–स्वाभाविक गति खो देगी। एक युगचेता साहित्यकार अपनी रचना को सरिता के जल की तरह परम्परा और पृष्ठभूमि रूपी दो कूलो के बीच प्रवाहमान रखता है।

युग–प्रतिनिधि साहित्यकार जहाँ अतीत से कुछ ग्रहण करता है वही वह वर्तमान के प्रति सजग अवश्य रहता है। परम्पराये वर्तमान मे कथाकार को न केवल प्रेरणा एव पथ निर्दिष्ट करती है बल्कि युग के प्रति उदार नवीन आशाओ की अद्‌भुत शक्ति प्रदान करती हैं। इस सम्बन्ध मे जान लिविग्स्टन के विचार द्रष्टव्य हैं–

'हम लोग नवीन वस्तु के लिए अवश्य उत्सुक रहते हैं, किन्तु हमारा यह भी आग्रह रहता है कि जो परिचित है तथा जो अपना है, उससे भी सम्बन्ध अवश्य बना रहे। हम पुराने को चाहते तो है, परन्तु वह किसी न किसी रूप मे नया अवश्य प्रतीत हो।[17]

इस प्रकार हम सदैव यह प्रयत्न करते हैं कि नवीन से नवीन वस्तु प्राप्त करे, किन्तु पुरानी खोकर नहीं वरन् पुरानी के साथ नवीन का समझौता कर और नवीनपन लाने के लिए करते हैं। टी०एस० इलियट के कथनानुसार –

'परम्परा का प्रवाह सतत् गतिशील है। इसके बिना वह निश्चित स्थिर एव जड है। विकासशील जीवन मे पुरातन प्रवृत्तियाँ भी परिवर्तित होती रहती है। कोई भी पुरातन वस्तु अथवा स्थिति अक्षुण्ण नही है, क्योकि जीवन की प्रत्येक स्थिति किसी विशेष प्रवृत्ति का परिणाम होती है। वह सदैव न एक सी रहती है और न रह सकती है।[18]

---

17 जॉन लिविंग्सटन – कन्वेंशन एण्ट रिवोल्ट इन पोयट्री, पृष्ठ – 63
18 टी०एस० इलियट – ऑफ्टर स्टेन गॉड्स, पृष्ठ – 18–19

कोई भी साहित्यकार चाहे कवि हो, कहानीकार हो, निबन्धकार हो, आलोचक हो, जीवनी लेखक हो, नाटककार हो, और चाहे कथा साहित्यकार क्यो न हो – जब वह प्राचीन साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर वर्तमान का उसके साथ सम्बन्ध स्थापित कर साहित्य की रचना करता है तो युग प्रतिनिधि साहित्यकार कहलाता है और उसका साहित्य युग–साहित्य के श्रेणी मे अपना स्थान बनाता है। ऐसे साहित्य का मूल्य शाश्वत है। यही कारण है कि कालिदास, तुलसीदास, शेक्सपीयर आदि का साहित्य काल–ग्रही है। साहित्य जगत मे गोर्की, प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा एव जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य भी इसी कोटि के हैं, जिनका अत्यधिक महत्व है । इस प्रकार युग साहित्य के सृजक एव उनके कथा साहित्य का मूल्य शाश्वत होता है। इस सन्दर्भ मे डॉ० एच०बी० रूथ का विचार द्रष्टव्य है –

'वह साहित्य या कला मे एक नयी दृष्टि खोजता है। इसलिए महान कृति मे नवीनता द्वारा चकित कर देने की शक्ति होनी चाहिए, जिससे पाठक प्रारम्भ मे ही आगे पढने के लिए उत्सुक हो जाये। अनुभूतियॉ गम्भीर एव व्यापक छवियो की निर्मात्री हैं तथा हैं– कारयित्री प्रतिभा की क्रीडा भी।[19]

प्रत्येक कथाकार अपने युगीन परिवेश के साथ प्रयोगशील भी होता है। यही प्रयोगशीलता ही नवीनता की सूचक है। श्रेष्ठ साहित्यकार परम्परा और प्रयोग दोनो का एक साथ निर्वाह करता है। वह एक ओर तो अपनी पूर्ववर्ती प्रवृत्तियो से कुछ न कुछ प्रेरणा ग्रहण करता है तथा दूसरी ओर युगचेतना का अवलम्ब लेकर विषय–वस्तु, शिल्प और भाषा मे कुछ मौलिक परिवर्तन ग्रहण करता है। साहित्य मे नये प्रयोग रूढियो पर प्रहार तथा पृष्ठभूमि के प्रति सतर्कता से ही होते हैं। कथाकार का सबसे बडा दायित्व समाज के लिए होता है, जिसके

---

19 डॉ० एच०बी० रूथ इगलिश लिटलेचर आइडियाज इन दी टवेन्टीय सेन्चुरी पृष्ठ – 2

निर्वाह के लिए आवश्यक है कि वह युग चेतना की परम्परा से परिचित हो तथा परम्परा और पृष्ठभूमि मे समन्वय बनाये रख सके।

साहित्य और समाज का युग चेतना से सम्बंध

आलकारिक भाषा मे साहित्य पुष्प के समान बँधा हुआ नही होता है। साहित्य की तुलना सरिता से करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। सरिता मे स्वच्छन्दता और प्रवाहमयता होती है। साहित्य भी इन गुणो से अछूता नही है। जिस प्रकार सरिता बहते–बहते अनेक मोड लेती है ठीक उसी प्रकार साहित्य भी अपनी पूर्व परम्पराओ से अलग होकर अनेक मोड लेता है और वही मोड युगान्तर का सूचक होता है।

साहित्य युग चेतना से सश्लिष्ट होता है। साहित्य मे न केवल युग की आध्यात्मिक, भौतिक और मौलिक प्रवृत्तियो की प्रतिक्रिया ही विद्यमान होती है बल्कि युग की आशा–आकाक्षा और आदर्श भी परिलक्षित होते है। अत हम समसामयिक साहित्य मे तत्कालीन परिस्थितियो को देख सकते हैं। साहित्य मे समाज के भाव और विचारो का प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है। समाज भी साहित्य द्वारा प्रसारित भाव और विचारो से प्रभावित होता रहता है इस प्रकार साहित्य और समाज मे परस्पर आदान–प्रदान तथा क्रिया–प्रतिक्रिया का अनवरत क्रम चलता रहता है। अत· किसी युग के साहित्य की समीक्षा के लिए उस युग की जनता की चित्तवृत्तियो का परिचय और विश्लेषण अति उपयोगी है।[20]

---

20 प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का सचित प्रतिबिम्ब हैं (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–3)

युग और साहित्य मे परस्पर रात और दिन का सम्बन्ध है। इन्हे एक दूसरे से पृथक नही किया जा सकता है। जहॉ युग साहित्य को उपजीव्य सामग्री प्रदान करता है वही साहित्यकार उस युग बोध को सम्प्रेषित कर एक शाश्वत रसात्मक सृष्टि प्रदान करता है। मानव सचेतन, ज्ञानवान और सवेदनशील प्राणी होने के कारण अपने परिवेश से प्रभावित होकर सवेगानुभूति को साहित्य के रूप मे अभिव्यक्ति करता है। साहित्य मे जब कभी नवीन विधा का जन्म होता है, तो उसके मूल मे अनेक परिस्थितियो का योगदान रहता है। इस सम्बन्ध मे श्री राम गोपाल सिह के विचार द्रष्टव्य हैं –

'व्यक्ति और समाज के जीवन मे परिवर्तन, हर युग मे ही होते हैं। और इन्ही परिवर्तनो के आधार पर जीवन मूल्य विकसित होते हैं। ये जीवन मूल्य ही व्यक्ति के चरित्र और उसकी सभ्यता एव सस्कृति के मेरुदण्ड बनते हैं।'[21] साहित्यकार मानवी परिवेश मूल्यो के उद्‌घाटन का प्रयत्न करता है और उसका यही प्रयत्न साहित्य सृजन करता है।[22]

समष्टिगत चेतना की उपज होने के कारण साहित्य और समाज मे अटूट सम्बन्ध है। समाज के विभिन्न क्षेत्रो और परिस्थितियो मे साहित्यकार के चेतन मन पर पडे सस्कार अवचेतन मन मे सग्रहीत होते रहते हैं और वही अभिव्यक्त होते हैं। सच्चा साहित्यकार कभी भी सामाजिक उपादानो द्वारा चेतन मन पर पडे सस्कारो की अवहेलना नही कर सकता। साहित्य और समाज की दो समान्तर रेखाओ को स्पर्श करने वाली तिर्यक रेखा युग–चेतना ही है। युग चेतना–अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्य के साथ साहित्य की सामग्री बनती है और साहित्यकार उससे प्रेरणा ग्रहण करता है। जहॉ एक ओर वह समाज से प्रेरणा

---

21 श्री राम गोपाल सिह – स्वातत्र्यात्तर हिन्दी उपन्यास स०–महेन्द्र भटनागर पृष्ठ – 13
22 डॉ० देवराज – साहित्य चिन्ता पृष्ठ – 68

ग्रहण करता है वही दूसरी ओर वह समाज को प्रभावित भी करता है। डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल का कथन है कि –

'साहित्यकार युग चेतना द्वारा ही अपने साहित्य को सॅवारता है, जो युगीन देन है। वह एक सामाजिक प्राणी है जो समाज मे जन्म लेता है, विकास पाता है और समाज मे ही उसकी जीवन–गाथा का अन्त होता है।'[23]

साहित्यकार स्वय को समाज से अलग नही कर सकता। उसकी कल्पना का समाज युगचेतना के प्रकाश के माध्यम से ही निर्मित होता है। सामाजिक तत्वो का जो प्रभाव अन्त करण पर पडता है, वही साहित्य के रूप मे प्रकट होता है। कथा साहित्य समाज से समाज के लिए सामग्री ग्रहण करता है। इस प्रकार साहित्य के लिए समाज साध्य और साधन दोनो है। इस सम्बन्ध मे मुन्शी प्रेमचन्द के विचार द्रष्टव्य है –

'साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश मे उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश–बन्धुओ के कष्टो से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता मे वह रो उठता है, पर उसके रुदन मे व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।[24] इसी सन्दर्भ मे डॉ० रामविलास शर्मा के विचार द्रष्टव्य हैं –

'साहित्य इस प्रकार विश्वात्मा है और विश्वात्मा मे राष्ट्रात्मा निवास करती है। इसी आत्मा की प्रतिध्वनि साहित्य है।'[25]

---

23 डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल – भगवती चरण वर्मा के उपन्यासो में युगचेतना पृष्ठ – 2
24 मुशी प्रेमचन्द – साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ – 24–25
25 डॉ० रामविलास शर्मा – प्रेमचन्द और उनका युग पृष्ठ – 135

किसी देश या जाति के चरित्र–निर्माण मे साहित्य का वहुत सहयोग रहता है। साहित्य के माध्यम से ही राष्ट्र का उत्थान सभव है। इस प्रकार का साहित्य, जो राष्ट्र के उत्थान मे सहायक होता है, वह मानवता की नव जागृति का सन्देश लिए हुए होता है और उसमे राष्ट्र का आत्मसम्मान निहित होता है। मुशी प्रेमचन्द के शब्दो मे –

'साहित्य तो वह कला है जो समाज मे जागृति और स्फूर्ति लाये, जो जीवन की यथार्थ समस्याओ पर प्रकाश डाले।[26]

युग–चेता कलाकार का साहित्य युगचितेरा होता है। वह सत्य बात को प्रकट करने मे सकोच महसूस नही करता है। साहित्य वह दर्पण है, जिसके सामने जाते ही तत्काल समाज का सत्य चित्र दिखाई दे जाता है। समाज अथवा साहित्य बीती हुई सस्कृति मे डूबे हुए भविष्य का आलिगन करते हैं। इस प्रकार साहित्य और समाज एक दूसरे पर आश्रित है। साहित्यकार के पास साहित्य की ऐसी सजीवनी शक्ति है, जिससे समाज के विभिन्न लोगो को जीवन–दान मिलता है। वह अपने साहित्य के माध्यम से समाज मे नवीन चेतना का सचार करता है। साहित्य का सबसे बडा दायित्व समाज के प्रति होता है, जिसे युग चेता साहित्यकार ही निभा पाता है।

साहित्य जन–जीवन की सत्य तस्वीर प्रस्तुत करता हुआ समाज को विकास के पथ पर अग्रसरित करने की प्रेरणा प्रदान करता है। युगचेतना से प्रभावित होकर साहित्यकार के साहित्य मे युग की भावनाओ को सहज रूप से जाना जा सकता है। प्रत्येक कलाकार सामाजिक प्राणी होने के नाते अपनी भावनाओ द्वारा परिचालित होता है। कर्म, भावना और इच्छा का व्यक्त रूप साहित्य है। सत् साहित्य यद्यपि भावनाओ के प्रचार के लिए नही लिखा जाता है, तथापि उसमे

---

26 प्रेमचन्द – हस, सितम्बर 1936

व्यक्त भावनाये अवश्य युगीन होती हैं। युग चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य युगीन भावनाओ से भिन्न नही हो सकता, क्योंकि उसमे सासारिक व्यक्तियो की भावनाएँ आन्दोलित होती रहती हैं। साहित्यकार सामाजिक उपादानो द्वारा चेतन मन पर पडे सस्कारो की अवहेलना नही कर सकता है। कुछ पलो के लिए भले ही वह पृथ्वी से ऊपर उठ जाए, परन्तु उसे पृथ्वी पर उतरना ही होगा। वह अपने लौकिक व्यक्तित्व का विनाश नही कर सकता।

युग चेतना साहित्य के लिए आवश्यक ही नही, बल्कि उसका धर्म है। जब वह अपनी वास्तविकता को छोडकर समाज मे फैली हुई राजनीति, नैतिकता, दार्शनिक भावना एव धार्मिक प्रवृत्तियो से स्वय को जोड देता है तब उसका वास्तविक रूप धीरे-धीरे नष्ट होने लगता है। अत स्पष्ट है कि साहित्य युग की यथार्थ आवश्यकताओ से अपने आप को अछूता नही रख सकता है। वह न तो समाज की आवाज की अवहेलना कर सकता है और न ही ससार के कोलाहल से अपने को अलग कर सकता है। इस प्रकार साहित्य समाज के लिए और साहित्यकार साहित्य और समाज दोनो के लिए समर्पण की भावना रखता है। अनुभूतियो मे विविधता होते हुए भी साहित्य समाज-सापेक्ष रहेगा, समाज-निरपेक्ष नही। कोई भी साहित्यकार अपने को सामाजिक दायित्वो से अलग नही कर सकता है। वह युगीन नीति, धर्म, आचार, आदि से प्रभावित हुए बिना नही रह पाता है। उसके व्यक्तित्व में स्रष्टा और सामाजिक समन्वय सन्निहित होता है, अत वह युगचेतना के प्रभाव से प्रभावित होता है। साहित्यकार सदैव इस बात के लिए चिन्तित रहता है कि वह समाज के सत् पक्ष को प्रभावी ढग से प्रस्तुत कर सके।

साहित्य जन जीवन का दर्पण होता है, इसीलिए साहित्यकार जन-जीवन की समस्याओ से पूर्णतया अवगत होता है। साहित्य भी

अध्यात्म और दर्शन की तरह 'सत्यम–शिवम–सुन्दरम्' का निर्वाह करता है। वह सासारिक बीतरागी और सन्यासी होते हुए भी ससार के प्राणियो के लिए ससारी, अनुरागी या कर्मयोगी होता है। युग चेतना को वाणी प्रदान करने वाला साहित्यकार युग निर्माता होता है, वह साहित्य मे युग चित्रण करता है और अपने समय के सामाजिक जीवन को एक नयी गति और नवीन दिशा प्रदान करने वाला होता है।

कथा साहित्य में युग चेतना का स्वरूप

कथा साहित्य मे यथार्थ जीवन का चित्रण होता है, इसलिए इसे मानव–जीवन की निकटतम् विधा स्वीकार करना पडता है। इसमे मानव जीवन की केवल धरोहर ही सुरक्षित नही रहती है, अपितु उसमे जीवन के सजीव चित्र विभिन्न रूपो मे दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार मानव जीवन की आरम्भिक रूपरेखा का विधान करने वाली विधा कथा साहित्य है, जिसका प्रगाढ सम्बन्ध मनुष्य के जीवन एव उसके युग से होता है। कथाकार के साहित्य मे युग का सर्वांगीण रूप सुरक्षित रहता है। उसकी विवेचना कर हम युग का परिचय प्राप्त कर लेते हैं। यद्यपि कथाकार का जीवन के प्रति निश्चित दर्शन एव लक्ष्य होता है जिसे वह अपनी कथा के माध्यम से प्रस्तुत कर सत्य का आभास कराता है, तथापि कथा साहित्य मानव–चरित्र एव उसके यथार्थ जीवन के कार्यों की अभिव्यजना करने वाली विधा है। यह सत्य है कि कथा साहित्य मे लेखक के मन की धारणाऍ एव इच्छाऍ अभिव्यक्त होती हैं परन्तु वह केवल उसके मन की इच्छाओं और धारणाओ की अभिव्यक्ति का साधन मात्र नही हैं, उसमें इतनी विशालता एव

व्यापकता होती है कि सारा ससार समाया रहता है। इसलिए वह जीवन का कलात्मक सर्जन है।[27]

साहित्यिक क्षेत्र मे उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा सामूहिक मानव–जीवन अपनी समस्त भावनाओ एव चिन्ताओ के साथ सम्पूर्ण रूप मे अभिव्यक्त हो सकता है। मानव–जीवन के विविध चित्रो को चित्रित करने का जितना अधिक अवकाश उपन्यास मे मिलता है उतना अन्य साहित्यिक विधाओ मे नही।[28] कथा साहित्य मे मानव जीवन की अभिव्यक्ति है तथा मानव–जीवन का जीवन्त चित्र है। कथाकार मानव–जीवन का कैमरामैन नही, वरन् कलाकार अवश्य है क्योकि वह किसी यन्त्र के माध्यम से चित्र नही बनाता, वरन् मानसिक दृष्टि से जीवन की विभिन्न महत्वपूर्ण घटनाओ का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से जोडता है। युग की गतिशील पृष्ठिभूमि पर सहज शैली मे स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण व्यापक झॉकी प्रस्तुत करने वाला गद्यकाव्य उपन्यास कहलाता है।[29] मनुष्य के जीवन के विभिन्न अनुभवो का कथा साहित्य मे समावेश रहता है। मनुष्य के अनुभव की कोई सीमा नही है–वह विज्ञान का क्षेत्र स्पर्श करता है, साहित्य,सगीत, एव कला मे भी रूचि रखता है, पशु–पक्षियो एव प्राणियो से भी वह अपना सम्बन्ध रखता है। उसका सम्बन्ध निर्जीव प्रकृति से भी है। पृथ्वी से लेकर आकाश तक सब से वह सम्बन्ध रखता है। उनसे वह जो कुछ भी ग्रहण करता है उसी से साहित्य की रचना करता है। उपन्यास यथार्थ की प्रतिच्छाया है। वह इस सृष्टि का यथार्थ चित्र है, जिसमे कथाकार उसका सामाजिक रूप विधान, उसका वर्ग सभी कुछ व्यापक अर्थों में आ जाते हैं।[30] वह जीवन की एक ऐसी दृष्टि की अभिव्यजना करता है, जो यथार्थ की अपेक्षा पूर्ण

---

27 डॉ० महावीर लोढा – हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन पृष्ठ – 4
28 डॉ० त्रिभुवन सिह – हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृष्ठ – 1
29 डॉ० भगीरथ मिश्र – काव्य शास्त्र, पृष्ठ – 73
30 डॉ० सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास, पृष्ठ – 3

है, विस्तृत एव व्यापक है तथा अधिक सत्य है। उपन्यासकार किसी उपन्यास का निर्माण उसी तरह करता है जैसे एक चित्रकार चित्र का सृजन करता है।[31] इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य एव उसके युग का सर्वागीण यथार्थ चित्र अन्य विधाओ की अपेक्षा कथा साहित्य मे सहज रूप से उभर कर आता है।

विश्व कथा साहित्य का जन्म, विकास एव समृद्धि युगचेतना के समानान्तर हुई है। कथा साहित्य युग चेतना का सवाहक ही नही, अपितु युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर गतिशील जन जीवन का चितेरा है। आज के जीवन की उथल–पुथल एव भागवत अन्तर्द्वन्द की अभिव्यक्ति की सर्वोत्तम विधा उपन्यास है। उन्नीसवी शताब्दी से पूर्व भारतीय समाज मे सरलता थी, मूल्यगत स्थायित्व था। फलत उपन्यास जैसे परिवर्तन प्रिय साहित्यिक रूप की आवश्यकता भी नही थी।[32] युग चेतना इतनी गुम्फित, सघर्षमयी तथा असाधारण हो गयी कि पद्य के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति उतनी आसान नही रही, जितनी प्राचीन काल मे सम्भव थी। मक्खनलाल शर्मा के अनुसार–

'साहित्य के जितने भी रूप विधान हो सकते है, उनमे उपन्यास का रूप विधान अपनी विशिष्टता के कारण युगानुकूल युग चेतना का सवाहक बनकर अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करता आया है।'[33]

आज के युग मे हम उन्नति के पथ पर जल्दी से बढ रहे है तो उसी के अनुसार अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम को परिवर्तित करना पडेगा। कथा साहित्य हमारी इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। आज के जीवन के भाव–सत्य को अपनी समग्रता में सभी स्तरो और आयामो मे व्यपकता और गहनता के दोनों क्षेत्रो में अभिव्यक्ति करने

---

31 डॉ० रिचर्ड स्टॅग – दि थ्योरी ऑफ नावेल इन इग्लैंड, पृष्ठ – 11
32 डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – बीसवीं शताब्दी – हिन्दी साहित्य नये सन्दर्भ पृष्ठ – 252
33 मक्खन लाल शर्मा–हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा पृष्ठ – 4

के लिए उपन्यास से अधिक समर्थ माध्यम दूसरा नही।[34] आज के युग की बौद्धिक उथल–पुथल और भावगत अन्तर्द्वन्द्व को दैनिक जीवन और उसके परिवेश मे स्थित करके तथा इन विभिन्न पक्षो के परस्पर सम्बन्ध और उपयोगिता को प्रकट करने के लिए कथा साहित्य बडी ही उपयुक्त विधा है। कथाकार अपने कथानक के लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दोनो रूपो से मानव–जीवन एव उसके युग से प्रेरणा ग्रहण करता है। वह उसकी अवहेलना नही कर सकता, क्योकि वह उस वातावरण मे सास लेते हुए अपने साहित्य के यथार्थ का सृजन करता है। जीवन की सत्यता को कथाकार यथातथ्य रूप मे नही रख सकता है। जीवन की यह अभिव्यक्ति यथार्थ होते हुए भी यथा तथ्य रूप मे घटित नही होती है। कथाकार जब युग चेतना का यथार्थ चित्रण करता है तो वह युग द्रष्टा की भूमिका को निभाता है, लेकिन युग द्रष्टा की भूमिका निभाने के लिए उसे अपने भोक्ता जीवन पर निर्भर रहना पडता है। जिस कथाकार के कथा साहित्य मे युग द्रष्टा एव युग स्रष्टा इन दोनो का समन्वय पाया जाता है, उसे युग कथाकार की सज्ञा से विभूषित किया जाता है। डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के शब्दो मे –

'उपन्यास और काव्य के बीच सबसे बडा अन्तर यह है कि उपन्यास का सम्बन्ध वास्तविक जगत से होता है तो काव्य का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा से। काव्यः मूलत सर्जनात्मक, शाश्वत और निरपेक्ष है, उपन्यास प्रधानत· विश्लेषणात्मक है।'[35] जीवन शक्ति कवि के पीछे और साहित्यकार के सम्मुख रहती है। काव्य अप्रत्यक्ष रूप से जीवन की आलोचना है। उसमे कल्पना तत्व और सुख तत्व प्रधान होते है। कवि सपना देखता है और भावना का शब्द शिल्पी होता है। कवि अपने लिए सच्चाई बरतता है तो साहित्यकार समाज के लिए।

---

34 नेमिचन्द्र जैन – अधो साक्षात्कार पृष्ठ – 10
35 डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – पश्चिमी आलोचना शास्त्र पृष्ठ – 376–377

कोरा काल्पनिक साहित्यकार उसकी अपनी प्रकृति के विरूद्ध होगा। एक विदेशी कवि की काव्य रचना का आनन्द हम उठा सकते है, क्योकि वह कल्पना जगत की वस्तु है। उसमे सूक्ष्म मनुष्य के मन की अभिव्यक्ति होती है किन्तु विदेशी साहित्यकार की रचना समझने मे समस्या उत्पन्न होती है, क्योकि उसमे उसी के हर तरफ का अर्थात अपने से अलग जीवन चित्रत रहता है और उससे हम अनभिज्ञ रहते है।

निष्कर्ष यह है कि कथा साहित्य सामाजिक चेतना का प्रतीक है। कथा साहित्य एक ऐसी कला है जो यथार्थ की प्रतिच्छाया होती है। वह तो जीवन का पुन सर्जन है, क्योकि जीवन के विभिन्न पक्षों का उद्घाटन इसमे होता है। कथाकार के माध्यम से मिलने वाला जीवन परिवेश एव उसका यथार्थ ही उसमे महत्व प्राप्त कर पाता है। सामाजिक चेतना का कलात्मक रूप कथा साहित्य है, जिसके फलस्वरूप साहित्यकार अपने समाज के अलावा किसी अन्य का चित्रण नही कर सकता। कथाकार को अपनी स्वाभाविकता एव सच्चाई बनाये रखने के लिए देश काल एव वातावरण को ठीक प्रकार से चित्रित करने के लिए, युग चेतना का अपना अलग महत्व है। इसकी सहायता से कथा साहित्य मे नवीन परिवेश एव नवीन आयामो को आत्मसात् करते हुए प्रगतिशील भाव–जगत पर जीवन की समग्रता को साहित्यकार चित्रित करता है। काव्य की अपेक्षा कथा साहित्य मे युग चेतना की अभिव्यजना सरलता पूर्वक हो सकती है, क्योकि कवि तो सपनों का निर्माता होता है और भावानुरूप शब्द शिल्पी भी, जबकि कथाकार यथार्थ जगत का यथार्थदर्शी होता है। साहित्यकार का कर्तव्य होता है कि सामाजिक सत्यता को देखे, परखे और विश्लेषित करे। प्रतिभा के धनी श्रेष्ठ साहित्यकार यही करते है।

कथाकार व्यक्ति और समाज को मुख्य बिन्दु मानकर चलता है। व्यक्ति और समाज तो युग सापेक्ष हुआ करते है अतएव इनका सम्बन्ध युगीन प्रवृत्तियो से अलग नही हो सकता है। युगचेतना कथाकार को केवल युगीन प्रवृत्तियो एव परिस्थितियो से परिचय ही नही कराती बल्कि वर्तमान युग जीवन का दृष्टिबोध, सौन्दर्य–बोध एव नैतिक–बोध प्रदान कराती है। युगचेतनाविहीन कथाकार अपने साहित्य मे कथानक एव घटनाओ मे यथार्थ की अभिव्यजना नही कर सकता है। इस प्रकार कथा साहित्य मे युग चेतना का अपना महत्व है, जिसे हम कथा साहित्य के आदि काल से लेकर अद्यतन युग के साहित्य तक मे देख सकते हैं।

अध्याय–2

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में युगीन सामाजिक चेतना

अध्याय–2

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में युगीन सामाजिक चेतना

कथाकार एवं समाज: अन्तर्बाह्य सम्बन्ध

साहित्य मानव–मानस की विशिष्ट एव रमणीय अनुभूति है। साहित्य का पहला अग है– भाव, जिसके लिए कल्पना का योगदान अपेक्षित है, परन्तु कल्पना ऐसी जो अनुभूति के आधार पर निर्मित हो।[1] इसी यथार्थ अनुभूति की विशिष्ट व्यजना करने वाला साहित्यिक रूप–विधान कथा साहित्य है। इसलिए इसमे हृदय को स्पन्दन देने की क्षमता होती है। मानव–चेतना समाज सापेक्ष हुआ करती है, और कथा साहित्य जो मानव चेतना का सवाहक है, नितान्त सगाज निरपेक्ष हो ही नही सकता। वह तो जीवन की परिकल्पनात्मक अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा जीवन के सौन्दर्यात्मक और आनन्द पक्ष का उद्घाटन होता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि कथा साहित्य दर्पण गत प्रतिच्छवि का परावर्तन नही प्रतिरूप है और प्रतिरूप का मूलभूत विधान समाज है। कथा साहित्य, सामाजिक प्रभावोद्भूत जीवन शक्ति के कारण जो कलाकार की ही प्राणशक्ति है, बहुधा सामाजिक चेतना का प्रेरक एव प्रसारक होता है। मार्क्सवादी आलोचना साहित्य की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नही करती है, बल्कि उसे सामाजिक विकास मे एक हथियार के रूप मे स्वीकार करती है। इस प्रकार साहित्य सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है जो युगीन परिवर्तनो को आत्मसात करता हुआ अनवरत प्रवाहमान है। कार्डवेल

के अनुसार– 'कला एक सामाजिक प्रक्रिया है।'[2] कलाकार का दोहरा व्यक्तित्व होता है– एक सामान्य मानव रूप और दूसरा साहित्यिक रूप। इनमे सर्जनात्मक चेतना प्रबल होती है। परिस्थितिजन्य अनुभव की अमूल्य राशि को कल्पना का पुट देकर वह कला के माध्यम से व्यक्त करता है। जिस प्रकार अग्नि से अग्नि प्रज्वलित होती है, वैसे ही साहित्यकार युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रेरणा ग्रहण करते हुए युग–चित्र चित्रित करता है।

जैनेन्द्र जी का विशाल कथा साहित्य युग दर्पण है, जिसमे अनेक सामाजिक समस्याएँ विभिन्न रगो मे प्रतिबिम्बित होती है। कथाकार के लिए समाज वह आधार है, जहाँ वह स्वय जन्म लेकर जीवन के विकासशील सोपानो पर चढता हुआ सामाजिक जीवन के स्वानुभूत चित्र प्रस्तुत करता है। समाज से जो कुछ वह ग्रहण करता है, उसमे कलात्मक रग पर सामाजिक मनोरजन करते हुए जीवन की विशिष्ट प्रतिच्छवि चित्रित करता है।

साहित्य सामाजिक यथार्थ का दर्पण है, यह समझना जैनेन्द्र को मान्य नही है। अत यह स्वीकार करने मे किचति सकोच नही होना चाहिए कि साहित्य लोकमगल की कामना है, जिसका साधक साहित्यकार होता है।

कथा साहित्य अपने को लगातार समाज से अधिकाधिक जोडने का प्रयत्न करता रहा है। जैनेन्द्र सदृश युगचेता कलाकार का सम्पूर्ण साहित्य युगचेतना का सवाहक है। उन्होने साहित्य की रचना प्रेमचन्द जी के काल से प्रारम्भ कर दी थी। स्वय प्रेमचन्द ने ही उनकी प्रथम कहानी को अपनी पत्रिका मे प्रकाशित कर उनका साहस बढया था।

---

1 डॉ० त्रिभुवन सिह– हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृष्ठ–31

2 Art is a social function' - Christopher Caudwell -Studies in a dying culture Page-44

सन् 1929 मे जैनेन्द्र की प्रथम कहानी 'फॉसी' प्रकाशित हुई। पहला उपन्यास 'परख' अगले ही वर्ष 1930 मे छपा था। जैनेन्द्र जी कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त चिन्तन प्रधान गद्य लिखने की ओर भी तभी प्रवृत्त हो गये थे। ''जैनेन्द्र के विचार' नामक इनकी प्रथम वैचारिक रचना सन् 1937 मे प्रकाश मे आयी थी। इसके उपरान्त जैनेन्द्र जी नियमित लेखक के तौर पर स्थापित हो गये। इनका लेखन क्षेत्र प्रमुखतया कल्पना सापेक्ष एव विचार सापेक्ष गद्य ही हैं। विशाल साहित्य की रचना करने वाले मनीषी साहित्यकार जैनेन्द्र जी ने गृहस्थी की कुछ घातक चोटो से पीडित होते हुये भी हुए अपने भीतर का चैतन्य सदैव लोकधर्मी ही बनाये रखा। परोपकारी सस्थाएँ, साहित्यिक सभाओ एव राजनीतिक समितियो मे वे अकुठित भाव से प्रत्येक भूमिका निभाते रहे। अस्वस्थ होने पर भी बहुधन्धी योजनाओ मे उनका नित्य सहयोग बना रहा। सस्थाओ की व्यवस्था की दृष्टि से जैनेन्द्र 'यूनेस्को राष्ट्रीय कमीशन' की कार्यकारिणी के प्रथम सदस्य बनाये गये थे और 'भारतीय साहित्य अकादमी' कार्यकारिणी समिति के भी प्रथम सदस्य मनोनीत हुए थे। जैनेन्द्र ने सन् 1955 मे प्रथम यूरोप यात्रा भी की थी। अगले वर्ष चीन के राष्ट्रीय साहित्यिक महोत्सवो मे एक मात्र भारतीय प्रतिनिधि के रूप मे जैनेन्द्र का चीन जाना हुआ था। सन् 1960 मे रूस मे आयोजित टॉलस्टाय की 50वी पुण्य तिथि पर होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन के वे प्रतिनिधि बने। जैनेन्द्र 'एशिया लेखक सम्मेलन' के सयोजक हुए। उन्होने केन्द्रीय साहित्य अकादमी के प्रमुख सदस्य एव भारतीय साहित्य परिषद् के वरिष्ठ सहयोगी के रूप मे उल्लेखनीय कार्य किया है। उनकी साहित्यिक सेवाये और गम्भीर एव प्रेरक विचारो की अभिनन्दना करते हुए राष्ट्रपति ने सन् 1970 मे उन्हे पद्मभूषण की उपाधि से अलकृत किया और सन् 1973 मे दिल्ली विश्वविद्यालय ने डी०लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया।

जैनेन्द्र प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र मे नवीन प्रवृत्तियो के प्रवर्तक और मानव जीवन का मूल्याकन करते हुए अपने जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण करने वाले[3] आधुनिक कथा साहित्य के अनगढ शिल्पी[4] थे। जैनेन्द्र की दृष्टि मे काल और देश की सीमाओ से ऊपर उठकर व्यक्ति मे अपने वृहतरूप की चेतना उद्दीप्त करना सत् साहित्य का लक्ष्य होना चाहिए। जैनेन्द्र जी ने जो महत्व व्यक्ति को दिया, वह समाज को नही दिया प्रेम, सत्य व परमात्मा के सम्बन्ध मे जैनेन्द्र जी के और गॉधी जी के विचारो मे अद्भुत साम्य है। इसी कारण अनेक विद्वानो ने माना है कि गॉधी जी के जीवन दर्शन का ही प्रतिपादन उन्होने किया है। वे स्वय स्वीकार करते थे कि वह गॉधी जी के ऋणी है। उनके कथा साहित्य की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे सामाजिक समस्याओ के निरूपण के स्थान पर व्यक्तिगत उलझनो का विश्लेषण करते हुए पात्रो की बुद्धि और उनके हृदय के सघर्ष का उद्घाटन करते है। जैनेन्द्र ने स्वय कहा है कि बुद्धि भरमाती है, वह द्वैत पर चलती है। उसके साहित्य का परम श्रेय अखण्ड और अद्वैत सत्य है, उसका व्यवहारिक रूप समस्त चराचर जगत के प्रति प्रेम अनुकम्पा है।[5] उनके साहित्य मे व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के साथ अहवादिता की अन्त.विश्लेषण उपलब्धि होती है।

डॉ० मनमोहन सहगल ने जैनेन्द्र के विषय मे अपने विचारो को निम्नाकित शब्दो मे व्यक्त किया है—"स्पष्ट ही जैनेन्द्र ने जो महत्व व्यक्ति को दिया, वह समाज को नही। उपन्यासो के मुख्य पात्र प्राय समाज के प्रति विद्रोही हैं। उनका अहम् इतना प्रबल है कि वे समाज के नियमो—बन्धनो मे आवृत होकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता का होम करने को तैयार नही। जैनेन्द्र ने उनके भीतरी यथार्थ की मज्जा तक

---

3 डॉ० प्रताप नारायण टडन – हिन्दी उपन्यास मे कथा साहित्य का विकास पृष्ठ–105
4 डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ – सप्त सिन्धु मासिक सितम्बर 1970 पृष्ठ–65
5 जनन्द्र कुमार – साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृष्ठ–15

उखाडकर रख दिया है, किन्तु कठोर यथार्थ और शुष्क वस्तु स्थिति मे उनकी भी गति नही हो पाती।'[6] व्यक्ति समाज मे रहकर ही अपने व्यक्तित्व का विकास करता है तथा समाज ही उसे प्रतिष्ठा ओर सम्मान प्रदान करता है। यदि समाज न हो तो मनुष्य का व्यक्तित्व अपने आप मे शून्य हो जाता है। डॉ० कुसुम कक्कड के विचार द्रष्टव्य है—'जैनेन्द्र ने सामाजिक व्यवस्था को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है।'[7] जैनेन्द्र अपने कथा साहित्य मे पात्रो की प्रत्येक सुखद अथवा दु खद मानसिक स्थिति का निष्पक्ष चित्रण करते हुए उसके साथ सहानुभूति मिश्रित करुण व्यवहार करके जीवन की एक—एक गॉठ खोलने मे सहायक होते हैं। सेक्स पर दिया हुआ कवर अनेक प्रकार कुण्ठाओ को जन्म दे सकता है, जैनेन्द्र उस कवर को ही हटाकर बात नही करते, बल्कि उस कवर से उत्पन्न असाधारणता को नार्मल्सी की ओर ढकेलने मे सहयोग देते है। जैनेन्द्र की कृतियॉ उनके उदात्त क्षणो की देन हैं। वह प्राचीन कथाकार की तरह घटनाओ का सकलन और उनकी सूत्रबद्धता मे विश्वास नही रखत। स्वय 'सुनीता' मे उन्होने स्वीकार किया है कि कहानी कहना उनका उद्देश्य नही था। चिन्तक होने के नाते एक विचार व्यक्ति जीवन की एक समस्या का अभाव, समाधान तथा मानसिक द्वन्द्व प्रस्तुत करना ही निरन्तर उनका लक्ष्य रहा है। उनके लगभग सभी मौलिक उपन्यासो मे कथानक की अपेक्षा व्यक्ति और उसकी अन्तर्मुखी समस्या प्रधान है। यही कारण है कि वे कथानक को कही भी निश्चित रूपाकार नही दे पाये। कथा की उपेक्षा की घोषणा तो उन्होने 'सुनीता' मे ही कर दी थी, किन्तु 'कल्याणी', 'त्यागपत्र' आदि के गठन मे वह घोषणा अपनी पराकाष्ठा को छू गयी है। इनके कथा साहित्य मे पाठक को प्रारम्भ मे ऊल—जुलूल कथनो के अतिरिक्त कुछ नही प्राप्त होता है,

---

6 डॉ० मनमोहन सहगल — उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्याकन और मूल्याकन पृष्ठ– 1

7 डॉ० कुसुम कक्कड — जैनेन्द्र का जीवन दर्शन, पृष्ठ—181

धीरे–धीरे लेखक की निपुणता और व्यक्ति चेतना के सूत्र मे उसके हाथ आने लगते है और यदि पाठक प्रबुद्ध हुआ तो वह कथानक मे डूबकर उनके द्वारा सूत्रो से कुछ नीचे अथाह मे गोता लगाकर उन रत्नो को बटोरने मे भी सफल हो जाता है, जैसा जैनेन्द्र का चिन्तक कथाकार अपनी कृतियो मे बिखेरता चलता है। 'मृणाल' के कथनों को पढकर कोई साधारण व्यक्ति भले ही बुरा–भला कहे, किन्तु सुधी विचारक को उसके पीछे छिपी करुणा का साक्षात्कार होगा और वह 'मृणाल' की आत्मपीडा से भी ज्ञान के बिन्दु एकत्रित कर ही लेगा। जैनेन्द्र अपने कथा साहित्य मे कम से कम पात्रो का सृजन करते है। मुख्य पात्रो की सख्या कमी भी दो–चार से अधिक नही हुई है। इनमे एक न एक पात्र तीखे अह का शिकार जरूर होता है। सभी पात्र व्यक्ति होने के कारण उस अह की ग्रन्थि को, जिसका कारण समानता, काम, अमुक्ति, रूग्ण, आसक्ति अथवा कामना विशेष होती है, खोखले और कुठित पात्र को नार्मल बनाने का प्रयास करते हे। कही–कही तो ऐसे पात्रो मे स्वाभाविकता लाने के कारण कथाकार ने कुछ स्त्री पात्रो से समर्पण तक करवाया है। यथा 'सुनीता' की सुनीता ने हरि प्रसन्न के प्रति और 'व्यतीत' की अनिता ने जयन्त के प्रति किया। जहा पात्र मे सामान्यता लाने की अपेक्षा नही रही वहा जैनेन्द्र ने शुद्ध आत्मपीडा को उसका श्रृगार बना दिया है। 'त्यागपत्र' की मृणाल अन्त तक आत्म पीडा की ज्वाला मे जलती ही नही रही, वरन् वह आत्मव्यथा को जीवन का एक उच्च स्तरीय आयाम मानकर उसमे से उस ज्ञान की खोज करती है। इनके पात्रो की मुख्य समस्या यौन की है। इस क्षेत्र मे असफल रहने पर प्राय. वे समझौता नही कर पाते और अपने तीव्र अह से पीडित होकर असाधारणता को ग्रहण कर लेते है। इस सन्दर्भ मे 'परख' की कट्टो ही आदर्श की ओर झुक पायी है अन्य 'सुनीता' का 'हरि प्रसन्न' कल्याणी की कल्याणी, 'सुखदा' की सुखदा 'विवर्त' का जितेन 'त्यागपत्र' की मृणाल 'मुक्तिबोध' की

नीलिमा असाधरणता को प्राप्त हुई है। जैनेन्द्र के पात्र प्राय विचारक है, किन्तु नियति और आस्था का सहारा निरन्तर लिए रहते है। वे जिस मार्ग को शुभ मानकर उस पर निकलते है तो कदम पीछे नही हटाते है। अपनी हानि को समझते है, किन्तु उस आदर्श मे पूर्ण विश्वास रखकर निरन्तर पीडा सहते हुए भी वे धैर्यवान है। 'व्यतीत' की अनिता अपनी टूटी हुई गृहस्थी को समझती है, किन्तु शायद अपराध भावना से प्रेरित जयन्त के प्रति प्रायश्चित भाव से सामान्य का आवाहन करती सी प्रतीत होती है। मृत्यु उनके लिए भय का उपकरण नही, क्योकि आस्था की राह पर अपनी लक्ष्य सिद्धि हेतु प्रयाण करने वाला पात्र मृत्यु से क्यो भयतीत हो, यह उनका आदर्श है। इसीलिए तो 'कल्याणी' की कल्याणी, 'त्यागपत्र' की मृणाल और 'अनामस्वामी' की वसुन्धरा प्रसन्नता से मौत को गले लगाती हैं। उन्हे अपनी मृत्यु शक्ति मे भी पर्याप्त विश्वास है। 'जयवर्धन' की इला और लिजा 'व्यतीत' की अनिता इस तथ्य के जीते-जागते उदाहरण है।

वातावरण की दृष्टि से जैनेन्द्र का बाहरी परिवेश की ओर आग्रह नही है। उनके कथा साहित्य मे अन्तर्मन का गम्भीर चित्रण इतने सूक्ष्म ढग से किया जाता है कि अन्दर की कोई भी गॉठ अछूती नही रहती। उन्होने अपने कथा साहित्य मे कथानक की भॉति वाह्य वातावरण को कोई विशेष महत्व नही दिया है। इसकी अपेक्षा चिन्तन और आन्तरिक समस्याओ का उनके कथा साहित्य मे विशेष उल्लेख हुआ है। जैनेन्द्र जी की दृष्टि उसी भाव का विशेष स्पर्श कर पायी है जो आधुनिकता की दृष्टि से जीवन के सग जूझते हुए हमारी अनुभूतियो की विभूति बन जाया करता है। 'त्यागपत्र' मे आज की खोखली सभ्यता और स्वावलम्बन के बीच एक सघर्ष दीख पडता है। बाद के उपन्यास 'अनामस्वामी' मे लेखक ने यौन तथा आतक की जिस प्रवृत्ति का स्पर्श किया है, वह वर्तमान परिवेश का नवीनतम रूप कहा जाता है। जैनेन्द्र समाज के चित्रकार न होकर मनुष्य के हृदय

के भीतर छिपी रत्नराशि को उघाडते और मनुष्य की बौद्धिक, मानसिक समस्याओ का सश्लेषणात्मक ढग से दिग्दर्शन कराते है। उनके कथा साहित्य मे आन्तरिक समस्याओ का विशेष स्थान रहता है। उनका प्रत्येक उपन्यास किसी मानसिक उलझन या कुठा की गुत्थियॉ सुलझाता सा प्रतीत होता है, मानसिक उलझन का सामूहिक सन्दर्भ न होकर मनुष्य का अपना निजी घेरा होता है। इसलिए जैनेन्द्र के कथा साहित्य का प्रत्येक प्रमुख पात्र उलझा हुआ, अहवादी और कभी–कभी अति करुण बन गया है। स्त्रियॉ अधिक भावुक होती है, अत वह उपर्युक्त समस्याओं की गम्भीर शिकार हैं।

व्यक्ति और समाज

जैनेन्द्र के साहित्य मे व्यक्ति और समाज के विविध रूप दृष्टिगत होते है। व्यक्ति सामाजिक बन्धनो मे जकडा होने के कारण उनसे मुक्ति पाने के लिए छटपटाता है और इसी मे वह असामान्य बन जाता है। व्यक्ति और समाज की समस्याये विविध रूपो मे चित्रित हुई हैं।

स्त्री–पुरुष एवं परिवार

ससार स्त्री–पुरुष मय है। सृष्टि के आरम्भ से ही ससार केवल स्त्री–पुरुष के नाना सम्बन्धो द्वारा चल रहा है। आदिम युग मे मानव जीवन की कोई व्यवस्था नहीं थी। मनुष्य अपनी मूल प्रवृत्तियो को स्वच्छन्द रूप से सन्तुष्ट करता था। डॉ० कुसुम कक्कड के शब्दो मे–

सम्यता के विकास के साथ स्त्री–पुरूष के सम्बन्ध अधिक व्यवस्थित होने लगे हैं। ज्यों–ज्यो उनमे विवेक बुद्धि जागृत हुई वे

जीवन की विविध समस्याओ की ओर उन्मुख हुए। परिवार व्यवस्था के क्रम मे यह एक महत्वपूर्ण सोपान है।'[8]

भारत मे बीसवी शती से पूर्व अधिकाशतया सयुक्त परिवार का प्रचलन था, किन्तु समय के परिवर्तन के साथ–साथ सयुक्त परिवार टूटते गये। समाजवादी युग मे सयुक्त परिवार का कोई अस्तित्व नही रह गया। सयुक्त परिवार के सम्बन्ध मे डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के विचार द्रष्टव्य है –

"भारतीय समाज व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण अग सयुक्त परिवार रहा है। सयुक्त परिवार प्रणाली प्राचीनकाल से सामाजिक सगठन का एकमात्र आधार रही है। इससे परिवार मे सहयोग, सद्भाव, स्नेह एव समानता की भावना बनी रहती है।"[9] पति–पत्नी, सास–बहू, ननद–भौजाई, देवर–भौजाई आदि के कलह एव सघर्ष की कहानी आदिकाल से चली आ रही है, परन्तु आर्थिक स्वरूप इतना परोपकारी, परस्पराक्षेपी था तथा पारिवारिक सामजस्य के आदर्श एव सस्कार इतने दृढ थे कि कटुता उनके सामने व्यर्थ हो जाया करती थी। इस प्रकार संयुक्त परिवार अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये रहा, जिसमे उस देश की आर्थिक परिस्थितियो ने आवश्यक सहयोग दिया। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे सयुक्त परिवार का विशिष्ट उल्लेख नही हुआ है। उनके कथा साहित्यं का निखार व्यक्ति के विषय मे ही दृष्टिगत होता है, परिवार के परिवेश मे नहीं, अर्थात् द्वन्द्व का कारण पारिवारिक समस्याएं न होकर आन्तरिक उत्पीडन से उद्भूत अन्तर्द्वन्द्व है। जैनेन्द्र जी भारतीय संस्कृति के पूर्ण समर्थक हैं। उनकी दृष्टि मे व्यवस्था विहीन समाज आदिम काल का प्रतीक हो सकता है। कृषि–प्रधान युग मे संयुक्त परिवार ही विशेष रूप से प्राप्त होते थे,

---

8 डॉ० कुसुम कक्कड़ जैनेन्द्र का जीवन दर्शन पृष्ठ–182
9 डॉ० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ0–64

किन्तु इस उपयोगवादी युग मे परिवार केवल पति–पत्नी तक सिमट गया है।[10] युगानुरूप उनके पात्र प्रगतिशील तथा स्वच्छन्द विचारो के पोषक है। उनके अनुसार जीवन–मूल्य तेजी से आर्थिक बनते जा रहे है। उस वेग मे जान पडता है कि परिवार और सम्मिलित परिवार का रूप छोटा हो जाने को बाध्य है। इस प्रकार स्पष्ट होता हैं कि यदि आर्थिक सभ्यता का दौर–दौरा रहा तो यह परिणाम घटित हुए विना न रहेगा। लेकिन पारिवारिक इकाइयॉ स्वय उस आर्थिक सभ्यता के प्रवाह को रोके हुए है। उनके दो परवर्ती उपन्यास 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' की कथा मे पारिवारिक सम्बन्धो के मध्य होने वाले 'मतभेद' को ही विशेष प्रश्रय मिला है।

पिता–पुत्र तथा बेटी–दामाद के मध्य घटित घटनाओ को पारिवारिक स्तर पर ही चित्रित किया गया है। अन्य प्रारम्भिक उपन्यासो मे परिवार तो है, किन्तु परिवार की घटनाओ अथवा समस्याओ की ओर कोई ध्यान नही दिया गया है। वहॉ वाह्य घटना से अधिक मानसिक तनाव दृष्टिगत होता है। जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे परिवार की स्थिति अत्यधिक निर्बल है।

व्यक्तित्व का समुचित विकास सुखी परिवार के सौहार्दपूर्ण परिवेश मे ही सम्भव हो सकता है। पारिवारिक तनाव की स्थिति मे व्यक्तित्व का विकास समाज मे अपना विशिष्ट स्थान नही बना पाता। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में इतना वैषम्य दिखायी देता है कि उनके सम्बन्ध मे कोई निश्चित धारणा नहीं बनायी जा सकती। 'कल्याणी' मे जो व्यथा है वह 'मुक्तिबोध' की स्वच्छन्दतापूर्ण परिस्थिति में सम्भव नही हो सकती है। जैनेन्द्र परिवार के अस्तित्व का खण्डन समाज के हित के लिए महत्वपूर्ण नही मानते। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे उत्पन्न होने वाली विषमता समाज को लेकर नही है, बल्कि मनुष्य की

---

10 जैनेन्द्र कुमार समय और हम पृष्ठ – 137

सत्यता को लेकर उत्पन्न हुई है। उनके सम्बन्ध मे यह कहना ठीक नही है कि उन्होने समाज का विरोध किया है। समाज सत्य है, किन्तु समाज के साथ व्यक्ति की सच्चाई का निषेध नही किया जा सकता। समाज मनुष्य से ही है और मनुष्य की सार्थकता भी समाज मे ही सम्भव है।

ब्रह्मचर्य

हमारे देश मे मनुष्य जीवन को चार अवस्थाओ मे विभाजित किया गया है, वे अवस्थाये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास हैं। जीवन की प्रथम अवस्था को ब्रह्मचर्य कहा गया है। इस अवस्था मे मानव केवल अपनी शिक्षा–दीक्षा ही नही प्राप्त करता है, बल्कि अपना सर्वांगीण विकास करता है। जैनेन्द्र की दृष्टि इससे अछूती न रह सकी, उन्होने 'अनामस्वामी' मे इसकी विस्तृत व्याख्या की है। उपन्यास के कथा पट एक बीतरागी किन्तु सामाजिक दृष्टिकोण के व्यक्ति 'अनामस्वामी' के आश्रम मे बुने जाते हैं। सहज वातावरण ब्रह्मचर्य का प्रश्न उठाता है। अनाम दुनिया से भागने, समाज से अलग होने, अपने शरीर को कठोर दृढवादिता का शिकार बनाने आदि को ब्रह्मचर्य के आकर्षक नाम से पुकारने पर विश्वास नहीं रखता है। अनाम की दृष्टि मे विवाह अनिष्ट नहीं हैं। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा कानून से नही, विवाह के बन्धन से अधिक हो सकती है। कथाकार चिन्तन पूर्णता को ही ब्रह्मचर्य का लक्ष्य मानता है। शक्तिहीनता पथभ्रष्टता है, शक्तिहीन बनना ब्रह्मचर्य का चरितार्थ न मान लिया जाय, तथापि वैसे प्रयोग किए गए हैं। आदमी हठात् नपुसंक बन गया है, पर वहॉ पूर्णता नही है और पूर्णता ब्रह्मचर्य का लक्ष्य है। बन्द मठ मे रखकर किसी की आत्मा को खोला नहीं जा सकता है।[11] अर्थात् अकेलेपन के

---

11 जैनेन्द्र कुमार – अनामस्वामी, पृष्ठ – 39

माध्यम से कोई ब्रह्मचारी पापमुक्त नही हो सकता। ब्रह्मचर्य निषेधात्मक तत्व नही है और न पलायन की स्थिति ही है, स्नेह, प्रेम और सेवा ही ब्रह्मचारी का धर्म है। जैनेन्द्र की प्रतिक्रिया स्पष्ट है– 'अपने को न सहारा पाने के कारण प्राणी भोग मे प्रवृत्त होता है। पूर्णकाम प्राणी निष्काम होता है। निष्कामता निषेधक स्थिति नही, वह तो परिपूर्ण मनोदशा है। इसी तरह ब्रह्मचर्य भी निषेधक भाव नही है, वह तो पूर्णता का साधक भाव ही है।[12] अवतारी मनुष्य भी तो अकेले अवतारी नही बन गये थे, वे सबके बीच और सबके साथ रहे। वही उन्होने महाप्रेम की व्यथा को सॅभाला। ब्रह्मचारी साधारण समाज को घृणा नही बल्कि प्रेम और करुणा से देखेगा। अनुकम्पा सच्चे बह्मचारी का लक्षण है। ब्रह्मचारी अहं का केन्द्र है अकथनीय सेवा करना ब्रह्मचारी का स्वभाव समझना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैनेन्द्र ब्रह्मचर्य को एक ऐसी साधना मानते है, जिसमे मनुष्य अपने को समाहित कर दे। 'अनामस्वामी' का पात्र–चित्रण इसी ब्रह्मचर्य दृष्टि को साकार करता है। ब्रह्मचर्य मे मनुष्य बिखराव से अलग होकर आत्म–सयम की ओर प्रवृत्त होता हैं, किन्तु यह प्रवृत्ति किसी हठ या सयम का योग न होकर निजता के विकास का विशाल रूप है। अग्रेजी मे जिसे 'इटीग्रेसन आफ पर्सनालिटी' '(Intıgration of Personaltıy)' कहे, ब्रह्मचर्य वही योग है। अपने इन्द्रिय, मन, प्राण को ब्रह्मनिष्ठा मे पिरोकर रखना है। व्यक्ति समष्टि भाव से शून्यवत न होता दिखे, वह निरी अपनी ईकाई मे ही बसता जाए, तो वहॉ ब्रह्मचर्य असिद्ध मानना चाहिए।[13] व्रत तो समष्टि भाव ही है, उसकी चर्चा व्यक्ति को छोटा नही, बल्कि विशाल ही कर सकती है।

---

12 जैनेन्द्र कुमार – अनामस्वामी पृष्ठ–42
13 वही पृष्ठ–43

इस तरह ब्रह्मचर्य मानव समाज ही नही, वरन् चराचर विश्व के साथ योग पाने की साधना का नाम है। इसमे मनुष्य के समाज से अलग हो जाने की बात ही नही की जा सकती है। जीवन मे काम को न मानकर ब्रह्मचर्य की साधना करना ही मनुष्य का अह है। सत्य की शक्ति के कारण ही मन का झूठ परास्त हो जाता है और मनुष्य को टूटना पडता है। 'अकेला' शीर्षक कहानी मे ब्रह्मचर्य की इच्छा करने वाला मनुष्य स्वय को धोखा नही दे पाता है और कहता है, वह अकेले नही रह सकता, अकेले रहना उसके लिए अधर्म है।' जैनेन्द्र के अनुसार, असत्य के सहारे समाज मे ऊपर उठने से अच्छा है, मन के सत्य को मानकर अपने को अर्पण कर देना, क्योकि सत्य वाह्य स्वभाव मे ही नही, अन्दर और वाह्य की समग्रता मे ही सम्भव है। इसके लिए मनुष्य मे पूर्णता अपेक्षित है, यही जैनेन्द्र की मान्यता है।

विवाह और परिवार

विवाह पारिवारिक जीवन की प्रमुख घटना होती है। इसलिए परिवार को उन्होने वैवाहिक जीवन के लिए अनिवार्य माना है। वे विवाह को किसी भी स्थिति मे उपेक्षणीय नही मानते अत विवाह के साथ परिवार का होना स्वाभाविक ही है। परिवार वह स्थान है जहॉ स्त्री–पुरुष विवाह सस्कार के सम्पन्न होने के उपरान्त सन्तानोत्पत्ति तथा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास की ओर मुडते हैं। जैनेन्द्र के शब्दो मे –

विवाह ही है जो हमे ससार मे पहुॅचने का रास्ता देता है। बीस की पूर्णता होते ही इक्कीसवा वर्ष अपने आप उस पर आ जायेगा। विवाह की एक ऐसी ही सहज परिणति मैं मानता हूॅ।[14]

---

14 जैनन्द्र कुमार – काम प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 20–21

जीवन नितान्त परीक्षण अथवा मुक्ति प्रयोग नही हो सकता। उसके लिए अवलम्ब की आवश्यकता है। मनुष्य इसी रूढ सस्था पर कायम है जो कि स्वय विवाह पर टिकी है। विवाह को एक सामाजिक सस्कार माना है। स्त्री–पुरुष विवाह के माध्यम से ही परस्पर मिलते है तथा सन्तानोत्पत्ति मे एक दूसरे के सहायक होते है। उनका कथा साहित्य बौद्धिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। उनमे मनुष्य की आत्मिक समस्या और द्वन्द्व का विशेष रूप से विवेचन किया गया है। जैनेन्द्र ने विभिन्न सम्बन्धो से अलग उन्हे मात्र स्त्री–पुरुष के रूप मे जानने की चेष्टा की है। उन्होने स्त्री–पुरुष के अर्न्तजगत की गहराई मे प्रवेश करके दमित भावो की सहज अभिव्यक्ति का प्रयास किया है। जैनेन्द्र विवाह और परिवार को अनिवार्य रूप से स्वीकार करते हैं। उनके उपन्यास और कहानियो का कथानक वैवाहिक और पारिवारिक परिवेश मे ही फलित हुआ है। जैनेन्द्र जी ने परिवार को वैवाहिक सस्कार सम्पन्न कराने हेतु मात्र ही माना है। विवाह के उपरान्त परिवार का दायित्व प्रारम्भ होता है। बच्चो के पालन–पोषण, शिक्षा–दीक्षा आदि इसके आवश्यक तत्व हैं। व्यक्तित्व का समुचित विकास सुखी परिवार के सौहार्दपूर्ण परिवेश में ही संभव हो सकता है। विवाह की असफलता परिवार के लिए चिन्ता का विषय बन जाती है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे परिवार के लिए कोई उच्च आदर्श दृष्टिगत नही होता। 'सुखदा' मे पारस्परिक तनाव के कारण बच्चे की शिक्षा स्वय एक समस्या बन जाती है। पारिवारिक तनाव की स्थिति में व्यक्तित्व का विकास समाज में अपना विशिष्ट स्थान नही बना पाता। 'त्यागपत्र' मे एक विवाह के सफल न होने पर दूसरा सम्बन्ध सभव नही हुआ है, किन्तु 'मुक्तिबोध' में वैवाहिक अनुबध भी प्रयोग मात्र रह गये हैं। विवाह जीवन के अनेक समझौतो का मूल है। मन को वश मे रखना, झुकना, छोटा बनना, दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना,

निभाना आदि सभी तत्व प्रेम के लिए भले न हो परन्तु वे विवाह के लिए अनिवार्य है। सामाजिक दायित्वो से उलझा होने के नाते ही विवाह का विधान है। जैनेन्द्र परिवार के अस्तित्व का खण्डन समाज के हित मे उपयोगी नही समझते। परिवार और विवाह समाज की बाह्य और अनिवार्य स्थितियॉ हैं। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे उत्पन्न होने वाली विषमता समाज को लेकर नही है, बल्कि मनुष्य की सच्चाई को लेकर प्रकट हुई है।

प्रेम और विवाह

जैनेन्द्र के साहित्य की सबसे बडी समस्या विवाह मे प्रेम को स्वीकार करने के कारण ही उत्पन्न होती है। विवाह और प्रेम को वे जीवन सागर के दो समान्तर किनारो के रूप मे मानते है। उनके अनुसार वैवाहिक जीवन मे यदि बाहर से आने वाले प्रेम को रोक दिया जाय तो एक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। वैवाहिक जीवन विशाल ,है, सूक्ष्म नही। 'सुनीता' मे पारिवारिक जीवन की उदासीनता से मुक्ति पाने के हेतु ही सुनीता और श्रीकान्त के बीच हरिप्रसन्न का प्रवेश होता है।

डॉ० लक्ष्मीकान्त शर्मा के शब्दो मे "ऐसे समय हरि का द्रवित काम अनायास ही फूट पडता है। वह अपने कर्तव्य को भूलकर सुनीता को समूची पा लेना चाहता है। सुनीता के निर्वसन सौन्दर्य दर्शन से हरि की दमितवासना शान्त होती है और वह सुनीता को उसके घर पहुँचाकर सदा के लिए पलायन कर जाता है।[15] जबकि सुनीता जिसने पति के आग्रह से हरि की इच्छा के सम्मुख आत्मसमर्पण किया था, पूर्ववत् पति के प्रेम की पात्री बनी रहती है।

---

15 डॉ० लक्ष्मी कान्त शर्मा–जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक और शैली तात्विक अध्ययन पृष्ठ–2

'सुखदा' मे सुखदा विवाह से पहले अपने भावी जीवन के सम्बन्ध मे जो सपने देखती है, वे पूरे नही होते। अभावग्रस्त स्थिति उसे बाहर से आये आकर्षणो के प्रति और प्रेरित करती है। लाल का भव्य व्यक्तित्व उसे इसलिए प्रभावित करने मे समर्थ हो सका है, ऐसी स्थिति मे घर का माहौल असन्तोषजनक हो जाता है, और पति–पत्नी का आत्मिक मिलन सम्भव नही हो पाता। श्री रघुनाथ सरन झालानी के विचार इस सदर्भ मे द्रष्टव्य है –

'लाल के मुक्त, स्वच्छन्द और रहस्यात्मक चरित्र से वह आकृष्ट होती है' किन्तु उसके पति कान्त को लाल की देश–भक्ति मे विश्वास नही है और इसी बल पर वह सुखदा मे लाल के प्रति किचित विरक्ति का भाव उत्पन्न करने मे सफल होता है, किन्तु तभी लाल को उसके दल की ओर से मृत्यु–दण्ड सुनाया जाता है और इस अवसर पर वह सुखदा की सहानुभूति जीत लेता है और उसके ह्रदय मे प्रेम को जागृत करता है।[16] जब यह बात कान्त को पता चलती है कि लाल सुखदा से प्रेम करता है तो उसे यह स्वीकार नही कि सुखदा यह महसूस करे कि वह विवाहित होने के कारण लाल से कदापि प्रेम नही कर सकती। सुखदा के लिए अधिकार की भावनाओ उसमे पहले भी नही थी, और अब तो वह उसको और भी अधिक स्वतन्त्रता देने को तत्पर है। 'कल्याणी' मे कल्याणी और उसके पति का सम्बन्ध इतना शका ग्रस्त होता है कि उनमे एक दूसरे के लिए समर्पण की भावना जागृत होने का प्रश्न ही नही उठता। जैनेन्द्र के उपन्यासो मे पति की तरफ से पत्नी को प्रेम करने की पूरी छूट रहती है, पति कभी भी पत्नी के प्रति क्रुद्ध नही होता, किन्तु कल्याणी अपने पूर्व प्रेमी के प्रति अपने प्रेम को प्रकाशित करने में असमर्थ होती है, उसका प्रेम भीतर ही भीतर बढता रहता है। उसकी वेदना के मूल मे प्रेम की

16 श्री रघुनाथ सरन झालानी – जैनेन्द्र और उनके उपन्यास पृष्ठ – 79

अप्राप्ति भी है। 'मुक्तिबोध' तथा 'अनन्तर' मे पति के जीवन मे प्रेमिका का प्रवेश होता है। जैनेन्द्र ने स्वय कहा है—"सामाजिक मर्यादा सत्य की साधना की राह मे आप ही बनती है। आशय कि समाज की मर्यादा स्वय स्थिर नही है ,विकासशील है।" सदाचार मे आचार को पीछे मानिए, सत् पहले है। सत् के अनुसन्धान मे आचार को आगे बढते ही जाना है। इस तरह दृढ सदाचार और सजीव सदाचार मे हर कार्य मे कुछ अन्तर देखा जा सकता है।[17]

जैनेन्द्र वैवाहिक जीवन मे बाहरी प्रेम को अनैतिक कृत्य नही मानते। वे बिना सकोच के अपनी समस्त कहानियो और उपन्यासो मे ऐसे विचारधारा को आधार बनाकर चले है। उनकी दृष्टि मे वैवाहिक जीवन मे प्रेम सम्बन्ध की स्वीकृति से सामाजिक मर्यादा भग नही होती।[18] जैनेन्द्र प्रेम और विवाह दोनो को ही स्वीकार करते हैं। विवाह को प्रेम की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है। इस सम्बन्ध मे उन्ही के शब्दो मे –'प्रेम जीवन को बहलाने की वस्तु बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिए स्वाहा नही किया जा सकता, जीवन तो दायित्व है और विवाह वास्तव मे उसकी पूर्णता की राह—उसकी शर्त।इस दायित्व से एक ख्याल व एक भावना मे डूबकर कैसे मुक्ति पायी जा सकती है? प्रेम को इस दायित्वपूर्ण विवाह से कैसे विरोध करने दिया जाए? जीवन प्रेम से अधिक महत्व की, अधिक श्रेष्ठ और पवित्र वस्तु है। प्रेम जो आखिर मे केवल एक आवेश एक भाव है उस पर[19] जीवन को कैसे भेट कर दिया जाय। 'परख' में प्रेम, विवाह तथा जीवन इन तीनो बिन्दुओ को पात्रो और घटनाओ के माध्यम से चित्रित किया गया है। क्रमश कट्टो, सत्यधन तथा बिहारी प्रेम, विवाह तथा जीवन के आदर्श

---

17 जैनेन्द्र कुमार – प्रेम और विवाह पृष्ठ–97
18 जैनेन्द्र कुमार – प्रेम और विवाह, पृष्ठ–110
19 जैनेन्द्र कुमार – 'परख', पृष्ठ – 181

प्रतिनिधि है। डॉ० मनमोहन सहगल ने अपने विचार निम्नाकित शब्दो मे व्यक्ति किये है—

'कट्टो ने प्रेम के भावावेश मे बिहारी को उस रूप मे खो दिया—जिसमे उसका वैधव्य घुल सकता था, सत्यधन ने प्रेम की असारता पहचान कर विवाह की गरिमा मे सार्थकता खोज ली और बिहारी जो दूसरो के लिए जीना ही जीवन मानता है, अपनी कर्मठता का सहारा लेकर एक सन्तुष्ट जीवन को पा सकने के सपनो मे लीन हुआ, इस प्रकार तीनो मुख्य पात्र मिलकर एक सम्पूर्णता का निर्वाह कर रहे है।'[20] तीनो मे निजता की प्रधानता है, तीनो प्रेम करते है, किन्तु तीनो उनके अलग—अलग स्वरूप को जानते और समझते है। इसलिए कट्टो प्लेटोनिक भाव की तरफ, सत्यधन दायित्व भाव की तरफ और बिहारी उत्सर्ग भाव की तरफ अग्रसर हो जाते हैं। जैनेद्र की दृष्टि मे विवाह सामाजिक सस्था है, उससे परिवार बनता है। उसे केवल दो का निजी सम्बन्ध समझना और उस आधार पर विवाह को स्थापित करना गलत होगा, क्योकि तब उसकी पूर्णता सामाजिक न होकर कामुक होगी।[21] पति—पत्नी का सामाजिक होना आवश्यक है। देश, समाज और राष्ट्र के प्रति भी उनका कुछ कर्तव्य है जिसे घर की चहारदीवारी से बाहर आकर ही पूर्ण कर सकते हैं। जैनेन्द्र की दृष्टि मे विवाह दायित्व लाता है और प्रेम मुक्त है।[22] जैनेन्द्र जी की विवाह और प्रेम सम्बन्धी कल्पना 'विवर्त' मे ही सफल हो सकी है। वहॉ विवाह और प्रेम समान्तर रूप में चलते हैं। दोनो सम्बन्धो मे प्रेम और इज्जत का भाव विद्यमान रहता है। प्रेमी और पति को लेकर मानसिक तनाव की स्थिति उत्पन्न नही होती। पति आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न, अत्यन्त सुशिक्षित और नि शंक प्रकृति के हैं। इसलिए पति की

---

20 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्याकन और मूल्याकन पृष्ठ—108
21 जैनेन्द्र कुमार – काम प्रेम और परिवार पृष्ठ—19
22 जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत' पृष्ठ – 35

ओर से कोई दबाव उत्पन्न नही होता है। भुवनमोहिनी और जितेन के प्रेम सम्बन्धो के कारण परिवार पर कोई असर नही पडता। जितेन की प्रेम भावना अतृप्ति के कारण क्रान्ति मे परिवर्तित हो जाती है। जितेन की सभी क्रियाये अप्राप्ति से प्रकट होती है, किन्तु उन सभी क्रियाओ का भुवनमोहिनी पर कोई प्रभाव नही पडता। वह जितेन की विवशता को जानते हुए भी उसके प्रति अपार स्नेह और प्रेम रखती है। जैनेन्द्र का उद्देश्य विवाह मे प्रेम के माध्यम से स्वस्थ वातावरण को स्थापित करना है। वे पति–पत्नी की निकटता के लिए बाहर से प्रवेश करने वाले प्रेम को आवश्यक मानते हैं। 'सुनीता' मे वीरान जगल मे जब सुनीता हरि प्रसन्न के सम्मुख पूर्ण समर्पण करने के उपरान्त लौटती है तो उसका मन शान्त रहता है। वह पुन अपने घर परिवार मे सुख शान्ति का माहौल स्थापित प्रदान करने मे समर्थ होती है। 'सुनीता' मे जैनेन्द्र का आदर्श अपनी पूर्णता पर परिलक्षित होता है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का द्वन्द्व केवल प्रेम को लेकर ही नही उत्पन्न होता, उसमे घर–बाहर के मध्य असन्तुलन की स्थिति ही विशेष खटकती है। उन्होंने विवाह मे प्रेम को दो चार स्थलो मे ही घटित होते हुए नहीं दर्शाया है, बल्कि उनका सम्पूर्ण कथा साहित्य इसी पर आधारित है। उनके अनुसार पत्नी–पति मे प्रेमी–प्रेमिका समाप्त नही हो सकते। अलग से उन्हे होना ही है। दोनो का होना बन्द नही होने वाला।[23] जैनेन्द्र की विवाह और प्रेम सम्बन्धी विचारधारा समसामयिक अधिकाश लेखको मे दृष्टिगत होती है। प्रत्येक पुरुष और स्त्री मे एक दूसरे के प्रति काम भावना की इच्छा होती है। चाहे वह व्यक्ति किसी भी स्तर का हो। वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ मे सब कुछ अनजाना रहता है। परन्तु धीरे–धीरे पति–पत्नी के मध्य स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो सकता है और उनका बाहरी आकर्षण कम हो

---

23 जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत पृष्ठ – 68

जाता है। जैनेन्द्र के अनुसार 'विवाह' जीवन को विस्तार देता है परिधीय केन्द्र नही देता है। विवाह के माध्यम से हम अपने प्रेम का विस्तार करने का समय पाते है। अगर विवाह प्रेम को बन्धन मे डालने वाली वस्तु हो जाये, तो परिवार काल कोठरी है।

स्वत्वमूलक परिवार जकडबन्द बन जाता है। उसमे जीवन का विकास रुक जाता है, किन्तु विवाह द्वारा प्रेम बन्द नही होता, बल्कि फैलने के लिए स्थान प्राप्त कर लेता है, तभी उसकी सत्यता प्रकट होती है। उनकी मान्यता है कि मर्यादा और प्रेम के मध्य छल के प्रवेश से मर्यादा की रक्षा सम्भव नही है। मर्यादा की रक्षा और प्रेम की इससे सिद्धि होती है, जहाँ इन दोनो का समन्वय बैठता हो, वही मर्यादा की रेखा है। यदि सुरक्षा अकेले चले तो असगति उत्पन्न हो जायेगी और उच्छृखला आ जायेगी। वस्तुत जैनेन्द्र प्रथम लेखक थे, जिन्होने सामाजिक नियमो को ध्यान मे रखते हुए भी जीवन मे प्रेम को अनिवार्य रूप मे स्वीकार किया है। उनके जीवन और साहित्य का एक मात्र उद्देश्य सत्य का उद्घाटन करना है। उनका साहित्य समाज का दर्पण ही नही है, बल्कि वह मानव जीवन के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने मे भी समर्थ थे। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे पुरातन एव नूतन दोनो परम्पराओ, विचारधाराओ के पात्र हैं। जैनेन्द्र प्रेम और विवाह दोनो को स्वीकार करते हैं। जैनेन्द्र जी के अनुसार विवाह को भोग मे ही सीमित कर देना अनिष्टकर है।

प्रेम विवाह

जैनेन्द्र प्रेम और विवाह को समानान्तर रूप से स्वीकार करते हुए भी प्रेम–विवाह के पक्ष मे नही है। उन्होने अपने साहित्य मे प्रेम–विवाह को किसी भी स्थिति में स्वीकार नही किया है। यद्यपि प्रेम मूलक स्वतन्त्रता को देखते हुए उनका यह दृष्टिकोण असगत सा

प्रतीत होता है। जैनेन्द्र के अनुसार विवाह सामाजिक सस्कार है, अत उसमे समझौते के हेतु अवकाश रहता है। प्रेम–विवाह व्यक्ति और समाज दोनो दृष्टियो से हानिप्रद है। उनके अनुसार, विवाह मे प्रेम का आग्रह इतना अनिवार्य नही, जितना माता–पिता, गुरुजन, बन्धु–बाधव का सयोग और आशीर्वाद।[24] प्रेम–विवाह आवेश और आवेग की स्थिति मे ही होता है। उस समय विवेक बुद्धि कार्य नही करती। प्रेम मुक्त होता है। वह दायित्व नही ग्रहण करता, किन्तु जब प्रेम को विवाह मे बद्ध कर दिया जाता है तो उसमे पारस्परिक सौहार्द से अधिक तनाव की सम्भावना रहती है। गृहस्थी यथार्थ जगत की घटना है। प्रेम अतीन्द्रिय तथा आत्मलोक की अभिव्यक्ति है। जैनेन्द्र के अनुसार व्यवस्थित विवाह मे पारस्परिक तनाव होने पर भी एक दूसरे के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना नही उत्पन्न होती। 'प्यार का तर्क', कहानी मे उन्होने प्रेम–विवाह का पूर्ण निषेध किया है। इस कहानी मे उन्होने प्रेम–विवाह सम्बन्धी विचारो को बहुत स्पष्टता के साथ वर्णित किया है। जैनेन्द्र के अनुसार प्राप्ति की कामना मे प्रेम का पोषण नही होता, प्रेम मे त्याग अनिवार्य है। प्रेम–पात्र से दूरी होने पर भी आत्मिक स्तर पर मिलन–सुख का सा आनन्द प्राप्त होता है, किन्तु प्रेम मे वैवाहिक बन्धन उत्पन्न करने से घृणा अथवा तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो कि असहनीय है। प्रेम के अभाव में जीवन किसी प्रकार सम्भव हो सकता है, किन्तु घृणा मनुष्य के आपस के स्नेह और प्रेम को सदैव के लिए नष्ट कर देती है। विवाह रूमानी प्रेम पर टिक नही सकता। जैनेन्द्र के शब्दो मे–

'अपने को लेकर स्त्री–पुरुष को विवाह के क्षेत्र मे साथी चुनने के लिए निकल जाना पडे, इस अवस्था को बहुत उन्नत सामाजिक

---

24 जैनेन्द्र कुमार – काम प्रेम और परिवार पृष्ठ – 40

व्यवस्था नही मानता।[25] इस सन्दर्भ मे डॉ० कुसुम कक्कड के विचार द्रष्टव्य है, "जैनेन्द्र विवाह के सम्बन्ध मे पुरूषार्थ से अधिक भाग्य को महत्व देते है। भाग्य के निर्णय पर व्यक्ति सन्तुष्ट रहता है। उसमे द्वन्द्व या आग्रह की स्थिति नही उत्पन्न हो सकती। पुरूषार्थ मे व्यक्ति का अह प्रबल रहता है और दोनो ओर से आग्रह होने के कारण जीवन तनावपूर्ण तथा असतोष की स्थिति से गुजरता है। जैनेन्द्र विवाह के हेतु स्वय वर के चुनाव को उचित नही मानते। वे विवाह मे धार्मिक वृद्धि को आवश्यक समझते है।'[26]

इस प्रकार जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे प्रेम–विवाह को किसी भी स्थिति मे स्वीकार नही किया गया है। उनके कथा साहित्य मे प्रेम–सम्बन्ध अधिकतर विवाह के बाद ही दिखाई देते हैं, 'विवर्त' मे विवाह के पूर्व ही प्रेम सम्बन्ध की कल्पना की गयी है। किन्तु प्रेम–विवाह सम्भव नही हो सका है। जैनेन्द्र के अनुसार प्रेम जीवन का अनिवार्य अग है। प्रेम के बिना जीवन जडवत हो जाता है, किन्तु प्रेम विवाह द्वारा प्रेम मे उत्सर्ग के स्थान पर दायित्व का भाव बढ जाता है, व्यवस्थित विवाह के पश्चात् प्रेम स्थायी है। वस्तुत जैनेन्द्र ने प्रेम के स्थायित्व के हेतु प्रेम–विवाह का निषेध किया है। 'त्यागपत्र' मे मृणाल का प्रेम–विवाह सम्भव नही हो सका है। मृणाल सामाजिक मर्यादा को स्थायी रखते हुए भी अपने अन्तस् के प्रेम को विनष्ट नही होने देती। उसके हृदय में अपने प्रेमी पात्र के प्रति घृणा की भावना जाग्रत नही होती। जैनेन्द्र के पात्र आजीवन भाग्य के थपेडे खाते हुए भी विवाह के दायित्व को सामाजिक मर्यादा के अन्तर्गत ही स्वीकार करते है। वैवाहिक जीवन चाहे कितना ही कष्टमय क्यो न हो जाये, किन्तु वे अपने आदर्श से विचलित नही होते। 'त्रिवेणी' मे प्रेम–विवाह

---

25 जैनेन्द्र कुमार – प्रश्न और प्रश्न पृष्ठ–168–169
26 डॉ० कुसुम कक्कड – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन पृष्ठ – 191

सम्भव न हो सकने के कारण त्रिवेणी का जीवन बहुत खिन्नता और रोष मे व्यतीत होता रहता है। विवाह के बाद भी उसका प्रेम नष्ट नही होता। पर प्रेमी के आने से उसकी सारी मनस्थिति अभिभूत हो जाती है। इसमे प्रेम की पीडा से छूटकारे की इच्छा नही है। प्रेम वात्सल्य मे परिणत होकर सारा का सारा अभाव भावो से भर देता है। त्रिवेणी की झुझलाहट उसकी विपन्नता की ओर भी इगित करती है।

निष्कर्षत जैनेन्द्र की दृष्टि मे प्रेम–विवाह उचित नही है, किन्तु विवाह के बाद भी प्रेम बना रहता है। प्रेम को अक्षुण्ण बनाने के लिए विछोह उपयोगी है। ऐलिस महोदय भी प्रेम–विवाह के पक्ष मे नही है। जैनेन्द्र के विचारो से उनका स्पष्ट साम्य दृष्टिगत होता है। उन्होने प्रेम–विवाह के निषेध हेतु समाज तथा परिवार की ओर से उत्पन होने वाली बाधाओ को आवश्यक माना है।[27] जैनेन्द्र के विचारो पर भारतीय सस्कृति का भी प्रभाव लक्षित होता है। जैनेन्द्र जी विवाह को मा–बाप द्वारा ही सम्पन्न होना मानते हैं और प्रेम विवाह का पूर्णत निषेध करते है।

जैनेन्द्र के उपन्यास और कहानियो मे प्रेम और विवाह को लेकर ही विशेष विवेचन किया गया है, किन्तु अन्तर्जातीय विवाह का सामाजिक दृष्टि से निषेध नही किया है। जैनेन्द्र की समस्त रचनाओ मे जातिवाद को लेकर कोई समस्या नही उत्पन्न होती। उन्होंने कभी भी यह प्रकट नही किया है कि जाति–भेद के कारण विवाह सम्भव नही हो सकता। विवाह के सम्बन्ध मे उन्होने अन्तर्जातीय विवाह को पूर्णतया स्वीकार किया है। यही कारण है कि उन्होने जाति–भेद की समस्या को अपनी रचनाओ मे गम्भीरता से विवेचित नही किया। 'कल्याणी' मे उन्होने अन्तर्जातीय विवाह एव उससे मिलने वाले लाभो

---

27 हेवलाक ऐलिस – यौन मनोविज्ञान पृष्ठ – 253

पर विस्तृत प्रकाश डाला है। यह अन्तर्जातीय विवाह विच्छेद का कारण नही बना, बल्कि परस्पर एक दूसरे को न समझ सकने और हर स्थिति मे सामजस्य का अभाव ही विच्छेद का कारण था।

अन्तर्जातीय विवाह की सफलता और सार्थकता ने छुआछूत जैसे सकीर्ण विचारो को समाज मे पनपने नही दिया। जैनेन्द्र ने अपने साहित्य मे जाति–भेद के प्रश्न को साधारण समझकर छोड दिया हैं। उसी प्रकार समाज के अछूत वर्ग पर भी अलग से विचार नही किया है। सत्य यह है कि वे मनुष्य को मात्र 'व्यक्ति' के रूप मे जानने का प्रयास करते है। इसलिए उनकी दृष्टि मे जाति–भेद अथवा ऊॅच–नीच का भेद विशेष महत्व नही रखता।

अनमेल ।विव। .

भारतीय समाज मे अनमेल विवाह एक भयकर सामाजिक दोष है। नारी परतन्त्र है, अत बहुधा उसी का शोषण हुआ है। यही कारण है कि भारतीय समाज मे अनमेल विवाह का रूप बहुधा बृद्ध विवाह ही होता है, जिसमे किशोरावस्था की लडकियो का विवाह वृद्ध पुरूषो से होता है। वैवाहिक समस्या का इस प्रकार महत्वपूर्ण पहलू अनमेल विवाह है, जो दहेज प्रथा तथा आर्थिक निर्धनता के कारण समाज मे प्रचलित हुआ। अनमेल विवाह की परिणति अतत किसी न किसी रूप मे दुखद ही हुआ करती है। ऐसे विवाह मे स्त्री का आन्तरिक असन्तोष खुलकर भले ही व्यक्त न हो पाये, परन्तु जीवन भर उसे अन्दर–अन्दर घुटना पडता है। 'त्यागपत्र' उपन्यास मे जैनेन्द्र मृणाल के अनमेल विवाह से न केवल सामाजिक समस्या को प्रस्तुत करते हैं, वरन नारी धर्म, मानव धर्म तथा पातिव्रत्य धर्म जैसा गम्भीर सामाजिक–सास्कृतिक प्रश्न भी उपस्थित करते हैं। मातृ–पितृ –विहीन मृणाल अपने भाई तथा भाभी की आश्रित है। वह शीला के भाई से

विवाह के पूर्व ही प्रेम करने लगती है, जिसे आगे गृहिणी के आदर्शो मे ढली भाभी स्वीकार नही कर पाती और उसकी शादी एक बडी आयु के पुरुष से कर दी जाती है। इस सन्दर्भ मे जैनेन्द्र के विचार द्रष्टव्य है –

'मृणाल' नये घर मे समझौता न कर सकी और प्राय अपने पति के हाथ बेतो से मार खाती है[28] और अन्त मे यह भेद खुल जाने पर कि मृणाल शादी से पूर्व शीला के भाई जो अब कही सिविल सर्जन है तथा आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा किए हुए है, से प्रेम करती थी, पति उसे घर से निकाल देता है। मृणाल अपने भतीजे प्रमोद से उस सम्बन्ध मे अपना स्पष्टीकरण कर देती है–"मै स्त्री धर्म को पति धर्म नही मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नही चाहता तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे। वह मुझे नही देखना चाहते, यह जानकर मैंने उनकी आखो के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया। उन्होने कहा मै तेरा पति नही हूँ तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती। पतिव्रता का यह धर्म नही है।[29]

सेक्स की समस्या

स्त्री–पुरुष के लैंगिक सम्बन्धो का अध्ययन सेक्स के अन्तर्गत है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासो मे अथवा उससे भी पूर्व स्त्री–पुरुष सम्बन्धो की सामाजिक पृष्ठभूमि साहित्यिक विषय वस्तु का प्रधान अग थी, किन्तु उत्तर काल मे जबसे मनुष्य का अध्ययन औपन्यासिक सामग्री का आधार बना, तबसे इन सम्बन्धो का चित्रण मूख्य रूप से लैगिक सम्बन्धो के घेरे में विश्लेषण पाने लगा। यही कारण है कि

---

28 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 28
29 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ – 62

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का विवेचन करने के लिए स्त्री–पुरुष के सम्बन्धो मे सैक्स की समस्या को अध्ययन का विषय बनाना ठीक प्रतीत होता है। डॉ० मनमोहन सहगल के विचारानुसार –

'आधुनिक मनोविज्ञान ने सिद्ध किया है कि मानव–जीवन वासना से परे हो ही नही सकता। वासना श्रेय हो या हेय, यह जीवन का अनिवार्य अग है।'[30] जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे स्त्री–पुरुष पात्रो मे जीवन के प्रति असन्तोष मानसिक तनाव और लैंगिक विकारो का विशेष चित्रण उपलब्ध है। इसी से वे पात्र अधिकतर कुंठित एव असाधारण हैं। उनके कथा साहित्य का मूल अमुक्त वासना है, किन्तु सबकी प्रतिक्रिया अलग–अलग है। इसलिए प्रत्येक पात्र व्यक्ति के समष्टि का प्रतिनिधि है। 'परख' मे सेक्स की पृष्ठभूमि सामाजिक है। कट्टो का सत्यधन को चाहकर भी न पा सकने का कारण सामाजिक प्रतिबन्ध ही तो है। सत्यधन के विवाह पर कट्टो की प्रतिक्रिया भी अपनी सामाजिक स्थिति से असन्तुष्ट होने के कारण ही थी और बाद मे बिहारी को पाकर भी जब वह समाज की कुदृष्टि के कारण उसकी समूची बन सकने मे असमर्थ रही, तो बलात् एक उदात्त अन्त की तरफ मुड गयी। कट्टो के जीवन का कच्चा–चिट्ठा वास्तव मे सेक्स की चाहत को रोकने तक ही सीमित है। उसकी सेक्स कथा का आधार सामाजिक बन्धन है, उसमे मानसिक अमुक्ति का कोई स्थान नही। 'त्यागपत्र' की मृणाल की भी यही दशा है। शीला के भाई को न पा सकने का कारण भी सामाजिक है। पति से टूट कर कही भी ठिकाने का अभाव सामाजिक रचना–विधान के कारण है और यह जानते हुए भी कि कोयले वाला जीवन नही पार करेगा, उसके प्रति समर्पण भी सामाजिक व्यवस्था है। 'परख' और 'त्यागपत्र' में सेक्स का स्वरूप सामाजिक है। 'सुनीता' मे जैनेन्द्र ने सेक्स को हरि प्रसन्न और

30 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्याकन और मूल्याकन, पृष्ठ–73

सुनीता के जीवन मे लैगिक सघर्ष पर आधारित किया है। यहॉ दोनो का मानसिक द्वन्द्व असामाजिक है और अवसर पाकर दैहिक स्तर पर भी उतरता है। 'कल्याणी' 'सुखदा', 'व्यतीत' और 'विवर्त' के पात्रो मे काम की अमुक्ति की स्पष्ट प्रतिक्रिया दीख पडती है। इसी से उनके जीवन को प्रवाह मिला है। सेक्स उनकी मूल समस्या है। कल्याणी के दाम्पत्य मे असामजस्य का कारण लैंगिक है, सामाजिक नही। विवाह के पहले वह प्रीमियर से प्रेम करती थी। डॉ० असरानी ने दुष्टतापूर्वक उस पर वेकार का लाछन लगाकर बदनाम किया और विवाह के क्षेत्र मे उसकी उम्मीदवारी हल्की करके अहसान रूप मे उससे स्वय विवाह करने का प्रस्ताव रखा। कल्याणी ने सेक्स मार्ग की इस कुण्ठा को जीवन मे तनाव पैदा नही करने दिया। वह सब कुछ सहती भी गयी उससे परोक्ष मे पति को सोचने के लिए विवश भी किया और अन्दर ही अन्दर जीवन को न्यौछावर कर डाला। 'सुखदा' मे सुखदा अनेक समृद्ध कल्पनाओ को लिए हुए पति गृह मे आयी थी, निर्धन पति के कारण जब सब पर पानी फिर जाता है, तो मौका देखकर वह मचल उठती है। लाल के करीब जाने से उसकी इच्छा की पूर्ति की सम्भावना हुई तो गृहस्थ जीवन को तोडने के प्रयास तीव्र हो गये। सुखदा लाल के पौरुष की ओर आकर्षित होकर उस पर अपना तन न्यौछावर कर बैठी। यही सुखदा की हार हो गयी। उसकी सेक्स भावना हर क्षेत्र मे प्रताडित रही, इसलिए उसकी प्रतिक्रिया नष्ट होने लगी। उसने स्वय को खुद ही नष्ट कर डाला। मूलत वह काम–मुक्ति का ही शिकार थी।

'विवर्त' और 'व्यतीत' जैनेन्द्र के ऐसे उपन्यास हैं, जहॉ काम की समस्या तो सहज है, किन्तु उसका निवारण 'सुनीता' की पद्धति से हुआ है। 'विवर्त' मे जितेन आर्थिक समस्या के कारण भुवनमोहिनी को अपनी न बना सका और इसका आघात उसको क्रान्तिकारी बनाने मे सफल हो गया। व्यतीत का नायक जयन्त अनिता के प्रति लैंगिक

आकर्षण के रहते हुये, उसके दूर के सम्बन्ध मे बहन होने के नाते, उसे पत्नी के रूप मे न पा सका, तो नारी के प्रति बेवफाई की भावना उसके अर्न्तमन को दूषित कर गयी। 'जयवर्धन मे सेक्स की समस्या ने विचित्र रूप ले लिया। यहॉ सेक्स की मॉग उतनी ही तीव्र और अवरोधो को उखाड फेकने वाली है, जितनी हरि प्रसन्न–सुनीता, सुखदा या लाल मे, किन्तु यहॉ लेखक ने उस भावना को सयम और त्याग का ऐसा चोला पहना दिया है कि इला और जय एक दूसरे के लिए तीखी कामना से पीडित होने के कारण बिना विवाह बन्धन मे बधे ही सग–सग रहते है। जैनेन्द्र की बदली हुई प्रवृत्ति 'अनामस्वामी' मे प्रकट होती है। उदिता अमेरिका मे जाकर केवल कामेच्छा की तृप्ति के लिए एक साथ दो–दो पुरुषो की बनकर और फिर भी आर्थिक, सामाजिक एव बदलते हुए नैतिक मूल्यो की दृष्टि से स्वाधीन जीवन जीने को तैयार हैं।

जैनेन्द्र प्रेम व्यापार को इन्द्रियातीत नही मानते और न ही वासना को प्रेम का विरोधी मानते हैं। उनका विश्वास है कि हर साधना के पहले कामनाओ की तृप्ति आवश्यक है। जैनेन्द्र की दृष्टि मे काम वासना की तृप्ति भी उतनी ही बडी साधना है जितनी कैवल्य की उपलब्धियॉ। सेक्स का क्षेत्र हो या प्रेम का परिचर्या करने वाली मात्र भुवनमोहिनी हो अनिता हो या सुनीता–सबको एकाग्र भाव से समर्पित उपचार करना ही होगा, तभी अपेक्षित फल की प्राप्ति सम्भव है। उसके बिना परछाईं को तलवार से काटने के जैसा व्यर्थ प्रयत्न है। जैनेन्द्र सेक्स को व्यक्ति की क्रियाओ की एक चालक शक्ति मानते है, किन्तु उसी को एक मात्र एक चालिका नही मानते । यही कारण है कि कट्टो, मृणाल, सुनीता, उदिता या वसुन्धरा आदि को सेक्स समस्या से जूझते हुए जैनेन्द्र ने सब जगह यही निष्कर्ष निकाले हैं। वे व्यक्ति को व्यक्ति के परिवेश मे विभिन्न प्रर्तिक्रियाओ में लिपटा देखना अधिक उपयुक्त मानते हैं। अमुक्त वासना विकार का कारण हो सकती है, तनाव उत्पन्न कर सकती है, किन्तु उसका आचार हर

एक दशा मे अलग होगा। सेक्स के लिए यही जैनेन्द्र जी का दृष्टिकोण दिखायी पडता है।

सृष्टि के मूल मे काम है। सृष्टि ईश्वर की कामना का ही परिणाम है। ससार स्त्री–पुरुष मय है। उनके मध्य का आकर्षण का केन्द्र काम–भावना ही है। अकेले जीवन की कल्पना निराधार है। जैनेन्द्र के अनुसार जब अकेलापन घेर लेता है तभी काम उसे उद्धार करने के लिए आता है। काम जीवन का अनिवार्य सत्य है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे काम द्वारा भोगोन्मुखता को प्रश्रय न मिलकर उसके प्रेम मूलक रूप को ही स्वीकार किया गया है। प्रेम मे आत्मदान के साथ शरीर दान भी अनिवार्य ही नही स्वाभाविक भी है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे 'प्रेम' शब्द का व्यापक अर्थो मे प्रयोग किया गया है, अपनी समग्रता मे प्रेम और सेक्स वर्जित नही हैं। डॉ० कुसुम कक्कड के शब्दो मे राधा और मीरा के आदर्श को ही उन्होने अपने साहित्य मे विशेषत स्वीकार किया है।[31] राधा–कृष्ण और मीरा भारतीय साहित्य ही नही, जीवन मे ऐसे दो असामान्य और चिरन्तर आदर्श है, जिनके प्रेम के सम्बन्ध मे शका का प्रश्न ही नही उत्पन्न होता। उनके वैवाहिक जीवन मे भी प्रेम अपनी चरम सीमा पर आरुढ था। राधा और मीरा के प्रेम इन्द्रियापेक्ष नही हैं, वरन् उसमे अतीन्द्रियता दृष्टिगत होती है। जैनेन्द्र ने अपने साहित्य मे काम के सहज वेग को ही स्वीकार किया है। अर्थ और काम दोनो मे से किसी को अतिम नही मानते। अर्थ और काम तो जीवन की समानान्तर रेखाएँ है, जिनके मध्य जीवन यात्रा सम्भव होती है। उन्होने सृष्टि के मूल मे भी ईश्वरीय शक्ति की कल्पना की है। जैनेन्द्र के अनुसार सम्भोग की स्थिति मे स्त्री–पुरुष इतने अह शून्य हो जाते हैं कि उन्हें अपने अस्तित्व का बोध नही रहता। उस स्थिति मे सृष्टि सम्भवत· ईश्वरी शक्ति का परिणाम प्रतीत होती है।[32]

---

31 डॉ० कुसुम कक्कड़ – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन, पृष्ठ – 195
32 जैनेन्द्र कुमार – काम, प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 116

जैनेन्द्र ने सेक्स को मात्र भोगाकाक्षा के रूप मे ही स्वीकार नही किया है, बल्कि अर्ध–नारीश्वर का भाव ही वह मूल सूत्र मानते हैं, जिससे स्त्री–पुरुष परस्पर बधे है, स्त्री–पुरुष दोनो अपने मे अपूर्ण है। वह एक दूसरे मे अपने अभाव की ही पूर्ति नही करते, बल्कि वे पूर्णतया एकमेव होकर अपने अह को विचलित करते हैं। जैनेन्द्र ने काम भावना मे शारीरिक से अधिक आत्मिक स्थिति को स्वीकार किया है। कामवासना यदि शरीर तक ही सीमित रहे तो उसमे तृप्ति की भावना नही पैदा हो सकती। जब वह शरीर से आत्मा की ओर उन्मुख होती है तभी उसमे वैराग्य और सन्तुष्टि की भावना उत्पन्न होती है।

जीवन मे सेक्स की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए जैनेन्द्र ने कथा साहित्य मे भी उसकी अपेक्षा स्वीकार की है। इनके अनुसार अगर जीवन मे सेक्स को बाहर निकाला जा सकता तो कथा साहित्य, जीवन–मर्म का शोध न कर पाता। 'एकरात' 'रत्नप्रभा' 'निर्मम' 'राजीव' और 'भाभी' आदि कहानियो मे उन्होने स्त्री–पुरुष के निर्वैयक्तिक सम्बन्ध को ही स्वीकार किया है। वस्तुत जैनेन्द्र के अनुसार काम को वासना मानने मे घबराने की आवश्यकता नही है। जैनेन्द्र ने काम को यज्ञ के रूप मे स्वीकार किया है। काम मे व्यक्ति झपटकर भोग लेना चाहता है, यज्ञ मे कही बिछकर मिट जाना चाहता है।[33] 'सुनीता' उपन्यास तथा 'एकरात' कहानी मे आत्मतुष्टि के अनन्तर एक दूसरे से दूर रहने मे उन्हे शान्ति ही मिलती है तथा काम–जन्य छटपटाहट समाप्त हो जाती है। डॉ० कुसुम कुक्कड के शब्दो मे– 'जैनेन्द्र' ने काम चर्चा को ब्रह्मचर्य के रूप मे स्वीकार किया है। क्योकि उस अवस्था मे व्यक्ति की अहचर्या पूर्णत· विनष्ट हो जाती है।[34]

---

33 जेनेन्द्र कुमार – काम प्रेम और परिवार, पृष्ठ – 124
34 डॉ० कुसुम कक्कड़ – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन पृष्ठ – 197–198

जैनेन्द्र ने समाज की परिधि के अन्तर्गत विवाह, परिवार और जीवन की विविध समस्याओ पर अपने विचारो को व्यक्त किया है। इन क्षेत्रो मे प्राय जीवन को सतुलित रखने के लिए अनेक प्रयास करने पडते है। जिनका अभाव जैनेद्र के पात्रो का जीवन दूभर करता है और उन्हे आस्था–अनास्था के बीच भटकने को छोड देता है। जैनेन्द्र ने ऐसी विचित्र समस्याओ के कतिपय समाधान भी प्रस्तुत किए हैं।

विवाह–विच्छेद

जैनेन्द्र ने जिस प्रकार प्रेम–विवाह की मान्यता नही दी है, उसी प्रकार विवाह–विच्छेद (तलाक) का भी पूर्ण रूपेण निषेध किया है। कथाकार ने सामाजिक समस्याओ को आध्यात्मिक स्तर पर हल करने का प्रयत्न किया है। पति–पत्नी सामाजिक बन्धनो मे बँधे होते है। प्रत्येक दम्पत्ति के लिए यह आवश्यक नही कि वे एक विचारधारा के हो, ऐसी स्थिति मे दोनो को एक दूसरे के दृष्टिकोण का आदर करना पडता है, क्योकि कोई भी व्यक्ति पूर्ण रूप से न अच्छा है न बुरा। जैनेन्द्र के अनुसार –

'मेरा मानना है कि दुनिया मे कोई दो व्यक्ति ऐसे नही हुए जो एक दूसरे के लिए जन्मे कहे जा सके। खिचाव और तनाव तो स्त्री–पुरुष मे प्रकट और सहज है। सामजस्य इसलिए सहज नही है। उसे साधना होता है। उसके लिए सयम और अभ्यास की जरूरत होती है।[35] यदि स्त्री–पुरुष मे एक दूसरे के दोषों को देखकर सम्पन्ध–विच्छेद की घटना घटित होती है तो उसे स्वाभाविक नही माना जा सकता। जैनेन्द्र के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्त्री हो या

35 जैनेन्द्र कुमार – काम प्रेम और परिवार पृष्ठ – 66

पुरुष सदोष है, अतएव समाज और परिवार मे समझौते के बिना एक पल भी नही चला जा सकता। जैनेन्द्र पति–पत्नी के जीवन भर के सम्बन्ध–विच्छेद को उचित नही मानते। उनके अनुसार किन्ही विषम परिस्थितियो मे पति–पत्नी का एक साथ रहना पारस्परिक सहानुभूति को पूरी तरह नष्ट करने वाला हो जाता है, तब उन्हे कुछ समय तक एक दूसरे से अलग रहना चाहिए। अलग रहने मे पारस्परिक सहृदयता पूर्णतया नष्ट नही होती, केवल वैचारिक तनाव बना रहता है। तनाव मे दूरी उपयुक्त है, किन्तु सम्बन्ध तोड देने से भविष्य मे प्रेम की सम्भावना का प्रश्न नही उठता। उनके अनुसार विवाह का मूल प्रेम है। प्रेम के अभाव मे वह सुखी जीवन की कामना ही नही करते। 'विच्छेद' कहानी मे उन्होने वैवाहिक जीवन मे उत्पन्न होने वाले तनाव से बचने के लिए समझौते को आवश्यक माना है। वस्तुत जैनेन्द्र के पात्रो को वैवाहिक जीवन मे चाहे कितना ही कष्ट क्यो न उठाने पडे, किन्तु वे सम्बन्ध विच्छेद के लिए न्यायालय के दरवाजे नही खटखटाते। व्यक्तिगत सम्बन्धों मे न्याय को आधार बनाकर वे पारस्परिक निष्ठा को नष्ट करना श्रेयष्कर नही समझते। कभी–कभी विवाह उनके समक्ष विवशता बन जाता है, किन्तु वे अपने आदर्शों से विचलित नही होते। यही कारण है कि उनकी प्रेमिकाए पति के प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव नहीं रख पाती। उनके पति पात्र भी अधिकतया बहुत नम्र थे। वे आन्तरिक पीडा की पूजी सजोये हुए सारा जीवन व्यतीत कर सकते है, किन्तु सम्बन्ध विच्छेद की कल्पना भी नही करते। 'सुखदा' मे पति–पत्नी एक दूसरे से दूर चले जाते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध विच्छेद नही करते। 'त्यागपत्र' मे मृणाल सम्बन्ध विच्छेद को आवश्यक नहीं समझती। पति के द्वारा घर से बाहर निकाल दिये जाने पर ही वह बाहर जाती है। 'व्यतीत' की चन्द्रकला ही ऐसी पत्नी है जो अपने पति से अलग होकर पुनर्विवाह करती है और सुख भोग प्राप्त करती है चन्द्रकला अपने पति से

अलग हो जाती है लेकिन उसके मार्ग मे बाधा नही बनती। डॉ० मनमोहन सहगल के इस सम्बन्ध मे विचार द्रष्टव्य है –

'चन्द्री का आदर्श तो इस तथ्य मे है कि वह कदापि जयन्त के मार्ग का विघ्न नही बनती और न ही अनिता–जयन्त मिलन पर कभी ऑख मैली करती है, बल्कि अवसर आने पर स्वय रसोईघर मे धरती पर सोकर भी वह जयन्त और अनिता का विस्तर साथ लगाकर जयन्त की भावनाओ का आदर करती है। चन्द्री उच्च चेतना और दृढ चित्त की उदार महिला है।[36]

वेश्या का स्वरूप

वेश्या नारी का जीवन भारतीय समाज मे एक अभिशप्त जीवन की सृष्टि करता है। वैश्यावृत्ति भारतीय समाज की एक गम्भीर समस्या है, जो अत्यधिक प्राचीन काल से समय–समय पर अपने स्वरूप और उद्भव स्रोतो मे परिवर्तन के साथ चली आ रही है। लेकिन इसके मूल मे प्राय प्रत्येक काल मे आर्थिक आधारहीनता ही रही है। भारतीय समाज मे वैधव्य की समस्या, दहेजप्रथा, पर्दाप्रथा, बहुपत्नीत्व आदि ऐसी सामाजिक कुप्रथाऍ रही हैं जो त्रस्त, निरीह नारी को जीवित रहने तथा आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करने के लिए वेश्या बनने को मजबूर करती रही है। सयुक्त परिवार के विघटन के फलस्वरूप इस समस्या ने और उग्ररूप धारण किया, क्योकि उसके द्वारा निराश्रित नारियो की जो आर्थिक सुरक्षा मिलती थी, वह समाप्त हो गयी। पति के मरने के बाद बिधवा नारी आर्थिक दृष्टि से निराधार, परिवार द्वारा उपेक्षित, समाज से लाक्षित पीडित तथा प्रताडित एकाकी परिवार की सीमा से निकल कर व्यापक समाज की

---

36 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्याकन और मूल्याकन पृष्ठ – 71

सीमा मे फेक दी जाती है। अत इस अवस्था के अन्तर्गत इच्छा और अनिच्छा, छल तथा कपट से इस जीवन को अपना लेना कोई बहुत अनर्गल नही लगता। इसके अलावा उचित सरक्षण के अभाव तथा अनमेल वैवाहिक सम्बन्धो से असफल जीवन मे साम्पत्तिक अधिकारो से अलग रहकर नारी को वेश्या जीवन अपना लेना कोई आश्चर्यजनक नही है।

ससार के सभ्य कहलाने वाले देशो मे भी, जहॉ उसे जीविकोपार्जन का अवसर भी उपलब्ध है, वैश्या जीवन व्यतीत करने वाली स्त्रियॉ विद्यमान हैं। ऐसी दशा मे वहॉ वेश्या समस्या के मूल मे मात्र आर्थिक आधारहीनता ही नही है, बल्कि वहॉ आर्थिक–विषमता, सास्कृतिक–गतिरोध, भौतिकतावादी सस्कृति का विकृत रूप तथा नैतिक मूल्यो का विघटन आदि नारी को वेश्या जीवन की ओर प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि उन देशो का आदमी अधिक भोगवादी है। लेकिन भारत की स्थिति उससे अलग है। डॉ० रमेश तिवारी के शब्दो मे –

'जिस देश मे नारी के लिए युगो से सतीत्व तथा पातिव्रत्य धर्म सर्वोच्च रहे हो तथा जिस देश की आत्मा ही सतीत्व पर टिकी हुई हो, वहॉ भी वेश्यावृत्ति का अबाध प्रचलन बहुत अधिक लज्जास्पद लगता है।'[37] भारतीय समाज में इस समस्या के कुछ अन्य कारण ही रहे है। अन्य देशो मे भले ही उसके मूल में नारी की चरित्रहीनता तथा नैतिक पतनशीलता रही हो, लेकिन भारत मे नारी की आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियो ने ही प्रोत्साहित किया है।

जैनेन्द्र कें अनुसार सृष्टि के आरम्भ मे नर और नारी दो ही थे। समाज मे वेश्या को स्थान तो अर्थ–वृद्धि होने पर ही हुआ था। जैनेन्द्र

---

37 डॉ० रमेश तिवारी – हिन्दी उपन्यास साहित्य का सास्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ – 148

जी के शब्दो मे वेश्या पैसे के आरम्भ से पहले हो ही नही सकती—उजरत और कीमत देकर जब भोग के लिए नारी को प्राप्त करते है, तभी तो उसे वेश्या कहते है, कीमत पैसे के रूप मे चुकाने की विधि ही न हो तो वेश्या की स्थिति नही बन सकती है।[38] वे वेश्यावृत्ति के मूल मे अर्थासक्ति को साध्य तथा काम वृत्ति को साधन के रूप मे स्वीकार करते हैं। जैनेन्द्र ने समाज मे फैली हुई ऐसी वेश्या—सस्थाओ पर प्रकाश डाला है, जिनके सस्थापको की मनोवृत्ति के प्रति अनिच्छा होती है, किन्तु सस्था के माध्यम से अधिक से अधिक धनोपार्जन की ओर उनकी दृष्टि केन्द्रित रहती है। जैनेन्द्र के अपने शब्दो मे—'लेकिन अर्थ व्यापार के विचार से अलग वेश्या के प्रश्न का विचार पल्लव ग्राही होगा यथा मूल ग्राही नही होगा, यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।[39] वह आगे लिखते है —

'वेश्या वह नही है जो अनेक को प्रेम करती है। वेश्या वह है जो पैसे की एवज मे अपने को देती है।[40] जैनेन्द्र ने वेश्या सम्बन्धी गम्भीर सत्य की ओर इगित किया है। सामान्यतया वेश्या को अनेक पुरुषो के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही हेय माना गया है, किन्तु वेश्यावृत्ति के मूल मे निहित नारी की विवशता की ओर हमारा ध्यान नही जाता है। वह अर्थ के लिए अपने को देती है। वेश्यावृत्ति के सन्दर्भ मे चर्चा करते हुए ज्ञात होता है कि पुरुष की कामुकता ही नारी को विवश बनाती है। जैनेन्द्र वेश्या को किसी भी शर्त पर अमान्य नही करते। उनकी दृष्टि मे यदि समाज वेश्या को हेय मानता है तो वेश्य (वेश्यावृत्ति मे लिप्त) क्यो सम्माननीय हो सकता है? वेश्य की अर्थ लोलुपता वेश्या से कहीं अधिक घातक है, क्योकि

---

38 जैनेन्द्र कुमार — समय और हम, पृष्ठ — 345
39 वही पृष्ठ — 247
40 जैनेन्द्र कुमार — समय और हम, पृष्ठ — 351

वेश्यावृत्ति का स्वरूप तो समाज मे प्रकट है, किन्तु वेश्य तो सामाजिक दृष्टि से सम्मानीय बनकर समाज के शरीर मे झूठ, चोरी बेइमानी का घातक विष फैलाता है। वस्तुत जैनेन्द्र की दृष्टि मे वेश्यावृत्ति की जड मे शुद्ध अर्थासक्ति विद्यमान रहती है। वेश्यावृत्ति पूजीवादी नीति का परिणाम है।

जैनेन्द्र के उपन्यास और कहानियो मे वेश्यावृत्ति का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है, उसके मूल मे गरीबी ही विद्यमान है। निर्धनता के कारण वेश्या बनी नारी समाज से तिरस्कृत होकर अपने पति की आर्थिक सहायता करती है। 'अन्धे का भेद' शीर्षक कहानी मे अन्धा भिखारी गली–गली गाकर भीख मागता है और उसकी पत्नी परिवार से दूर समाज के कीचड मे पडी गृहस्थी को चलाने के लिए जीविकोपार्जन करती है। वह अपने हाथो से अपने पति की ऑखे फोड देती है। जिससे वह उसके कुकर्मो को देखकर दु खी न हो। उसकी आत्मा पतित नहीं होती, किन्तु बाह्य रूप मे वह कुछ भी करती है, किसी तरह ही सहन करती है। जैनेन्द्र ने अपनी इस कहानी मे वेश्या नारी का जो रूप प्रस्तुत किया है, वह हृदय को झकझोर देता है। वस्तुत जैनेन्द्र की दृष्टि मे वेश्या समाज की उपेक्षित होकर भी सहानुभूति की प्रार्थिनी बनी रहती है।

'बिखरी' कहानी मे पत्नी निर्धनता के कारण स्वय को ऐसी सस्था से सम्बद्ध कर देती है, जिसका लक्ष्य उसके माध्यम से धनोपार्जन करना है। 'त्यागपत्र' मे मृणाल सामाजिक सुरक्षा के लिए स्वय को समाज के उस उपेक्षित स्थान पर ले जाती है, जहा मानव जीवन की समस्त संवेदना की पारस्परिक सहानुभूति पूर्णत समाप्त हो जाती है। नारी केवल जड पदार्थ के रूप मे उपभोग की जाती है। 'त्यागपत्र' मे मृणाल निर्धनता के कारण भी समाज के उस दलित स्थल को स्वीकार नही करती है। वस्तुत जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे

नारी अधिकतर अर्थाभाव के कारण ही वेश्यावृत्ति स्वीकार करती है। जैनेन्द्र जी की दृष्टि मे सामाजिक सुधार के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति की मनोवृत्ति मे सुधार किया जाय।

वैधव्य की समस्या

वैधव्य नारी–शोषण का एक अन्य रूप है। सम्भवत समाज के अन्य किसी विधान के द्वारा नारी का इतना शोषण नही हुआ होगा। यह समस्या जहा एक ओर अनेक सामाजिक दोषो का परिणाम है वही दूसरी ओर कतिपय समस्याओ की जननी है। रूढियो, परम्पराओ, प्रथाओ और प्राचीन मान्यताओ से ग्रस्त समाज मे अनेक समस्याएँ स्वतन्त्र न रहकर कई सामाजिक दोषो की श्रृखला मे बॅध जाती हैं। हिन्दू समाज मे वैधव्य एक ऐसी ही जटिल समस्या रही है जो अनेक सामाजिक दोषो को आत्मसात् करती हुई व्यक्ति और समाज के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न बनी। विधवा बेचारी वैसे ही दु ख भार से बोझिल होती है, दूसरे अनुदार सामाजिक दृष्टिकोण उसका उठना बैठना, खाना–पीना, ओढना–पहनना सब दूभर कर देता हे। पग–पग पर उसे परिवार मे अवहेलना मिलती है। सौभाग्वती स्त्रियॉ उनकी छाया से भी दूर रहती हैं। ऐसी दशा मे सचमुच उनके लिए पति के साथ सती हो जाना ही अधिक उपयुक्त लगता है, लेकिन यह समाधान ऐसा ही है जैसे अत्याचार सहते–सहते ऊबकर आत्महत्या कर ली जाय।

जैनेन्द्र जी ने इस समस्या को 1929 मे 'परख' के प्रकाशन के पश्चात् एक नया मोड दिया और इसे बहुत कुछ भिन्न आयामो में प्रस्तुत किया। इसके पहले व्यक्ति के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर ही उसकी समस्याओ पर विचार किया जाता था, लेकिन इन्होने पहली बार व्यक्ति को प्रमुखता देकर सामाजिक समस्या को

प्रस्तुत किया। इसके पहले के लेखको के समक्ष इस समस्या से उत्पन्न बुराइयॉ ही प्रमुख थी। अतएव परिवर्तन की ठोस तथा क्रान्तिकारी भूमिका के स्थान पर इन्होने सुधारवाद का मार्ग पकडा और विधवाओ को विधवा आश्रम तक पहुॅचाया। इस प्रकार अबला नारी को समाज मे सुरक्षित रखने की व्यवस्था अवश्य की लेकिन नारी स्वय रूढिगत मान्यताओ के प्रति विद्रोह करती हुई नही दिखलायी पडी।

जैनेन्द्र 'परख' मे इस समस्या के तह मे गये और उन्होने यह निष्कर्ष निकाला कि यह समस्या सामाजिक ही नही वरन् वैयक्तिक स्तर पर भी अपना महत्व रखती है। उन्होने वैधव्य की समस्या को मनोवैज्ञानिक प्रतिमानो पर परखा तथा उसके समाधान मे न केवल सामाजिक बल्कि वैयक्तिक दृष्टिकोण को भी स्वीकृत किया। 'परख' मे इस समस्या का बहुत कुछ रूप वैयक्तिक ही है। 'परख' की कट्टो बाल विधवा है। पाच वर्ष की उम्र मे ही उसका विवाह हुआ, तब वह अपने पति को जानती तक नही थी। इसके तुरन्त बाद उसके पति का देहान्त हो गया, जिसके कारण विधवा का अर्थ जानने के पहले ही कट्टो विधवा बन गयी। उसने अभी तक किसी से प्रेम नही किया। फलत किशोरावस्था मे वह जब अपने मास्टर जी के सम्पर्क मे आती है तो उनसे प्रेम करने लगती है।

सामाजिक रूढि मान्यताओ के प्रति कट्टो का यह विद्रोह सराहनीय है और पाठको की सहानुभूति भी लेखक के साथ–साथ उसे प्राप्त है। अन्तत सत्यधन उसके साथ विश्वासघात करता है। तब प्रथम बार उसे अनुभव होता है कि वह विधवा हो गयी है। वैधव्य का अनुभव कट्टो रूढिगत मान्यताओ तथा सामाजिक सस्कारो से प्रभावित होकर नही कर सकी, लेकिन वैयक्तिक अनुभव के आधार पर उसे वैधव्य स्वीकार करना पड़ता है। अनुभव करने का यह ढग

जैनेन्द्र का पूर्णतया अपना है जो सामाजिक सस्कारो की विवशता की अपेक्षा कही अधिक तर्कसगत और समीचीन जान पडता है। उपन्यास का यह भाग इतना अधिक प्रभावशाली बन गया है कि उसके आगे की कथा व्यर्थ तथा सिद्धान्तवादिता के लिए कृत्रिम तरीके से जोडी हुई लगती है। उपन्यास का अत वस्तुत यही हो जाना चाहिए था, तब कट्टो की वैधव्य की समस्या मनोवैज्ञानिक धरातल पर एक प्रमुख विचारणीय प्रश्न बनकर अपना महत्त्व स्थापित कर लेती, लेकिन बिहारी जैसे रहस्यमयी पात्र की सृष्टि और कट्टो बिहारी के सम्बन्ध मे रहस्यमयी विवाह तथा वैधव्य की प्रतिज्ञा की अबूझ पहेली ने वैधव्य की समस्या की यथार्थता तथा उसके वास्तविक रूप को बहुत कुछ धुधला कर दिया है। एक विचित्र सयोग ही है कि 'परख' की कथा प्रारम्भ तो होती है, कट्टो के सामाजिक मान्यताओ के विद्रोह से, लेकिन उसका अत होता है—वैधव्य सम्बन्धी लेखकीय आध्यात्मिक किवा दार्शनिक व्याख्या से। कट्टो अपने वैधव्य तथा विवाह दोनो की प्रतिज्ञा को स्पष्ट करते हुए कहती है—'हम दोनो वैधव्य यज्ञ की प्रतिज्ञा मे दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बधते है। हम एक होगे एक प्राण, दो तन। कोई हमे जुदा न कर सकेगा।' कट्टो ने कहा। हम दोनो वैधव्य यज्ञ की प्रतिज्ञा मे एक दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बधते हैं। हम एक होगे एक प्राण, दो तन। कोई हमे जुदा न कर सकेगा। बिहारी ने दोहरा दिया। कट्टो ने कहा आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ, वैधव्य सार्थक हुआ।[41]

जैनेन्द्र इस समस्या के सन्दर्भ मे अपने युगीन विचार दर्शनो से अलग हैं। गॉधी जी ने बाल–विधवा की समस्या पर अपना विचार व्यक्त किया था—'उनका विवाह कुवारी लडकियो की भांति होना

---

41 जैनेन्द्र कुमार 'परख' पृष्ठ–75–76

चाहिए। उन्हे विवाहिता समझना ही अनुचित है।[42] कहने की आवश्यकता नही कि विधवा समस्या का इससे बढकर अधिक व्यावहारिक समाधान और क्या हो सकता है? लेकिन जैनेन्द्र जहॉ अन्य समस्याओ मे गॉधी जी के साथ है, वैधव्य की समस्या के सम्बन्ध मे गॉधी जी के विचारो से मेल नही खाते। उन्होने कट्टो से विधवा विवाह का विरोध करवाया है। वह अपने को विधवा मानकर बडे गौरव के साथ कहती है–'विधवाओ का विवाह होता है छि।'[43] विहारी के साथ स्थापित अपने नये सम्बन्धो को कट्टो विवाह नही, वरन् एक प्रतिज्ञा मानती है।

स्त्री और राजनीति

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे जहॉ स्त्री–पुरुष को प्रकृत रूप मे स्वीकार किया गया है, वहॉ जैनेन्द्र के विचारो की मौलिकता तथा नवीनता दृष्टिगत होती है, किन्तु नारी को व्यक्तित्व प्रदान करते हुए उन्होने उसके स्वरूप को राजनीति, समाज, परिवार आदि विभिन्न परिप्रेक्ष्यो मे, विभिन्न दृष्टियो से देखा है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का अध्ययन करने पर यह मालूम होता है कि अनेक नारी पात्र अत्यन्त स्वतन्त्र विचारो की है। उनमे भारतीय सस्कृति और मर्यादा की चेतना नही है, किन्तु सत्य यह है कि जैनेन्द्र के पात्र भूत का स्पर्श करते हुए भी वर्तमान मे जीते हैं। अपनी सस्कृति, की वे कभी उपेक्षा नहीं करते। जैनेन्द्र के अनुसार स्त्री की पुरुष से प्रतिस्पर्द्धा उचित नही। उनकी दृष्टि मे स्त्रियो के नौकरी करने का उद्देश्य स्वतन्त्रता और नौकरशाही का न होकर सहयोग का होना चाहिए। जैनेन्द्र के उपन्यासो और कहानिया मे स्त्री–पात्रो मे

---

42 महात्मा गाँधी – वोमेन एण्ड सोशल जस्टिस पृष्ठ – 111
43 जैनेन्द्र कुमार – परख पृष्ठ – 85

विवाह के घेरे से बाहर उन्मुक्त रूप से सास लेने की कामना है, किन्तु सार्वजनिक क्षेत्रो मे पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष मे नही है। 'सुखदा' मे सुखदा घर से बाहर निकलने पर स्वय एक हीनता अनुभव करती है। उसे ऐसा आभास होता है कि घर से बाहर राजनीति मे आकर उसने अपनी मार्यादा को भग किया है। जैनेन्द्र के नारी पात्र सार्वजनिक क्षेत्रो मे एक कुण्ठा को लिये हुए ही अवतरित हुये हैं। उनके मन की ग्रन्थि उन्हे राजनीति मे प्रवेश करने के लिए बाध्य करती है। जैनेन्द्र ने सामाजिक चेतना मे अत्यधिक स्वतन्त्रता का विरोध किया है। किन्तु परिवार मे पत्नी की दासता का निषेध किया है। 'सुखदा' 'सुनीता' 'विवर्त' आदि उपन्यास उनका यह आदर्श प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त हैं। 'कल्याणी' तथा 'सुखदा' मे उन्होने स्पष्टतया यह स्वीकार किया है कि पत्नी, पति की सम्पत्ति नही है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे स्त्री–स्वातन्त्र्य की कामना क्रान्तिकारी रूप मे प्रकट हुई है, किन्तु समाज मर्यादा से बँधी नारी कभी भी सामाजिक सीमा का उल्लघन नही कर पाती। 'त्यागपत्र', 'परख' आदि मे जीवन का जो आदर्श कही व्यक्त हुआ, वह सामाजिक मर्यादा का पोषक ही है। जैनेन्द्र के अनुसार स्त्री का राजनीति मे प्रवेश उचित नही है। उनकी दृष्टि मे स्त्री प्रेम और प्रेरणा की मूर्ति और प्रेम शक्ति है। प्रेमिका बनकर वह पुरुष को प्रगति की ओर अग्रसर करती है। 'मुक्तिबोध' और 'जयवर्धन' मे उन्होने राजनीति मे प्रवेश करने वाली स्त्री को बुरा–भला कहा है। उन्होने कहा है कि अभागिन है वह स्त्री, जो स्त्री है और राजनीति मे आती है या उसका विचार भी करती है।[44] स्त्री–राजनीति मे प्रवेश वही तक स्वीकार है जहाँ तक वह पति अथवा प्रेमी की प्रेरणादायक रहती है। राजनीति स्त्रियो के लिए नही है।[45] 'निर्मम' मे प्रेम के वश मे हुई नारी अपने

---

44 जैंनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध पृष्ठ – 92
45 जैनन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 275

समर्पण से शिवा के प्रति अपने प्रेम को स्थापित करती है। 'ध्रुवतारा मे जैनेन्द्र ने प्रेम और कर्तव्य का अजीब सा आदर्श प्रस्तुत किया है, प्रेयसी प्रेयस को उत्पन्न नही करती है, बल्कि स्वय कष्टो को झेलती हुई उसे आगे बढने के लिए प्रेरित करती है। वह स्पष्ट कहती है कि मैने कितनी बार तुमसे कहा कि तुम उससे ज्यादा के लिए हो।[46]

पुरुष के जीवन मे कुछ इच्छाएँ होती हैं। स्त्री उनको पूरा करने के लिए सहयोगिनी होती है। 'मुक्तिबोध' मे नीलिमा कहती है—'आदमी सपने के लिए जीता है और औरत सपने के आदमी के लिए जीती है।'[47] जयवर्धन की इला प्रत्येक क्षण जय के साथ रहती हुई भी राजनीतिक क्षेत्र मे उसके साथ कदम मिलाकर नही चलती, वह जय के साथ रहती है, परन्तु आत्मा की तरह ही उसका बाहरी और सक्रिय रूप तो जय स्वय होता है।

मातृत्व

जैनेन्द्र ने स्त्री के मातृत्व रूप को भी बहुत अधिक महत्व प्रदान किया है। प्रेयसी होने के साथ ही साथ वह माता भी है। प्रत्येक दृष्टि से वह प्रेम, प्यार, त्याग और स्नेह की मूर्ति है। आधुनिक समय मे आर्थिक परेशानियो के कारण माता घर से बाहर कमाने के लिए जाती है। इस प्रकार वह अपने मातृत्व के कर्तव्य को पूरा नही कर पाती। यही कारण है कि जैनेन्द्र स्त्री को घर से बाहर आर्थिक क्षेत्र मे पुरुष की सहभागिनी के रूप मे आना उचित नही समझते।[48] उनकी दृष्टि मे स्त्री की सार्थकता मातृत्व मे है। मातृत्व दायित्व है। वह स्वतन्त्रता नही है। स्त्री निपट स्वच्छन्द रहना चाहती है, तो उसके मूल मे यही

---

46 जैनन्द्र कुमार – ध्रुवतारा पृष्ठ – 94
47 जैनन्द्र कुमार – मुक्तिबोध पृष्ठ – 93
48 मैं नही चाहूँगा कि माता कमाने के लिए दफ्तर में जाय और धाय बच्चों को अपना दूध पिलाने के लिए आए।

अभिलाषा है कि माता बनने से वह बची रहे और पुरुष के प्रति उसका प्रेयसी रूप ही प्रतिष्ठित रहे।[49]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैनेन्द्र की दृष्टि मे स्त्री मातृत्व से रहित होकर स्वय मे अपूर्ण रहती है। जैनेन्द्र के उपन्यास और कहानी मे मातृत्व की तीव्र इच्छा दृष्टिगत होती है। पति का अतिशय प्रेम और सहानुभूति प्राप्त करके भी स्वय अभावग्रस्त रहती है। मातृत्व मे ही उसकी पूर्णता है जो रूखे प्यार से उपलब्ध नही होता। 'ग्रामोफोन का रिकार्ड' और 'मास्टर जी' मे नारी की विक्षुब्धता वात्सल्य भाव की पूर्ति के बिना ही उत्पन्न हुई है। मातृत्व के साथ ही जैनेन्द्र की कहानियो मे वात्सल्य भाव की भी अभिव्यक्ति हुई है। इस दृष्टि से उनकी कई कहानियॉ जैसे – 'फोटोग्राफी' आदि मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। जैनेन्द्र ने व्यक्ति और समाज के विभिन्न पक्षो को अपने कथा साहित्य मे स्वय के विचारो और आदर्शो की छाया मे व्यक्त किया है।

---

49 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ – 71

अध्याय–3

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक चेतना

अध्याय–3

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक चेतना

(खण्ड–1)

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

संस्कृति : शब्द एवं आशय

जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य के सास्कृतिक अध्ययन के सन्दर्भ मे यह आवश्यक और समीचीन जान पडता है कि पहले हम सस्कृति के स्वरूप पर एक दृष्टि डाल ले। ऐसा करना इसलिए अनिवार्य प्रतीत होता है, क्योकि सस्कृति को स्पष्ट किए बिना अध्ययन पद्धति का स्पष्टीकरण सम्भव नही जान पडता।

सस्कृति पर विचार करने के साथ ही साथ हमे सभ्यता के स्वरूप पर भी विचार करना अपेक्षित है। वस्तुत सस्कृति और सभ्यता का सम्बन्ध इतने निकट का है कि एक पर विचार करते समय दूसरे की उपेक्षा नही की जा सकती। 'सस्कृति' और 'सभ्यता' इन दोनो शब्दो का प्रयोग भिन्न–भिन्न अर्थों मे होता है, लेकिन ये दोनों मनुष्य की प्रगति तथा उसकी उपलब्धियो को संकेतित करते हैं। विद्वानो मे इन दोनो शब्दो को लेकर जटिल तथा विवादास्पद स्थिति रही है, जिसमे कभी तो उन्हें अलग–अलग तथा कभी पर्यायवाची तक मान लेने का आग्रह व्यक्त किया गया है। प्रसिद्ध नर विज्ञानी टायलर

सस्कृति तथा सभ्यता को पर्यायवाची मानते है।[1] तो मैलिनावस्की उनका अलग–अलग अस्तित्व स्वीकार करते है, क्योकि उनके अनुसार ऊँची सस्कृति के खास पहलू को सभ्यता कहते है।[2] टायलर की तरह हर्स कोविट्स का भी कहना है कि सभ्यता और सस्कृति एक दूसरे के पर्याय हैं। वह कहते है कि सस्कृति के लिए एक शब्द है 'परम्परा' और दूसरा 'सभ्यता'।[3] सस्कृति के द्वारा ही किसी समाज की जीवन शैली का निर्माण होता है। डॉ० राधा कृष्णन के अनुसार सस्कृति, विवेक–बुद्धि से जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।[4] डॉ० रामधारी सिह 'दिनकर' के शब्दो मे–'सस्कृति जीवन का तरीका है, यह तरीका जमा होकर उस समाज पर छाया रहता है जिसमे हम जन्म लेते है।[5] इस प्रकार सामाजिक चेतना की समग्रता का सर्वोत्तम निर्वाह ही, जिसमे वैयक्तिकता विकार मुक्त होकर साधनाओ का श्रेष्ठ आकलन करती है, सस्कृति है।[6]

संस्कृति की परिभाषा

जहॉ तक संस्कृति को परिभाषित करने की बात है, हम नि सकोच यह स्वीकार करते हैं कि आज तक इस बात पर विद्वानो मे मतैक्य नही स्थापित हो सका है। जितने तरह के सगठन हैं और जितने तरह के लोग हैं, उन सबो ने उतनी ही तरह से सस्कृति को परिभाषित करने का प्रयास किया है। वस्तुत· सस्कृति को समझने और परिभाषित करने के लिए सस्कृति की व्याख्या सम्बन्धी लम्बी परम्परा को जानना नितान्त आवश्यक है। बिना उन पूर्व व्याख्याओ

---

1 ई० टाइलर – प्रिमिटिव कल्चर भाग–1, पृष्ठ – 1
2 इनसाइक्लोपीडिया आफ द सोशल साइन्सेज भाग–3, पृष्ठ – 621
3 एम०जे० हर्स कोविटस – मेन एण्ड हिज वर्क्स पृष्ठ – 17
4 अनु० विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी – स्वतन्त्रता और सस्कृति, पृष्ठ–53
5 डॉ० रामधारी सिह 'दिनकर' – सस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ–653
6 डॉ० सरनाम सिह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा पृष्ठ – 14

को जाने समझे हम सस्कृति को सही अर्थो मे समझ पाने मे सक्षम नही हो सकते है। सस्कृति पर विभिन्न विद्वानो ने अपने मत प्रकट किए है। डॉ० राधा कृष्णन के अनुसार सस्कृति विवेक–बुद्धि से जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।[7] डॉ० रामधारी सिह दिनकर के शब्दो मे, सस्कृति जीवन का तरीका है यह तरीका जमा होकर उस समाज पर छाया रहता है, जिसमे हम जन्म लेते है।[8] इस प्रकार सामाजिक चेतना की समग्रता का सर्वोत्तम निर्वाह ही, जिसमे वैयक्तिकता विकार विमुक्त होकर साधनाओ का श्रेष्ठ आकलन करती है, सस्कृति है।[9] यह सस्कृति मानव की विविध साधनाओ मे निहित होती है।[10] सस्कृति मानव के सम्पूर्ण व्यवहार का एक ढाचा है जो अशत भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होता रहता है। समाज के बिना सस्कृति जीवित नही रह सकती और यही कारण है कि प्रत्येक मानव समाज की अपनी सस्कृति होती है।

संस्कृति का स्वरूप

सस्कृति और समाज एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सबद्ध है। सास्कृतिक विकास सामूहिक प्रयत्नों के परिणाम हुआ करते हैं। यही कारण है कि सस्कृति का विकास मन्थर गति से होता है। सस्कृति परम्परागत आचार–विचार और भौगोलिक परिवेश से प्रभावित हुए बिना नही रह सकती। यद्यपि परम्परागत उदात्त विचारधाराओ का युगानुकूल सस्कार होता रहता है, तथापि सस्कृति नूतन नही है, क्योंकि संस्कृति का अस्तित्व नूतन और पुरातन अनुभूतियो के सस्कारो द्वारा निर्मित समुदाय के दृष्टिकोण मे निहित है। संस्कृति

---

7 अनु० विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी – स्वतत्रता और सस्कृति पृष्ठ – 53
8 डॉ० रामधारी सिह 'दिनकर' – सस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ – 653
9 डॉ० सरनाम सिह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ – 14
10 डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी – अशोक के फूल (निबध सग्रह) पृष्ठ – 13

हमारे दैनिक व्यवहार मे, कला मे, साहित्य मे, धर्म मे, मनोरजन मे और आनन्द मे पाये जाने वाले रहन–सहन और विचारो की अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है।[11]

सस्कृति के विकास मे आदान–प्रदान का भाव निहित होता है, क्योकि मानव मात्र के वैयक्तिक व्यवहार सस्कृति का अग कभी नही बन पाते। जब उन्हे दूसरो द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है तो वे सस्कृति मे समाविष्ट हो जाते है। सस्कृति व्यवहारो का समूह मात्र नही है, अपितु व्यवहारो का अन्योन्याश्रित होकर एक सुदृढ व्यवस्था मे ढल जाना है। पारस्परिक सम्पर्क सस्कृति के विकास मे प्रमुख उपादान हैं। सस्कृति की शाश्वत दीर्घता पारस्परिक सपर्क पर ही अवलम्बित होती है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे' "हमे किसी सिद्धान्त का त्याग इसलिए नही करना चाहिए कि वह अभारतीय है। हमे विदेशी सिद्धान्त भी गुणो की कसौटी पर ग्रहण करना चाहिए।[12]

संस्कृति का क्षेत्र और अभिव्यक्ति के उपादान

सस्कृति शब्द से मानस–पटल पर एक सुनियोजित प्रतिच्छवि व्यापक क्षेत्र को आत्मसात् करते हुए खिच जाती है। इसका सम्बन्ध मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एव कलागत जीवन के विभिन्न पहलुओ से है। मनुष्य ने विवाह द्वारा परिवार और समाज का निर्माण किया और सामाजिक नियमो के प्रतिपादन द्वारा पारस्परिक सम्बन्धो को दृढ बनाया है। सामाजिक सम्बन्धों को व्यापक रूप प्रदान करने के उद्देश्य से ही उसने अपने निकटवर्ती सम्बन्धो मे विवाह निषिद्ध किया। पारिवारिक विस्तार कुल,

---

11 मैकाइवर एण्ड पेज – सोसायटी पृष्ठ – 449
12 डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी – विचार और वितर्क, पृष्ठ – 125

जाति, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गया। सामाजिक व्यवस्था के विकास के साथ–साथ सास्कृतिक विकास होता रहा। राजनीतिक सस्था का विकास आज उस बिन्दु तक पहुँच चुका है, जहाँ मानव मात्र किसी न किसी शासन सूत्र से आबद्ध है। बौद्धिक चेतना के ऊर्ध्व शिखर को स्पर्श करने वाले मानव ने जिस विषय को सामाजिक विकास के लिए उपयोगी समझा, अपना लिया। मनोरंजक आनन्दानुभूतियो की अभिव्यक्ति के लिए अपने साहिन्य और कला को जन्म दिया और आत्मतुष्टि के लिए धर्म का विकास किया। ये सभी सस्कृति के सस्कारजन्य अग हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार सस्कृति के पाच अवयव कर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा रीति–रिवाज है।[13] इस सन्दर्भ मे डॉ० सरनाम सिह शर्मा के विचार द्रष्टव्य है – "सभ्यताओ का विकास और विनाश हो सकता है, धर्मों का उत्थान पतन हो सकता है, पर सस्कृति का मौलिक रूप चिरन्तन और चिर स्थायी है।"[14]

सस्कृति और सभ्यता मे काफी अन्तर है, परन्तु वे एक दूसरे से पृथक् नही किये जा सकते, क्योकि राष्ट्र के सास्कृतिक विकास में उस देश की सभ्यता का चित्र अकित रहता है। इस प्रकार सस्कृति और सभ्यता के भेद को स्पष्ट करने के लिए इन दोनों को अलग–अलग जानना अति आवश्यक है।

संस्कृति और सभ्यता

प्राचीनकाल मे भले ही सस्कृति और सभ्यता, एक ही अर्थ मे प्रयुक्त होते रहे हो, परन्तु उनमे आज अन्तर स्वीकार कर लिया

---

13 कल्याण (पत्रिका), हिन्दू सस्कृति विशेषाक पृष्ठ – 76
14 डॉ० सरनाम सिह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ – 21

गया है। सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारो, उत्पादन साधनो तथा सामाजिक–राजनीतिक सस्थाओ से है, जिनके द्वारा मानव–जीवन सरल, सरस और स्वतन्त्र बनता है। परन्तु सस्कृति हमारे चिन्तन, मनन और कलात्मक सर्जन की उन क्रियाओ से सम्बन्धित है जो परोक्ष रूप से जीवन को समृद्ध बनाने वाली हैं।

विश्व चेतना के मानस मे मानवीय मूल्यो और आदर्शों की अन्तर्निहित सस्कृति है, जो सभ्यता का अस्तित्व उन आदर्शों और मूल्यो का पालन करने वाले सहायक उपादानो से सम्बन्धित करती है। सस्कृति वह गुण है जो परम्परा से हम में व्याप्त है और सभ्यता जीवन को सॅवारने की वह कला है जो हमे श्रम से प्राप्त होती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि सस्कृति के मूल मे सभ्यता का निवास होता है। रहन–सहन की सभ्य अवस्था का अनुभव होने पर मनुष्य सस्कारवान् बनने लगता है। इसका तात्पर्य यह नही है कि सस्कार ऊपर से आच्छादित आवरण है, अपितु मानव के अन्दर मानस मे निहित सस्कार अनुकूल वातावरण मे सक्रिय हो जाते हैं। भोजन, वस्त्र, महल, मोटर आदि पार्थिव पदार्थ सभ्यता के साधन हैं, परन्तु भोजन करने एव वस्त्र पहनने की कला, भवन बनाने और मोटर चलाने के कौशल मे सस्कृति समाहित रहती है। संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा सूक्ष्म वस्तु होती है। यह सभ्यता के अन्दर उसी तरह लुप्त रहती है जैसे कपास मे रूई। इस प्रकार सभ्यता समाज की बाहरी व्यवस्थाओ का नाम है। संस्कृति व्यापक और सभ्यता सकोचशील है।

साहित्य और संस्कृति

साहित्य जनमानस की भीतरी और बाहरी प्रतिच्छवियो का प्रकाशन करने वाला ज्ञान राशि का संचित कोश है। इसलिए वह किसी देश या काल की सस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक विश्वस्त

प्रामाणिक आधार होता है। साहित्य मे सस्कृति के जातीय मनोभाव सुरक्षित तो रहते ही हैं, साथ ही साहित्य ने मनुष्य को उस रागात्मक ऐश्वर्य की स्थिति तक पहुँचाया है जहाँ सर्वत्र सुख और शान्ति रहती है तथा मन की कोकिल अपने गीत मधुर स्वरो मे गा उठती है।

सस्कृति के अन्तर्गत चेतना और व्यवहार दोनो का सामजस्य रहता है। व्यवहार आदर्शों का निर्माण करते हैं। चेतना सृजनात्मक क्षमता को सम्प्रेषित करने वाली कला की रचना करती है। सास्कृतिक चेतना का सृजनात्मक स्वरूप धारण करना विशेष महत्वपूर्ण है। किसी जाति के सृजनात्मक प्रयत्नो का उन्मेष सस्कृति के अन्तर्गत ही होता है। प्रत्येक देश का साहित्य उसके विचारो और भावनाओ के इतिहास से अवगत कराता है।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का कथन है कि 'साहित्य मानव जाति के उच्च से उच्च और सुन्दर से सुन्दर विचारो तथा भावो का वह गुच्छा है जिसकी बाहरी सुन्दरता और भीतरी सुगन्धि दोनो ही मन मोह लेते है। कोई जाति तब तक बडी नही हो सकती, जब तक उसके भाव और विचार उन्नत न हो। जब भाव और विचार उन्नत होगे तब उनका विकास उस जाति के साहित्य के रूप मे ही हो सकता है।[15]

साहित्य और सस्कृति सश्लिष्ट है। सस्कृति मनुष्य के धर्मगत वातावरण और सस्कारो से प्रेरित हुआ करती है। मनुष्य के मानसिक आयामो मे सस्कृति अपना विस्तृत रूप धारण करती है जिसे साहित्य ही प्रकाश मे लाने का कार्य करता है। डॉ० सरनाम सिह शर्मा ने साहित्य को सस्कृति का इतिहास कहकर उसे अतीत का प्रतिबिम्बि तथा अनागत का प्रदीप माना है।[16] साहित्य एक ऐसा माध्यम है जो

---

15 डॉ० राजेन्द्र प्रसाद – साहित्य शिक्षा और सस्कृति, पृष्ठ – 10

16 डॉ० सरनाम सिह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृष्ठ – 19

देश की सस्कृति को एकसूत्र मे बॉधता है। साहित्य सस्कृति के विकास मे दिशा को बताता है और सस्कृति निद्रालीन कथाकार की निद्रा भग कर देती है तथा साहित्य को प्रेरित करती है। किसी राष्ट्र की सस्कृति को जानने के लिए उस राष्ट्र के शास्त्र, विद्या, कला आदि को जानना अति आवश्यक है। साहित्यकार परम्परावादी और प्रयोगवादी होता है। यह युग चेतना से प्रभावित होकर पुरातन मे नये युग का निर्माण करता है। परम्परा और प्रयोग के आपस मे सन्तुष्टि के माध्यम से मनुष्य जाति ने अपनी सस्कृति तथा साहित्य का निर्माण किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मनुष्य के जीवन के लिए सस्कृति और साहित्य दोनो अति उपयोगी हैं, किसी एक के बिना जीवन का सर्वांगीण विकास असम्भव है और मनुष्य जाति के सौन्दर्य बोध एव मूल्य बोध को आगत के लिए सचित भी नही किया जा सकता।

वर्तमान युग की साहित्यिक विधाओ मे कथा साहित्य ने अत्यधिक प्रगति की है। इसकी सफलता का केवल एक ही कारण है कि कथा साहित्य ने मनुष्य के जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियो को प्रकाशित करने का जो कार्य अपने हिस्से में लिया है, वह जटिल तो था ही, इसके अलावा अन्य किसी विधा की क्षमता के परे भी था। कठिनता के दर्द से व्याकुल मानव जीवन की जटिल सस्कृति का चित्रण, कथा साहित्य करने को प्रस्तुत हुआ और अभिनव मूल्यो को प्रकट करने लगा। साहित्यकार का दायित्व भी अन्य की अपेक्षा अधिक बढ गया। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे भारतीय सस्कृति की व्यापकता अन्य पूर्ववर्ती कथाकारो से किसी प्रकार कम नही है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे सांस्कृतिक चेतना के विवेचन से पूर्व साहित्य के दायित्व की परख करते हुए उसकी सास्कृतिक संचेतना की सक्षिप्त विवेचना असगत न होगी।

कथा सा।ि.त्य और संस्कृति

द्वितीय महायुद्धोत्तर मानव जीवन सीधे–सादे मार्ग से हटकर सकीर्ण गलियो मे गुमराह सा होने लगा तथा जीवन की सरलता, सहजता और सुगमता अपने आप मे जटिल, बोझिल और कठिन हो गयी। मानसिक हलचल और कुशल जीवनयापन करने की समस्याओ ने मानव के सगठित व्यक्तित्व को तोडकर रख दिया। मानसिक उलझन और कुठाओ ने अस्थिरता का सृजन किया। मनुष्य के जन्मजात सस्कार परिवर्तन क्रम मे स्थिर न रह सके और जीवन मे मूल्यो का विघटन होने लगा। मानव मूल्यो के विघटन के साथ ही महामानव का अस्तित्व काल्पनिक होकर रह गया और यथार्थ धरातल पर लघु मानव का जन्म हुआ। सास्कृतिक चेतना परिवर्तन के लिए बाध्य हो गयी, क्योकि विघटित मूल्यो के साथ यह स्वाभाविक ही था। आशा, निराशा और अनास्था के मध्य झूलते हुए जीवन मे कहानी और उपन्यास को महान गौरव प्राप्त हुआ। महामानव के स्थान पर उपन्यास और कहानियो मे लघु मानव नायक बनकर दु ख से भरे हुए जीवन पर रूखी हँसी हॅस पडा। विनाशकारी अस्त्रो के भय और सत्रास से ग्रस्त मानव जीवन की अन्तिम घडियॉ गिनने लगा।

साहित्य का लक्ष्य होता है–जीवन को अनेक आयामो मे उद्घाटित अथवा निरूपित करना। साहित्य मे जीवन मूल्य अथवा जीवन दर्शन भिन्न–भिन्न आयामो मे विश्लेषित हुआ करते हैं। साहित्य मे मानव के मूल्य बोध और सौन्दर्य बोध दोनो का समावेश रहता है। किसी राष्ट्र या जाति के सौन्दर्य बोध की व्यापकता पर कलागत व्यापकता निर्भर हुआ करती है। सौन्दर्य बोध और मूल्यबोध दोनो अलग–अलग होते हुए भी मानव जीवन मे सतुलित होते हैं। एक सुसस्कृत मानव का मूल्य बोध और सौन्दर्य बोध प्रौढ होता है। हमारे इतिहास मे ऐसे नाम मिलते हैं, जैसे–गॉधी जिनके द्वारा इस सिद्धान्त

को पुष्टि मिलती है। जैनेन्द्र जी ने गॉधी जी के महान व्यक्तित्व को अपने कथा साहित्य मे निरूपित किया है, जो युगीन सास्कृतिक चेतना की झॉकी तो प्रस्तुत करता ही है और साथ ही युगीन दृष्टिकोण की अभिव्यजना भी करता है।

वर्तमान युग मे जीवन की कठिनता और विषमता को कथा साहित्य के अलावा अन्य किसी विधा मे निरूपित नही किया जा सकता, क्योकि महाकाव्य और कविता हृदय की सहज भावानुभूतियो की अभिव्यजना है। जीवन रस की अभिव्यक्ति होने के कारण इसमे बुद्धि नही हृदय की प्रमुखता होती है। साहित्यकार युग जीवन और युगीन चरित्रो को प्रतिपाद्य बनाकर उच्च ग्रन्थकारो की श्रेणी मे स्थान बना लेता है। आज के मनुष्य तथा उसके जीवन को कथा साहित्य के माध्यम से ही सम्यक रूप से व्यक्त किया जा सकता है। आज का कथा साहित्य युगीन सस्कारो से आक्रान्त ही नंही, वरन् सस्कृति से अपना गहरा रिश्ता जोडकर अपने समय के सांस्कृतिक तत्वो की अभिव्यक्ति मे व्याकुल दिखाई पडता है। यही कारण है कि कथा साहित्य को जानने के लिए तत्कालीन सन्दर्भों का विहगावलोकन करना उपयोगी होता है। जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य की सास्कृतिक चेतना का अध्ययन इसी परिप्रेक्ष्य मे किया जायेगा।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का प्रतिपाद्य दीर्घ काल की सांस्कृतिक चेतना को अपने मे सॅजोये हुए हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के बाद और बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे एक नवीन सास्कृतिक चेतना की ज्योति 'परख' उपन्यास मे दिखायी पडती है। पाश्चात्य शिक्षा ने भारत मे शिक्षित और अशिक्षित दो अलग सास्कृतिक वर्गों का निर्माण किया।

एक ओर तो वैज्ञानिक साधनो से सम्पन्न नगरो मे रहने वाले और आधुनिक कहे जाने वाले शिक्षित वर्ग की सास्कृति का विकास हुआ, दूसरी ओर वैज्ञानिक साधनो से विहीन अन्धविश्वास ग्रस्त अशिक्षित वर्ग की सास्कृतिक चेतना अवरुद्ध हो गयी है। इस प्रकार दो वर्गों की सास्कृतिक चेतना नागर सस्कृति और ग्रामीण सस्कृति के रूप मे विभाजित हुई।

बीसवी शताब्दी भारतीय समाज मे अतीत गौरव तथा देश–प्रेम और प्राचीन सस्कृति के प्रति आस्था के भाव से पूरित है। युगीन जन अग्रेजी शासन की भले ही सराहना करता है, परन्तु भारतीय जन पाश्चात्य सस्कृति के सघर्ष मे सदैव ही भारतीय सस्कृति का पक्षधर है। जैनेन्द्र जी आचार–विचार, रहन–सहन आदि मे पश्चिमी नकल को नही मानते हैं। यही कारण है, ऐसे मनुष्य को दु ख देने से नहीं चूकते हैं जो भारतीयता से भिन्न दिखाई पडते हैं। आधुनिक युग के धार्मिक–सास्कृतिक जागरण मे मनुष्य के स्थान पर ईश्वरीय शक्ति का प्रभाव था। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दो मे 'पूर्व और पश्चिम के सम्पर्क से नव चेतना उत्पन्न हुई, समाज अपनी खोई हुई शक्ति बटोर कर गतिशील हुआ, नवयुग के जन्म के साथ विचार–स्वातत्र्य का जन्म हुआ। साहित्य मे गद्य की वृद्धि हुई और कवियो ने अपनी परिपाटी विहित और रूढिग्रस्त कविता को छोडकर दुनिया को नई ऑखो से देखना शुरू किया। उपन्यास, नाटक, निबन्ध, समालोचना आदि ने नवीन चेतना का अनुसरण किया।[17]

कथा साहित्य का अपने युग जीवन की संस्कृति से घनिष्ट सम्बन्ध जुड जाता है। कथाकार के लिए यह बडी चुनौती का विषय है कि वह अपने युगीन सास्कृतिक तत्वो को अपने कथा साहित्य मे

---

17 डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ – 11

प्रकट कर सकता है या नही। इतना अवश्य स्वीकार करना पडता है कि युगीन सास्कृतिक तत्वो की पूर्ण अभिव्यक्ति किए बिना कोई भी साहित्यक कृति महत्वपूर्ण नही बन सकती। सास्कृतिक चेतना के अभाव मे कोई भी कथाकार अथवा उपन्यासकार महान रचना नही कर सकता। कथा साहित्य सबसे अधिक सशक्त माध्यम है, क्योकि उसका सम्बन्ध युग की यथार्थ घटनाओ से है। उसका लक्ष्य ही जीवनगत यथार्थ को प्रकट करना है। अत यथार्थ के धरातल पर कथा साहित्य अनिवार्य रूप से सस्कृति से जुड जाता है और वे एक दूसरे को इस प्रकार प्रभावित किए बिना नहीं रह सकते। सास्कृतिक चेतना कथाकार के लिए उचित वातावरण का निर्माण करती है। कथाकार जहा अपने युग की सस्कृति को प्रभावित करता है वही वह उससे अपने सृजन मे प्रेरणाएँ भी ग्रहण करता है। दोनो का यह सम्बन्ध आदान–प्रदान का है। कथाकार अपने युग को कुछ देता है, तो उससे कुछ लेता भी है। प्रेमचन्द अथवा जैनेन्द्र की सार्थकता इसी बात मे है कि उन्होने अपने युगीन सन्दर्भों की यथार्थताओ से गहरे स्तर पर अपना सम्बन्ध बनाये रखा, तभी 'गोदान' तथा 'परख' की रचना कर सके।

जैनेन्द्र जी के 'परख', 'सुनीता' 'त्यागपत्र' आदि उपन्यासो मे सास्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। सन् 1948 से 1962 का समय भारतीय सास्कृतिक उपलब्धियो का युग रहा है। 'सुखदा' उपन्यास इसी की अभिव्यक्ति करता है। व्यक्तिवादी विचारधारा के उन्मेष से प्रत्येक वर्ग की अपनी विचारधारा दूसरे से अलग हो गयी। युगीन परिस्थितियो के प्रभाव से अध्यात्मवाद का स्थान भौतिकवाद ने ले लिया, जिसके कारण व्यक्ति और समाज की चिन्तन पद्धति का आधार भौतिकवादी हो गया। इसके अतिरिक्त फ्रायड् के मनोविज्ञान ने भी भारतीय सास्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। निराशा, अवसाद, अनास्था और आक्रोश में जीने वाले बौद्धिकों को फ्रायड् के दर्शन का

सहारा मिला और उनकी वैयक्तिक कुण्ठा सेक्स के माध्यम से नि सृत होने लगी। ऐसी युगीन परिस्थितियो मे भी जैनेन्द्र कुमार नवीन सास्कृतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा करने को प्रयत्नशील दिखाई पडते हैं। 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' और 'जयवर्धन' मे एक ओर वह मानवीय आस्था और अनास्था के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करते है तो दूसरी ओर एक नयी सस्कृति, नयी सम्पदा की अभिव्यक्ति करते है, जिससे मानव का हित हो सके। जैनेन्द्र ने अपने युग के आस्था और विश्वास को युगीन जन–जीवन की कसौटी पर जकड कर बौद्धिक रूप से नयी सास्कृतिक चेतना के रूप मे स्थापित किया है।

सांस्कृतिक तत्वों का समावेश

सास्कृतिक पुनर्जागरण मे धार्मिक चेतना का अपना विशिष्ट महत्व है। धर्म ने राष्ट्रीयता को प्रेरित किया तथा पुर्नजागरण को व्यापकता तथा गहराई प्रदान की। धार्मिक भावनाओ में समन्वयात्मक सगठन से सास्कृतिक चेतना का निर्माण हुआ करता है। भारतीय सास्कृतिक चेतना यदि धर्म से आवश्यक रूप से सम्बन्धित रहे तो इसमे कोई आश्चर्य नही। धर्म मनुष्य तथा समाज के सामाजिक और व्यवहारिक जीवन मे सक्रिय होकर सस्कृति का रूप ले लेता है। जैनेन्द्र के साहित्य के पात्र ईश्वर पर विश्वास करते हैं। जैनेन्द्र का जीवन अध्यात्म और भौतिकता का समुच्चय है। भौतिकता यदि शरीर है तो अध्यात्म उसकी आत्मा है। दोनो का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सास्कृतिक चेतना मे धार्मिक चेतना का बहुत महत्व है। धर्म ही राष्ट्र को प्रेरित करता है। धार्मिक सगठन से सास्कृतिक चेतना का निर्माण होता है। उनके साहित्य मे धर्म का समावेश स्पष्ट रूप से हुआ है। जैनेन्द्र ने धर्म को ज्ञान से नहीं बल्कि अनुभव से स्वीकार किया है। उनका धर्म मानव धर्म है। सास्कृतिक चेतना मे धर्म का समावेश उसी

प्रकार किया गया है जैसे लोहे मे आग। हिन्दू धर्म मे धर्म की धारणा शक्ति आत्मा मे ही मानी जाती है। जैनेन्द्र जैन धर्म की स्याद्‌वादी विचारधारा के प्रभाव के कारण ही विविध धर्मों की अनेकता को मिटाने के पक्ष मे नही है। हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म सब सत्य है।[18] मानव जीवन के लिए धर्म एक महत्वपूर्ण अग है। उन्होने अपने उपन्यास और कहानियो मे ऐसे लोगो का चित्रण किया है, जिन्हे धर्म का कोई ज्ञान नही, न कोई जानने की जिज्ञासा है। 'विवर्त', 'कल्याणी', 'अनन्तर' आदि उपन्यासो मे अर्थ और काम दोनो को प्रमुखता देने वाले व्यक्तियो का वर्णन किया गया है। 'अनन्तर' मे जया अति भौतिकता से घबडाकर ही शान्ति–धाम की स्थापना करती है। उसके अनुसार जीवन भोगाभिमुख होता जा रहा है। उसने सकल्प बॉधा है कि इस गिराव को रोकना होगा, जीवन को उसकी सही धुरी पर फिर से निष्ठ और प्रतिष्ठ करना होगा।[19] मानव जीवन मे धर्म का उद्‌देश्य मोक्ष भी है। जैनेन्द्र ने 'समय और हम', 'प्रश्न और प्रश्न' से मोक्ष को सफर (यात्रा) मानकर अपने विचारो को व्यक्त किया।

ग्रामीण संस्कृति

भारत वर्ष के अधिकाश लोग गॉव मे निवास करते है। कृषि कर्म से सम्बन्धित होने के कारण उन्हे कृषक भी कहा जाता है। कृषको का सीधा–सादा पवित्र हृदय मनुष्य का मन जीत लेता है, परन्तु पता नही क्या कारण है कि हमारे कथा साहित्यकारों की अभिरुचि उनके रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार, आदर्श और वैचारिक दृष्टिकोण की ओर नही रही, जिससे वह अपने कथा साहित्य मे जन सामान्य को प्रतिष्ठित करने में असफल रहे। ग्रामीण जीवन का

---

18 जैनेन्द्र कुमार – मथन, पृष्ठ – 85
19 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर पृष्ठ – 56

जीवित चित्र यदि किसी कथाकार के साहित्य मे मिलता है, तो वह निश्चित ही जैनेन्द्र कुमार है। हम उनके साहित्य मे गॉव की सैर कर सकते हैं।

जैनेन्द्र कुमार का ऐसा कोई उपन्यास नही है, जिसमे समग्र रूप से सामान्य जन–जीवन और ग्रामीण सस्कृति का चित्रण न हुआ हो। 'परख' का सम्बन्ध उत्तर प्रदेश की ग्रामीण, भोली–भाली नायिका से है। वह बाल विधवा है। ग्रामीण सस्कृति मे जमीदारो, महाजन, किसानो आदि सभी को उन्होने अपने कथा साहित्य मे स्थान दिया है। 'परख' मे बिहारी पढने के लिए शहर जाता है, लेकिन वहॉ के जीवन से ऊबकर फिर गॉव वापस आ जाता है। सत्यधन अपने गॉव मे पडोसिन बाल–विधवा कट्टो को पढने मे सहायता करता है। 'व्यतीत' मे जयन्त चन्द्री को साथ लेकर कश्मीर जाता है। अपनी पत्नी से रूठकर वह पहलगाम मे अपने को रिझाना चाहता है। जैनेन्द्र जी के 'परख' उपन्यास मे ही ग्रामीण संस्कृति और गॉव के वातावरण का सजीव चित्रण मिलता है।

नगर संस्कृति

जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे नगरो का भी अत्यधिक वर्णन हुआ है। अधिकतर उपन्यासो और कहानियो मे दिल्ली का वर्णन है और इस नगर का उल्लेख कथा साहित्य में कही न कही अवश्य मिल जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य जगहो के नाम भी हैं, यथा–'सुनीता' मे प्रयाग तथा लाहौर नगरो का उल्लेख है। 'जयवर्धन' तथा 'अनन्तर' आदि परवर्ती उपन्यासो में घटना चक्र मे कई अन्य नगर भी चपेट में आ गये हैं, हस्तन बम्बई मे उतरता है। मुक्ति 'बोध' तथा 'अनन्तर' मे दिल्ली के अलावा बम्बई, नैनीताल, अहमदाबाद तथा माउण्टआबू नगर भी उल्लिखित है। इनके बाद इसी उपन्यास 'मुक्तिबोध' तथा 'अनन्तर'

मे आकर यह महानगरो, होटलो, ट्रक–काल्स, कैड लैक कारो तथा 'एयर कन्डीशन्ड कोच' का हो जाता है। किसी–किसी उपन्यास, जैसे–'त्यागपत्र' मे किसी भी नगर का नामत उल्लेख नही है।

अन्त मे मुख्य बात यह है कि इन नगरो का नाम आ जाने से भी वर्णन मे कोई अन्तर नही पडता है, जो वर्णन होता है वह किसी भी नगर का हो सकता है, गली मुहल्लो का वर्णन हो सकता है तथा होटल का वर्णन किसी भी बडे होटल पर लागू किया जा सकता है।

विभिन्न वि ार दर्शन

प्रत्येक युग का वैचारिक और बौद्धिक जीवन कुछ विचारधाराओ से नियन्त्रित होकर चलता है। देश एव काल की सीमा मे युगीन परिस्थितियॉ युगचेतना के निर्माण द्वारा नूतन विचारधाराओ को जन्म देती हैं तथा कुछ विचारधाराएँ पुरानी होने से रूढिवादी हो जाती हैं। बौद्धिक व्यक्ति के चिन्तन मनन पर युग चेतना का प्रभाव किसी न किसी रूप मे अवश्य पडता है, जिससे वह युगधारा मे प्रवाहमान विचारधाराओ से असम्पृक्त नही रह पाता। व्यक्ति को उस चेतना के प्रति ईमानदार होना भी चाहिए। युग चेतना एक व्यापक केन्द्रीभूत मूल्य है, जिसे युग धर्म का मूल स्वर भी कहा जा सकता है। जैसे युग एक विशाल परिवेश के अन्तराल का परिचायक है, उसी तरह मानव भी विशाल समूह का द्योतक है। युग धर्म से हमारा आशय मानव धर्म से होता है। युग धर्म कभी शाश्वत नहीं हो सकता और न मानवीय धर्म की कोई शाश्वत कसौटी ही होती है। ये दोनो शब्द मानवतावादी विचारधारा के लिए प्रयुक्त होते हैं।

आधुनिक भारत मे वैचारिक जगत अनेक प्रकार की विचारधाराओं से आक्रान्त रहा है, जिससे वह आस्था और विश्वास को

आत्मसात करते हुए अतीत की प्रेरक शक्तियो की उछाल मे आगे बढता रहा। गॉधीवाद, मानवतावाद, व्यक्तिवाद और समाजवाद इन चारो ने आधुनिक युग के वैचारिक जगत् को प्रभावित किया। गॉधीवादी विचारधारा और मानवतावाद दोनों एक ही है। गॉधी जी इस युग के सबसे अधिक प्रभावशाली चिन्तक रहे जिनसे युग, समाज तथा व्यक्ति प्रभावित हुए बिना न रह सका। युग, समाज और व्यक्ति ये तीनो आपस के सघर्ष से नवीन विचारधारा का निर्माण करते हैं। इन्ही के मध्य मानवतावाद, समाजवाद और व्यक्तिवाद का जन्म होता है। किस युग मे किस प्रमुख विचारधारा का जोर रहेगा, यह युगीन परिस्थितियो पर निर्भर करता है। जैनेन्द्र जी के साहित्य से इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। इनके उपन्यासो और कहानियो मे विचार–दर्शनो का पूर्ण प्रभाव मिलता है।

मानवतावादी विचार दर्शन–गाँधीवादी विचार दर्शन

आधुनिक युग के जागरणकाल मे स्वामी विवेकानन्द ने मानवतावाद का उपदेश दिया था, जिससे सपूर्ण जगत् प्रकाशमान हो उठा था। गॉधी जी मानवतावादी श्रृखला की श्रेष्ठ कडी हैं। गॉधी जी ने मानवतावादी भावधारा को जब अपनाया तो वह सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रो मे अपने प्रमुख नैतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण दर्शन के रूप मे ग्रहण किया गया। हिन्दी के उपन्यास लेखक गॉधी जी के महान् व्यक्तित्व तथा उनके विचार–दर्शन दोनों से प्रभावित रहे। उनके उपन्यासों मे गॉधीवादी चरित्रो का प्रकाशन हुआ है तथा गॉधीवादी दर्शन के आधार पर नवीन नैतिक तथा आदर्श मूल्यो की स्थापना भी हुई। हिन्दी मे जैनेन्द्र कुमार इसके लिए विशेष उल्लेखनीय हैं। जैनेन्द्र जी के उपन्यासो पर, विशेषकर 'सुनीता' पर

आलोचको ने गॉधीवादी दर्शन का प्रभाव स्वीकार किया है।[20] जैनेन्द्र जी काम–वासना को भी हिसा की श्रेणी मे रखते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि असामाजिक तथा अनैतिक काम भाव को ही लेखक हिसा की कोटि मे रखता है। 'सुनीता' मे हरिप्रसन्न मित्र की पत्नी सुनीता पर आसक्त होता है तथा उसे सम्पूर्णता मे प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करता है, लेकिन सुनीता आकस्मिक ढग से नग्न होकर हरि प्रसन्न के मन मे जुगुप्सा का भाव जागृत करके उसका ह्रदय परिवर्तन करती है तथा उसकी वासना रूपी हिसा का परिष्कार करती है। कुछ आलोचको का यह मानना है कि सुनीता का नग्न होना अहिसा है, क्योकि सूनसान जगल मे कोई अकेली नारी हिसक पुरुष से अपनी रक्षा अन्य ढग से कर ही नही सकती थी, इसलिए सुनीता को नग्न होना पडता है। लेकिन आश्चर्य तो इस बात का है कि गॉधी जी ने स्वय अहिसा दर्शन का यह रूप कही भी प्रस्तुत नहीं किया, परन्तु फिर भी आलोचक जैनेन्द्र की कला को सराहते नही थकते है। शिवनाथ जी ने इसे गॉधीवादी दर्शन का साहित्यिक सस्करण माना है–'रात के समय सूनसान जगल मे हरिप्रसन्न के सामने सुनीता के दिगम्बर हो जाने का रहस्य क्या है? यह गॉधी की अहिसा का साहित्यिक प्रतिपादन है और इसके लिए मैं जैनेन्द्र कुमार का बहुत बडा प्रशसक हूँ। साहित्य के क्षेत्र मे गॉधी जी की अहिसा का व्यवहार जैनेन्द्र कुमार के अलावा और किसी के द्वारा इतने ऊँचे रूप मे नही दिखाई पडा अथवा यो कहें कि दिखाई ही नही पडा।[21] लेकिन सत्य तो यह है कि 'सुनीता' के सभी चरित्र काम कुण्ठा के शिकार हैं। श्रीकान्त यह सोचता है कि कही ऐसा तो नहीं कि उसके प्रति सुनीता का समर्पण केवल पत्नी होने के कारण है। अत वह सुनीता को परीक्षा मे डालने की नीयत से कुछ दिनो के लिए उसे अकेली

---

20 महेन्द्र चतुर्वेदी – हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण पृष्ठ – 19
21 आलोचना – उपन्यास विशेषाक, अक – 73, पृष्ठ – 115

छोडकर लाहौर चला जाता है। यथार्थ जीवन मे श्रीकान्त इसलिए असामान्य पति का उदाहरण प्रस्तुत करता है। हरिप्रसन्न क्रान्तिकारी है। परन्तु सुनीता के सम्पर्क मे आते ही उसकी देशभक्ति समाप्त हो जाती है। उसके लिए क्रान्तिकारी पार्टी का उद्देश्य देश–सेवा नही रह जाता, बल्कि उनका उपयोग अपनी काम दृष्टि के लिये करता है। इसी बहाने वह सुनीता को रात के अधेरे मे सुनसान जगल मे ले जाता है। सुनीता भी अतृप्त है तथा काम कुण्ठा से त्रस्त है। पति के साथ रहकर भी उसके जीवन मे उल्लास नही है। ऐसी दशा मे हरि प्रसन्न सुनीता और श्रीकान्त के बीच प्रवेश करता है, जिसमे सुनीता अधिक दिलचस्पी दिखाती है, उसकी छोटी से लेकर बडी बात तक का विशेष ध्यान रखती है।

प्रमुख बात यह है कि सुनीता गॉधीवादी अहिसा का आश्रय ग्रहण करके नग्न होने के बावजूद मानसिक रूप से अपनी पवित्रता तथा शुद्धता को स्वीकार नही कर पाती। वह हरिप्रसन्न के लिये फिर भी चिन्तित है तथा उसके चरणो की धूल लेकर सौभाग्य सिदूर भरते हुए उसे विदा देती है। स्पष्ट है कि सुनीता मे भी हरिप्रसन्न के प्रति काम वासना है जिसे टाला नही जा सकता और इसे अहिसा के आवरण मे ही ढका जा सकता है।

हिन्दी कथा साहित्य के विकास के साथ गॉधीवादी विचार दर्शन का आदर्श भी बहुत कुछ टूटता गया। स्वयं जैनेन्द्र जी अपने उपन्यास 'कल्याणी' (1929) मे इस दृष्टि से असफल रहे हैं। कल्याणी अपने पति को असरानी के ह्रदय परिवर्तन के लिए सत्याग्रह प्रयास तथा आत्मपीडा का मार्ग अपनाती है, लेकिन अन्त में असफल ही रहती है। जैनेन्द्र की आस्था अपनी जगह तब भी कायम रहती है। वस्तुत जैनेन्द्र ने गॉधी दर्शन को संपूर्णता मे नही अपनाया, केवल कुछ खास रूपों में ही वे उलझे रहे तथा आत्मपीडा को ही गॉधी

दर्शन का पर्याय मानते रहे। यही कारण है कि उनके चरित्रो मे एक प्रकार की अन्तर्विरोधी स्थिति दृष्टिगत् होती है तथा उनके प्राय सभी पात्र निर्बल, आत्मपीडित तथा कुण्ठा के शिकार हैं। इस पीडा के दर्शन की अतिम परिणति मृत्यु मे होती है। कल्याणी के चरित्र की अतिम परिणति उदाहरण के लिए प्रस्तुत की जा सकती है। गॉधी जी ने मानवतावादी भावधारा को ही अपनाया था। जैनेन्द्र भी इसी विचारधारा से प्रभावित थे। उनका सपूर्ण कथा साहित्य मानवतावादी और गॉधीवादी विचार दर्शन से प्रभावित है। गॉधी जी के सत्य, अहिसा के तत्वचितन ने जैनेन्द्र को नैतिकतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया है, तभी वे कामवासना को भी हिसा मानते है। जैनेन्द्र जी ने प्रेम और अहिसा के सिद्धान्त को अपनाया है। 'सुखदा' उपन्यास मे हरिसदा ने क्राति दल सगठन को भी गॉधीवादी दर्शन के फैलने से पहले ही भग कर देना ठीक समझा। जैनेन्द्र के मानवतावादी विचार दर्शन और गॉधीवादी विचार दर्शन मे काफी साम्य है। 'त्यागपत्र' मे मृणाल वेश्याओ की बस्ती मे रहने लगती है। उसके पीछे उसका व्यक्तित्वदर्शन, सामाजिक परिस्थितियॉ प्रधान कारण है। अगर उसे अनुकूल परिस्थितियॉ मिल जाती तो वह यहॉ कभी निवास न करती। 'सुनीता' मे हरि प्रसन्न क्रान्तिकारी पात्र है, परन्तु उसका प्रत्येक कार्य भावनात्मक है। वह ह्दय से पवित्र मनुष्य है और मानवीय धर्म की प्रतिष्ठा के लिए ही क्रान्ति करता है।

व्यक्तित्ववादी दर्शन

व्यक्तित्ववादी दर्शन का अर्थ है कि समाज मे रहते हुए भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को अक्षुण्ण रखना चाहता है। ससार की सबसे बडी पहेली है—एक व्यक्ति का व्यक्तित्व और ससार की सबसे बडी समस्या है—व्यक्तित्व की समस्या। एक स्थान मे व्यक्ति सबसे पृथक्

होकर अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए सचेष्ट रहता है और दूसरे स्थान मे परिवार, समाज तथा जाति और राष्ट्र के साथ सम्मिलित होकर सभी के साथ वह ऐसा सम्बद्ध हो जाता है कि किसी भी स्थिति मे वह अपने को सबसे पृथक् नही कर सकता।[22] व्यक्ति समाज की इकाई है तो उसका व्यक्तित्व सास्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति है। हर व्यक्ति अपने मे अकेला है और शायद यह अकेलापन ही उसकी वैयक्तिक उपलब्धि है। सामाजिक प्राणी होने के नाते इस वैयक्तिक अकेलेपन को लिए हुए भी समाज से जब तक जुडा है तब तक 'मैं' स्थित है।[23] जैनेन्द्र ने औपन्यासिक शिल्प पर ही अपना विचार केन्द्रित किया है। मानव के मन और व्यक्तित्व की अपेक्षा उसके अन्तर्मन के निगूढ भावो की अभिव्यजना अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढग से प्रस्तुत की है। 'परख' मे व्यक्ति प्रधानता के साथ उन्होने उसके वैयक्तिक जीवन का चित्रण करते हुए, बाहर से भीतर की ओर जाने की प्रवृत्ति अपनायी।[24] जैनेन्द्र जी व्यक्तिवादी चेतना के कथा साहित्यकार हैं। उन्होने अपने कथा साहित्य मे व्यक्तिवादी चेतना का समावेश किया है। जैनेन्द्र जी के व्यक्तिवादी दर्शन मे चिन्तक के नये क्षितिज उत्पन्न हुए हैं। व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप मे जीने का अधिकार है। व्यक्ति को समाज मे रहकर दया, ममता, करुणा, प्यार और न्याय आदि प्रवृत्तियो का अनुसरण करना चाहिए। 'जयसन्धि' कहानी मे एक स्थान पर यशोविजय कहता है – ''वह समाज जहा व्यक्ति का कुल इतना प्रधान है कि प्रेम को व्यर्थ करता है, वह समाज जीर्ण है।[25] व्यक्ति की मनश्चेतना की पर्तों मे खोई हुई उसकी वास्तविक असहायता और विवशता का चित्रण किया गया है।

---

22 पदुमलाल चुन्नालाल बक्शी – हिन्दी कथा साहित्य, पृष्ठ – 86
23 नई धारा – फरवरी–मार्च 1966 पृष्ठ – 115
24 डॉ० सुषमा धवन – हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ – 169
25 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ (जय सन्धि) पृष्ठ – 169

इस प्रकार जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे व्यक्तिवादी विचार दर्शन मिलता है। जैनेन्द्र जी को व्यक्तिवादी विचार—दर्शन का जन्मदाता कहा जा सकता है। जैनेन्द्र जी का सम्पूर्ण साहित्य व्यक्ति के विकास मे गतिरोध तथा शून्य स्थिति की अभिव्यक्ति नही करता है। जैनेन्द्र जी ने एक प्रकार का जडवादी विचार दर्शन प्रस्तुत किया है, उनके इस विचार दर्शन को व्यक्तिवादी दर्शन कहना अधिक उचित लगता है। उन्हे केवल सामाजिक सन्दर्भों मे ही व्यक्तिवादी कहा जा सकता है।

विविध

सास्कृतिक अध्ययन एव विश्लेषण क्रम मे अब तक के समस्त विवेचना के बावजूद कुछ आवश्यक बाते बच जाती हैं जिनका सस्कृति से अनिवार्य रूप से सम्बन्ध है। इसलिए सास्कृतिक चेतना के विवरण मे उनकी उपादेयता असदिग्ध है। खानपान, वेशभूषा, आचार—विचार, रीति—रस्म आदि प्रमुख है, जिनका विवेचन यहॉ अपेक्षित है।

खान—पान

संस्कृति जीवन की समग्रता का सामजस्य है और खान—पान जीवन का आवश्यक अग है। अतः उसका सम्बन्ध संस्कृति और सभ्यता से अभिन्न रूप से होता है। इतना ही नही प्राचीनकाल से लेकर आज तक मनुष्य के जीवन में घटित विकासो का अध्ययन खान—पान के आधार पर किया जा सकता है। वह समय मनुष्य सभ्यता की चरमोपलब्धि का रहा होगा, जब मनुष्य ने शिकार के लिए औजार बनाना सीखा और कच्चे मास को भूनकर खाना शुरू किया। आज के युग में खाने के विभिन्न पदार्थ हैं और खाने के विभिन्न ढंग

भी। अधिक सख्या होने के कारण इनकी गणना नही की जा सकती। विभिन्न सस्कृतियो मे जन्मे, पढे–लिखे व्यक्ति के रहन–सहन के जहॉ भेद मिलेगे वही उनके खान–पान मे भी कम विभिन्नता नही मिलेगी, उनकी यही विशेषता उन मनुष्यो की रूचियो, सस्कारो तथा प्रवृत्तियो मे विविधता पैदा कर देती है और विविध सस्कृतियो का निर्माण कर देती है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे सास्कृतिक विभिन्नता का रूप देखा जा सकता है। जैनेन्द्र के 'परख' उपन्यास मे कट्टो के द्वारा बनाये गये भोजन का वर्णन है। कट्टो गरिमा को खाने के लिए आमन्त्रित करती है वह उसके लिए सब्जी और गरम–गरम रोटियॉ सेकती है। सभ्यता और सस्कृति के विकास के साथ–साथ भोजन की सामग्रियो मे भी अनेक सुधार हुये और पौष्टिक आहारो का प्रचलन बढा। आज के विकसित युग मे खाने–पीने की अनेक वस्तुये प्रयुक्त होती हैं जिनके नाम नही गिनाये जा सकते हैं। भोजन की अनेक सामग्रियॉ आधुनिक समाज मे उपलब्ध है। जिनका अपनी रुचि के अनुसार प्रत्येक मनुष्य प्रयोग करता है। वैसे जैनेन्द्र जी ने अपने कथा साहित्य मे खान–पान को विशेष महत्व नही प्रदान किया है।

वेश–भूषा–श्रृंगार प्रसाधन

वेश–भूषा का सम्बन्ध देश की सभ्यता से होता है, क्योकि देशगत् विभिन्नता के साथ सभ्यता और सस्कृति बदलती है, जिससे वेश–भूषा मे भी अन्तर आ जाता है। इसलिए कहा जाता है कि जैसा देश वैसा वेश। प्राचीनकाल के राजकीय वस्त्रो मे शुभ तथा मगल अवसरों पर मुकुट धारण किये जाने का रिवाज था, साधारण जनता सूती वस्त्र पहनती थी पर रईस लोग उत्सवो के अवसर पर रेशमी वस्त्र धारण करते थे। स्त्रियॉ सुन्दरता पूर्वक बनाये हुए कानो की बालियॉ, मोतियों की मालाये, मेखलाये और रत्नजडित चूडियॉ आदि

व्यवहार मे लाती थी। वेश–भूषा एव साज–सँवार बहुत हद तक पहनने वाले व्यक्तियो की मानसिक अभिरुचि का परिचय देती है।

जैनेन्द्र जी ने 'सुनीता' मे साडी–ब्लाउज तथा पेटीकोट का उल्लेख किया है। सुनीता जगल मे हरि प्रसन्न के सम्मुख अपनी साडी ब्लाउज तथा पेटीकोट उतारकर नगी हो जाती है। जैनेन्द्र का उद्देश्य वेश–भूषा को साहित्य मे प्रस्तुत करना नही है।

आचार–विचार और रीति–रिवाज

आचार–विचार और रीति–रिवाज सभ्यता और सस्कृति की व्यापक परिधि मे समाहित होते हैं। प्रत्येक सस्कृति के आचार–विचार और रीति–रिवाज के अपने नियम होते हैं जो दूसरी सस्कृति से पृथक् होते है। अनेक देशो के विचारको ने विभिन्न युगो मे आदर्श मनुष्यो के विभिन्न रूप व्यक्त किए हैं। 'प्लेटो' का 'दार्शनिक शासक', अरस्तू का 'मनस्वी व्यक्ति, 'गीता' का 'स्थितप्रज्ञ', बौद्धो का 'बोधिसत्व', नीत्से का 'अतिमानव' आदि ये सब आदर्श पुरुष की ही विभिन्न कल्पनाएँ हैं। अन्य कल्पनाएँ कवियो, नाटककारो तथा उपन्यासकारो की कृतियो मे मिल सकती है।[26]

जैनेन्द्र आस्थावादी कलाकार है और उन्हे गीता के कर्मयोग पर पूरी आस्था है। यद्यपि कुछ सुविज्ञ समीक्षक जैनेन्द्र जी को अनास्थावादी कलाकार कहते हैं, किन्तु यह उचित नही है। जैनेन्द्र जी मनुष्य के जीवन को भगवान की देन मानते हैं और यही कारण है कि जीवन के प्रति उनका उपयोगितावादी दृष्टिकोण समस्त साहित्य में व्याप्त है। यदि हमने मनुष्य योनि पायी है तो उसका पूर्ण सदुपयोग किया जाय। जीवन से जूझने पर भी मनुष्य को अपनी वीरता और बहादुरी से कार्य करते

रहना चाहिये। जीवन कर्ममय है, अत जैनेन्द्र जी के साहित्य मे निष्काम भाव से कर्म करने पर जोर दिया गया है। अधिक विकास का अपने आप मे महत्व आवश्यक है परन्तु शारीरिक भूख की पदार्थ जगत् मे उपेक्षा नही की जा सकती। 'सुनीता' उपन्यास मे स्पष्ट रूप से कर्म और योग के साथ सयम की जो महत्ता प्रतिपादित हुई हैं उसका उद्देश्य मनुष्य के विकास मे योगदान देना है। मनुष्य का कल्याण इसी मे निहित है कि वह जीवन की आवश्यकताओ को ठीक प्रकार से समझे और उन्हे जीवन मे उचित रूप से ग्रहण करे। जैनेन्द्र व्यक्ति और समाज मे सामजस्य आवश्यक मानते हैं। समाज से सामजस्य बनाये रखना व्यक्ति का परम कर्तव्य है। व्यक्ति उसी सीमा तक स्वतन्त्र रह सकता है, जब तक कोई सामाजिक हानि नही करता, परन्तु जहा पर यह स्वतन्त्रता अराजकता की ओर अग्रसर होने लगे तो नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है। जैनेन्द्र जी की मान्यता है कि परिणाम की चिन्ता किए बिना मनुष्य को कर्म करते रहना चाहिए, होता तो वही है जो विधि ने रचा है।

इस प्रकार जैनेन्द्र यह स्वीकार करते है कि कर्म करते रहना चाहिए और फल ईश्वर देता है। यही 'गीता' का 'कर्मयोग' है, जो जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे सर्वत्र अभिव्यजित हुआ है। जैनेद्र जी के कथा साहित्य में नैतिक मान्यताओ और आचार–विचार का जो स्वरूप दिखायी पडता है, वह 'गीता' का सन्देश ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार–विचार सबंधी नियम काल के परिवर्तन क्रम में परिवर्तित होकर रीति–रिवाज तो बन जाते हैं, परन्तु उनका अस्तित्व परम्पराओ के अलावा कही भी सुरक्षित नही रह सकता।

---

26 डॉ० देवराज – सस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ – 296–297

आदर्श जीवन मूल्य : एक मूल्यांकन

जैनेन्द्र कुमार एक आस्थावादी कथाकार है जो जीवन मे सदाचार और सयम को सदा महत्व प्रदान करते रहे है। वे कभी भी अपने कथा–साहित्य मे नैतिकता की अवहेलना नही करते। जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे अनेकोन्मुखी चित्रण के साथ मनुष्य की नैतिकता, सदाचार तथा वैयक्तिक गुणो की उपयोगिता चित्रित है। लेखक का कार्य उपदेश देना नही होता, उसको चाहिए कि विभिन्न प्रकार के पात्रो के माध्यम से मनुष्य के जीवन मे अनुभूत कष्ट, विपत्ति, वियोग की पीडा आदि मानवीय भावनाओ को स्पष्ट करे। अपने इस दायित्व का निर्वाह यदि वह कर ले जाता है तो वह निश्चित रूप से साहित्य साधन है। जैनेन्द्र जी ने अपने इस दायित्व का पूर्ण निर्वाह किया है।

जैनेन्द्र जी के लेखन कार्य के प्रारम्भ के समय मे ही सामाजिक तथा राजनैतिक आन्दोलनो ने नैतिक रूप ले लिया था। गॉधी जी के अहिसा, सदाचार, ब्रह्मचर्य सम्बन्धी विचार,, मनुष्य का परिष्कार करने वाले आदर्श प्रस्तुत कर रहे थे, जिसका सस्कारगत प्रभाव जैनेन्द्र के मानस पटल पर अकित हुआ। 'परख' मे सत्यधन, 'सुनीता' मे हरि प्रसन्न, 'त्यागपत्र' की कल्याणी आदि सभी ऐसे पात्र हैं जो जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य के आदर्श जीवन मूल्यो के युगानुकूल आलोक स्तम्भ कहे जा सकते है। निष्कर्ष रूप से स्पष्ट कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र जी ने अपने कथा साहित्य मे एक कथाकार के दायित्व का निर्वाह करते हुए आदर्श जीवन मूल्यो की विशद अभिव्यंजना की है और आदर्श जीवन मूल्य ही हमारी भारतीय सस्कृति की धरोहर हैं।

(खण्ड–2)

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में धार्मिक चेतना

जैनेन्द्र की धार्मिक दृष्टि

जैनेन्द्र का जीवन अध्यात्म और भौतिकता का सामजस्य है। धर्म का अस्तित्व जीवन के सत्य मे ही सभव है और जीवन की सार्थकता धर्म मे लगे रहने पर ही है। जैनेन्द्र का कथा साहित्य उनके व्यक्तिगत अनुभव का ही प्रतिरूप है। उनकी धार्मिक दृष्टि किसी मत या वाद से जुडी नही है। उन्होने वेद, पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन नही किया, किन्तु धर्म का जो रूप आदिकाल से विश्व के सभी धर्मों मे प्राप्त होता है, वह सभी उनके साहित्य मे सहज रूप मे ही देखने को मिलता है। जैनेन्द्र ने धर्म को ज्ञान से नही, बल्कि अनुभव से प्राप्त किया है। उनका धर्म मानव धर्म की सज्ञा से विभूषित किया जाता है। धर्म के इस विस्तृत रूप के अन्तर्गत जीवन के विभिन्न अगो का समावेश हो जाता है। उनके कथा साहित्य मे धर्म का अस्तित्व उसी प्रकार लक्षित होता है जैसे दूध मे मक्खन या पुष्प मे सुगन्ध।

जैन धर्म

जैनेन्द्र का साहित्य उनके युग की परिस्थितियो और सस्कारो का ही परिणाम है। जबकि जैनेन्द्र स्वयं को सभी बन्धनो से अलग मानते हैं, किन्तु यह सम्भव नही है कि मनुष्य नितान्त निरपेक्ष हो जाए। व्यक्ति का जीवन और उसके विचार नितान्त नवीन नही हो सकते। उनके धार्मिक विचार किसी नवीन आदर्श की स्थापना नहीं

करते, बल्कि उनका महत्व सत्य की आवश्यकता के अनुकूल नये ढग से प्रकट करने मे है।

जैनेन्द्र का जन्म जैन परिवार मे हुआ है। जैने धर्म की आत्मा उनके सस्कारो मे व्याप्त है। जैनेन्द्र ने यदि स्वधर्म के रूप मे किसी भी धर्म को स्वीकार किया है तो वह जैन धर्म है।जैनेन्द्र ने अपने सम्पूर्ण जीवन को जैन आदर्शों मे ही ढालने का प्रयत्न किया है। कथा साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है, अत जैनेन्द्र के कथा साहित्य पर जैन धर्म का प्रभाव होना समुचित प्रतीत होता है।

धर्म : अर्थ और स्वरूप

जैनेन्द्र जैन धर्म से अत्यधिक प्रभावित हैं। जैनेन्द्र का साहित्य उनके इस प्रभाव का ही परिणाम है। जैनेन्द्र ने जैन साहित्य का विशेष अध्ययन किया है। जैनेन्द्र ने अपने साहित्य मे जैन धर्म के विभिन्न अंगो और उपागो का वर्णन किया है। कुछ जैन कथाएँ उनके जीवन का अंग बन गई है, उसके प्रभाव से उनका हृदय आर्द्र हो उठा है। जैनेन्द्र का जीवन सरलता और निरहकारिता का आदर्श बन गया। जैन धर्म किसी प्रमुख समय मे प्रमुख मनुष्य के माध्यम से नही चलाया गया। उनके अनुसार यह तो जीवन धर्म है। ईसाइयो ने ईसा को ही 'गॉड' अथवा 'ईश्वर' माना है, किन्तु जैनियो ने महावीर स्वामी को अपना आदि पुरुष नही, बल्कि चौबीसवा तीर्थंकर माना है। उनके अनुसार मनुष्य ही समस्त सासारिक वासनाओ और दोषों से अलग होकर कैवल्य को प्राप्त करता है। कैवल्य प्राप्त मनुष्य ही ईश्वर के सदृश है। महावीर स्वामी के तप·पूत व्यक्तित्व ने जैनेन्द्र को अत्यधिक प्रभावित किया है। वे उन्हे अमर विभूति मानते हैं। उनकी मृत्यु हमे उनसे दूर नही कर सकती।[27]

---

27 जैनेन्द्र कुमार – मथन, पृष्ठ – 221

जैनेन्द्र कुमार हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। साहित्यकार का भी एक धर्म होता है, उसे साहित्य का धर्म कहते है। साहित्य की रचना की कुछ मर्यादाएँ होती है, उनसे अलग रहकर साहित्यकार अपने साहित्य के महत्व को अक्षुण्ण नही रख सकता। उपदेश देना अथवा प्रचार साहित्यकार का धर्म नही है। यही कारण है कि जैनेन्द्र जैन धर्म के समर्थक होते हुए भी प्रचारक नही बने है। जैनियो की यह बडी अभिलाषा थी कि जैनेन्द्र जैन साहित्य की रचना करे, किन्तु जैनेन्द्र के अनुसार जैन साहित्य लिखना ही जैन धर्मावलम्बी होने का सूचक नही है। उन्होने स्पष्ट लिखा है –

"क्या जो मै लिखता हूँ वह साहित्य जैन नही है ××××× क्या जैन धर्म ग्रन्थो मे वर्णित नामावली तथा शब्दावली के प्रयोग से कोई जैन बन जाता है। उस सूरत मे ऐसा भी तो हो सकता है कि वह साहित्य जैन तो हो साहित्य हो ही न।"[28] जैनेन्द्र के अनुसार जिस कार्य के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा होती है उसका प्रभाव अनायास ही साहित्य मे परिलक्षित होने लगता है। साहित्यकार को उसके लिए प्रयत्न नही करना पडता है, क्योकि प्रयास मे प्रचार का आग्रह रहता है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे धर्म के किसी वाद का प्रचार नही किया गया है, उनके पात्रो का जीवन इस प्रकार से ढाला गया है कि वे अपने आचरण मे अपनी धार्मिकता का आभास देते है।

जैनेन्द्र ने जैन धर्म की ही तरह वस्तु के स्वभाव को ही धर्म माना है, किन्तु मनुष्य के स्वभाव को ही कर्म मान लेने से धर्म का स्वरूप स्पष्ट नही हो पाता। जैनेन्द्र ने मनुष्य या वस्तु की आत्म प्रकृति को ही धर्म माना है।[29] आत्म तत्व की प्राप्ति ही जीवन का परम धर्म है। जैनेन्द्र के समस्त कथा साहित्य के पात्र उसी आत्मतत्व

---

28 जैनेन्द्र कुमार – परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ – 42
29 जैन धर्म को भी इतना जानता हूँ कि वह आत्म धर्म है। (जैनेन्द्र कुमार – मथन पृष्ठ – 91)

के साक्षात्कार मे प्रयत्नशील दिखाई पडते है। 'जयवर्धन', 'कल्याणी', 'त्यागपत्र', 'परख' आदि उपन्यासो मे अह के विसर्जन द्वारा आत्मतत्व की प्राप्ति का प्रयास किया गया है। धर्म की पूर्णता अह के विसर्जन मे ही सम्भव हो सकती है।

जैनेन्द्र ने धर्म के शास्त्र–सम्मत रूप को भी स्वीकार किया है धर्म शब्द 'धृ' धातु से नि सृत है। 'धृ' का अर्थ है धारण करना। धर्म की धारण–शक्ति के कारण ही सृष्टि टिकी हुई है। मनुष्य का धर्म सासारिक बन्धनो से सयुक्त होकर ईश्वर की ओर आकर्षित होता है। हिन्दू धर्म मे यह स्वीकार किया गया है कि धर्म की धारण शक्ति 'आत्मा' मे ही व्याप्त है। अत प्रत्येक कर्म का मूल आत्मकेन्द्रित होना चाहिए और समस्त कर्मों को ईश्वर की प्राप्ति के हेतु ही किया हुआ समझना चाहिए।[30] सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रहते हुए भी जैनेन्द्र ने स्वधर्म को सबसे महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ माना है।

धर्म और सम्प्र·ाय

धर्म अपने विशुद्ध रूप में अव्यक्त है, क्योकि वह आत्मधर्म है। आत्मा का केवल अनुभव किया जा सकता है, किन्तु उसे देखा नही जा सकता। आत्मा की सत्यता शरीर मे ही है। नही तो वह प्रेत के समान है। आत्मा के बिना शरीर मुर्दा अथवा शव कहलायेगा। अत दोनो का सहअस्तित्व अनिवार्य है। एक के अभाव मे दूसरे की कल्पना सासारिक दृष्टि से ठीक नही है। मनुष्य जीवन में रग–रूप, गरीबी–अमीरी, ऊँच–नीच आदि विभिन्न बाते मिलती है। मनुष्य अपनी नासमझी के कारण इन बाह्य भेदो को ही सत्य मान लेता है और सारे जीवो के प्राण की समानता के रहस्य को भूल जाता है। इसी

---

30 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन पृष्ठ – 196–197

अज्ञानता के कारण आपस मे सघर्ष उत्पन्न होता है। धर्म एक भावनात्मक स्थिति है। भावना अपने मे कमजोर है। जैनेन्द्र के अनुसार कोरी धर्म भावना मे इतनी क्षमता नही होती कि वह अपने को स्थायी बनाए रख सके। अत धर्म की स्थापना के लिए सम्प्रदाय का अस्तित्व अनिवाय है। प्राचीन काल से आज तक यदि मानव धर्म स्थायी रह सका है तो वह विभिन्न धार्मिक सस्थाओ, धार्मिक ग्रन्थो आदि मे सन्निहित होकर ही अक्षुण्ण रह सका है। धर्म और सम्प्रदाय आत्मा और देह के सदृश अकाट्य बन्धन से जुडे है। उनके सम्बन्धो को बाह्य प्रहारो द्वारा विनष्ट करना उचित नही है। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म का सस्थाबद्ध रूप ही सामाजिक व्यवस्था के लिए उपयुक्त हो सकता है।[31]

जैनेन्द्र की धार्मिक विचारधारा समय के परिवर्तन के साथ बदलती रहती है। जैनेन्द्र को धर्म की व्यापक शक्ति का पूर्ण ज्ञान है। उनके अनुसार धर्म कर्मकाण्ड में ही सीमित नही रह सकता। धर्म का स्वरूप युग विशेष की आवश्यकता पर ही निर्भर करता है, किन्तु धर्म के अस्तित्व का कभी भी निषेध नही किया जा सकता। धर्म आत्म धर्म है, जीवन धर्म है, अत उसका रूप शाश्वत है। आत्मा के स्वरूप मे कोई अन्तर नही आता। सभी सम्प्रदाय आत्मधर्म से युक्त होकर ही सही माने जा सकते हैं। धर्म रहित सम्प्रदाय उसी प्रकार निरर्थक हैं जैसे प्राणविहीन शरीर। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म के सस्थापक रूप को स्वीकार करने के लिए अहिंसा धर्म का पालन आवश्यक है। 'अनन्तर' मे वनानि द्वारा जिस शान्ति धाम की स्थापना की योजना बनाई गयी है वह धर्म सकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक न होकर विश्वव्यापी मानव धर्म की स्थापना का प्रयत्न प्रतीत होता है।[32] सम्प्रदाय मे रहकर ही

---

31 जैनेन्द्र कुमार – मथन पृष्ठ – 166

32 वनानि एक सस्था स्थापित करना चाहती है, शाति धाम। देश–विदेश का प्रश्न उसमें न होगा न किसी खास धर्म या मन्तव्य का। उनका विचार है कि अपनी–अपनी सस्कृतियों ने भी मनुष्य की परस्परता में बाधा डाली है। – (जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 67)

धर्म–भावना प्रगति के रास्ते पर चल सकती है। जनेन्द्र की धार्मिक चेतना अत्यन्त उदार है। उनके कथा साहित्य मे जहॉ कही भी उनकी धार्मिकता के दर्शन होते है, वे उनके विचारो की उच्चता और व्यापकता के ही दर्शन कराते हैं। उनका साहित्य उनके धर्म का ही अभिव्यक्त रूप है।

जैनेन्द्र के अनुसार यद्यपि परम धर्म मानव धर्म या अहिसा धर्म है, किन्तु सामान्य रूप मे किसी भी को किसी विशिष्ट मार्ग पर चलने के लिए बाध्य नही किया जा सकता। ,'अनन्तर' मे जैनेन्द्र ने अपनी इसी सहृदयता का परिचय दिया है। जैनेन्द्र ने कहा है कि हम अपने मन से सबको नापते है, शायद हम विवश है। इसलिए हममे से हर एक को चाहिए कि स्वय को लेकर जो भी चाहे हो, दूसरो को उस जैसा न रहने दे।[33] धर्म व्यक्ति के अह को नष्ट कर देता है, उसे अधिक से अधिक उदार बना देता है। जैनेन्द्र ने 'अनन्तर' मे अपने शब्दो मे कहा कि है धर्म जिसे गला देता है मत उसी को फुलाने लगा।[34] जैनेन्द्र ने धर्म के सम्प्रदाय को स्वीकार किया है, किन्तु उनकी आत्मा मानव हित मे ही केन्द्रित रहती है। धर्म सामजस्य उत्पन्न करता है। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म वह है, जिसे मानकर बुद्धि मे नम्रता आती है और विद्रोह नही रहता।[35] अर्थ और काम से युक्त हो जाता है। यद्यपि अर्थ और अर्थ और काम भी जीवन के पुरुषार्थ हैं, किन्तु उनका भी धर्म से युक्त होना आवश्यक है।

धर्म और विज्ञान

जैनेन्द्र ने धर्म और विज्ञान के सम्बन्ध मे एक नया दृष्टिकोण अपनाकर कथा साहित्य की रचना की है। उन्होने धर्म और विज्ञान

---

33 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर पृष्ठ – 67
34 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 85
35 जैनेन्द्र कुमार – समय, समस्या और सिद्धान्त, पृष्ठ – 131

के मध्य की खाई को भरने का प्रयास किया है।[36] उनके अनुसार यदि धर्म आत्मा की वस्तु है तो विज्ञान शरीर की वस्तु हैं। दोनो का अटूट सम्बन्ध है जैनेन्द्र के अनुसार आधुनिक युग मे एक मात्र गॉधी ही धर्म के महान वैज्ञानिक हुए है।[37] विज्ञान जीवन से ही सम्बद्ध है। मानव उपयोगिता से पृथक होकर विज्ञान का कोई महत्व नही है। जैनेन्द्र ने धर्म को विज्ञान से युक्त बनाने के लिए उसकी आत्मा को ही ग्रहण किया है। कर्म के प्रति निष्ठा ही विज्ञान का धर्म है। धर्म का यही स्वरूप जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास 'कल्याणी' मे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। जैनेन्द्र ने कहा है कि 'उपयोगी कर्म मे अपने को भूलकर लगे रहना ही धर्म है।[38]

जैनेन्द्र के अनुसार वैज्ञानिक यदि मानव धर्म की ओर बढेगा तो एक ऐसी आस्था का जन्म होगा जो सामान्य अर्थ मे भिन्न होगी। विज्ञान की सार्थकता आस्थापरक होने मे है। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म आस्था का विषय है, किन्तु कभी–कभी उसमे इतना तर्क –वितर्क उत्पन्न हो जाता है कि धर्म की मूल सवेदना नष्ट हो जाती है। जैनेन्द्र ने इस सत्य को अपनी एक कहानी मे कोयले मे आग के अस्तित्व के आधार पर दर्शाया है।[39] उनके अनुसार मुक्का–मुक्की द्वारा तत्व निर्णय ही काल ज्ञापन का एक उपाय नही है अन्य भी अनेक कर्म हैं, जीवन उनसे भी चलता है, बल्कि बहस की जगह उन कार्यो को करना कुछ कहला सकता है।

---

36 जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत पृष्ठ – 189
37 वहीं पृष्ठ – 190
38 जैनन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ –54
39 डॉ० कुसुम कक्कड – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन पृष्ठ – 69–70

धर्म और राजनीति

जैनेन्द्र के कथा साहित्य का प्रथम काल राजनीतिक उथल–पुथल का काल था। चारो ओर गॉधी का प्रभाव फैला हुआ था। जैनेन्द्र ने अपने जीवन की आध्यात्मिकता को राजनीति मे ढालने का प्रयास किया है। जैनेन्द्र गॉधी के युग मे ही हुए थे। वे गॉधी के वाद से विशेष जुडे नही है, किन्तु युगीन चेतना से वे स्वय को पूर्ण रूप से अलग नही कर सके। जैनेन्द्र के अनुसार धर्म निरपेक्षता के दो रूप मिलते है एक वह रूप जिसमे धर्म के प्रति पूर्ण उपेक्षाभाव रहता है और दूसरा वह जिसमे किसी धर्म विशेष को न स्वीकार करते हुए भी सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना मिलती है। राजनीति मे जैनेन्द्र ने धर्म के जिस स्वरूप का समावेश करना चाहा है, वह उसका विज्ञान–समस्त रूप ही है। उसमे पूजा–व्रतादि को स्थान न देकर धार्मिक श्रद्धा का विशेष महत्व दिया गया है। 'जयवर्धन' और 'मुक्तिबोध' मे तथा उनकी कुछ कहानियो मे उनके इसी विचार के दर्शन मिलते हैं। जैनेन्द्र मनुष्य की सार्थकता धर्ममय होने मे ही स्वीकार करते हैं। उनका विश्वास है कि गॉधी के बाद हमने भौतिकता पर ध्यान दिया है और नैतिकता की उपेक्षा की है, फिर भी उस नैतिक भाषा का उच्चार और उद्घोष करते आए है। उससे बाहर और अन्दर की स्थितियो मे फर्क पडा और हमारी साख टूट रही है।[40]

जैनेन्द्र की दृष्टि में अहिंसा

जैनेन्द्र के साहित्य की आत्मा अह विसर्जन और अहिंसा मे ही सीमित है। जैनेन्द्र के अनुसार अहिंसा एक अखण्ड सत्य है और यह आत्मिक धर्म है। अहिसा धर्म के लिए अपवाद नही है, क्योकि वह

40 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 50

परम श्रेष्ठ धर्म है। परम श्रेष्ठ धर्म तो निरपवाद होता है ही, व्यक्ति, परिस्थिति और देशकाल आदि के भेद से उसके स्वरूप मे कोई अन्तर नही पडता। जैनेन्द्र ने स्वधर्म के पालन के लिए विशेष बल दिया है। स्वधर्म पालन के मूल मे उनकी अहिसक नीति ही विद्यमान है। जैनेन्द्र की अहिसा शारीरिक अहिसा तक ही सीमित न होकर मन की अहिसा मे भी व्याप्त है।

अहिसा जैनेन्द्र के धार्मिक विचार का मूल आधार है। अहिसा वह प्राणतत्व है जिससे अलग होकर धर्म का कोई अस्तित्व नही है। जैन धर्म मे अहिसा पर बहुत जोर दिया गया है। उनकी अहिसा नीति पूरे विश्व मे व्याप्त है। जैन धर्म मे अहिसा का बडी कठोरता से पालन किया गया है। जैनेन्द्र ने अहिसा को मानव धर्म मानकर ही रचना की है। 'जयवर्धन' मे जैनेन्द्र ने व्यक्त किया है "देह के जीने–मरने से उसका सम्बन्ध नही है। मै सबको बार–बार मारूँ या सैकडो, हजारो, लाखो, करोडो मे – इन सबसे अहिसा का कोई सम्बन्ध नही है। पर अपने भीतर के प्रेम को मरने दूँ तो मुझसे बडा अपराधी कौन होगा।"[41]

जैनेन्द्र ने स्वधर्म पालन मे होने वाली हिसा को पाप नही माना है। उन्होने जीव–हिसा को बहुत बडा पाप माना है। जैनेन्द्र ने विकासवाद मे, देवत्व को हिसा मे अहिसा की स्थिति के आधार पर स्पष्ट किया है। उनके अनुसार हिसा वह प्रक्रिया है, जिसमे स्वकीय के लिए 'पर' पर प्रहार होता है। यदि 'स्व' के पास 'स्वकीय' न हो तो प्रहार की प्रेरणा का अन्त हो जाय। वस्तुत· प्रहार की हिसा मे भी स्वकीयता अर्थात् अहिसा की आधार स्थिति आवश्यक है। जैनेन्द्र की 'निर्मम' कहानी मे इस बात को स्पष्ट किया गया है–

---

41 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन पृष्ठ – 148

'जो चीज तुम्हे दु ख पहुँचाती है, हिसा वही करने के लिए तुम्हे बाध्य करती है। यश–प्रतिष्ठा जिससे तुम भागना चाहते हो, वे ही तुम्हे चिपटानी पडती है, किन्तु मै समझता हूँ शिव का वह विराट् उत्सर्ग का अवसर है। × × × × × तब जो तुम जैसे विरलो को मिलता है, तुम खोओगे नही।[42]

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य मे कर्म निष्ठा को प्रधान माना गया है। जैनेन्द्र के साहित्य मे अहिसा विविध रूपो मे मिलती हैं। उन्होने उपने साहित्य मे पात्रो के चित्रण मे अपनी पूर्ण अहिसक नीति का समावेश किया है। जैनेन्द्र के पात्र किसी को दु ख पहुँचाना नही चाहते। उनके पात्र स्वय कष्ट झेलकर मृत्यु को प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु अपने कारण किसी को कष्ट नही देते। 'परख' में कट्टो तथा 'त्यागपत्र' मे 'मृणाल'' उनके ऐसे ही पात्र हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन कष्टो मे उलझा ही रहा। 'परख' मे कट्टो अपने प्रेमी की खुशी के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देती है। वह यह कदापि पसन्द नही करती कि उसके कारण उसके प्रेमी को कष्ट का अनुभव हो। 'त्यागपत्र' मे मृणाल का सम्पूर्ण जीवन दु ख से पूर्ण है, किन्तु वह अपने दु:खो को बॉटना नही चाहती। वह यह कदापि स्वीकार नही करती कि उसके पीछे उसके भतीजे प्रमोद को कष्ट हो। इन दोनो उपन्यासो मे जैनेन्द्र ने निज की व्यथा को सहने मे ही अपनी अहिंसक नीति का परिचय दिया है। 'सुखदा', 'विवर्त' मे भी जैनेन्द्र ने सुखदा और भुवनमोहिनी के पति को उनके प्यार की रक्षा के हेतु कष्ट सहते हुए दिखाया है, किन्तु उपरोक्त उपन्यासो मे तथा इन उपन्यासो की स्थिति मे अन्तर है। उनमे बलिदान की चरम सीमा थी, वह बलिदान सहर्ष था, किन्तु इन उपन्यासो मे पुरुष पात्रो की दुर्बलता का परिचय मिलता है।

---

42 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की प्रतिनिधि कहानियाँ (निर्मम), पृष्ठ – 46

'सुखदा' और 'विवर्त' के पुरुष पात्र बहुत कायर और बुजदिल प्रतीत होते है। अहिसा साहस मे है, विवशता मे नही।

अपरिग्रह

जैनेन्द्र अपने जीवन और साहित्य मे मध्यम मार्ग को अपनाकर चले हैं। उनके अनुसार ईश्वरोन्मुखता को छोडकर किसी भी मार्ग की एकोन्मुखता स्वाभाविक नही है। धर्म हृदय की वस्तु है। अत अपरिग्रह की भावना हृदय मे होनी चाहिए, क्योकि प्राय वाह्य जीवन मे अपरिग्रही दिखाई देने से व्यक्ति की वस्तु के प्रति बहुत अधिक आसक्ति होती है। अनासक्ति भाव से प्राप्त की गयी कोई भी निधि व्यक्ति को उसके धर्म से अलग नही कर सकती। जैनेन्द्र के अनुसार 'अपरिग्रह की कृतार्थता वस्तु के अछूते रहने मे नही है, वस्तु के मध्य खुले रहने मे है।[43] जैनेन्द्र के अनुसार हमारी प्रवृत्ति सहज होनी चाहिए। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे उनकी अपरिग्रहिता का समावेश मिलता है। वे हमेशा कम से कम मे कार्य करने मे सन्तुष्ट रहते है। उनका जीवन दिखावे से दूर नितान्त सादा है। उनके अनुसार त्याग मे अहं का समावेश नही होना चाहिए। प्रत्येक सुख का त्याग करने वाले व्यक्ति मे अपने कर्म का बोध बना रहता है और वह यह सोचता है कि मैंने यह त्याग किया है, तो कभी अपने लक्ष्य की प्राप्ति नही कर सकता। 'बाहुबली' कहानी मे सम्पूर्ण राज्य–सुखो को त्यागकर कैवल्य बाहुबली नही प्राप्त कर पाता, किन्तु उसका भाई चक्रवर्ती मरत राज्यभोग करता हुआ भी सहज ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। किन्तु बाहुबली को अपने त्याग और तप का बोध बना रहता है।[44] लाल सरोवर कहानी मे वैरागी अत्यधिक विनम्र है, वह अपने महत्व से

---

43 जैनेन्द्र कुमार – प्रश्न और प्रश्न, पृष्ठ – 110

44 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की प्रतिनिधि कहानियॉं (बाहुबली), पृष्ठ – 171

अनभिज्ञ है। त्याग, सेवा और पराहित की भावना उसमे कूट–कूट कर भरी हुई है। उसे धन की आवश्यकता नही है, अत धन की प्राप्ति उसे कष्ट देती है, क्योकि धन समस्त अनर्थों का मूल है।[45]

जैनेन्द्र के धन के प्रति अनासक्ति मे ही अपरिग्रह के आदर्शों की कल्पना है, किन्तु भावना की पवित्रता के साथ ही कर्मण्यता की भी आवश्यकता अपरिग्रह है। कश्मीर की वह यात्रा उनकी अपरिग्रह प्रवृत्ति का उदाहरण है। ससार मे रहकर जीवन व्यतीत करने के लिए धन आवश्यक है, किन्तु जैनेन्द्र एक स्थल पर कहते है कमाई एक चिन्ता का चक्कर है। सोचा कि जीवन वहॉ जीकर देखना चाहिए, जहॉ स्वय जीविका प्रश्न न हो और आस्तिक चिन्ता का विषय न हो वह जीवन बन्धन से हीन होगा और मुक्ति का क्या अर्थ है?[46] किन्तु जीवन से उबकर ससार से मुक्ति लेने वाला व्यक्ति कभी महान नही हो सकता। मनुष्य का पुरुषार्थ कर्मशील होने मे है। 'अनन्तर' मे जैनेन्द्र जी के विचार द्रष्टव्य है कि "तुम जैसी कोई जो पैसे से समर्थ हो और उसकी सेवा पर होकर सर्वथा अपरिग्राही बन जाऊॅ[47] जैनेन्द्र के विचारो से स्पष्ट है कि 'अनन्तर' मे प्रसाद को धन के प्रति आसक्त होते हुए अपरिग्रही होने हेतु प्रयत्नशील बनाया है।

जैनेन्द्र के साहित्य का सैद्धान्तिक पक्ष उनके गम्भीर चिन्तन मनन का परिणाम जान पडता है। अपरिग्रह धर्म का अनिवार्य आवश्यक अग है। आदिकाल से ही ऋषियो के जीवन और उस समय के साहित्य मे अपरिग्रही प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु समय के साथ–साथ उसके उपयोग मे अन्तर आना स्वाभाविक था। जैनेन्द्र के अनुसार जिस प्रकार मानव शरीर की सार्थकता समष्टि की सेवा और कल्याण

---

45 जैनेन्द्र कुमार – लाल सरोवर, पृष्ठ – 178
46 जैनन्द्र कुमार – कश्मीर की वह यात्रा, पृष्ठ – 67
47 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर पृष्ठ – 61

मे सन्निहित होने मे है, उसी प्रकार व्यक्ति का धन समष्टि की पूर्ति का साधन होना चाहिए। जैनेन्द्र के अनुसार धन का सग्रह पाप नही है, यदि व्यक्ति को उसके प्रति कोई वासना न हो। धन का सग्रह सार्वजनिक हित के लिए चाहिए। जैनेन्द्र ने 'अनन्तर' मे व्यक्त किया है कि 'आप लोग सार्वजनिक पैसा रखते है, जिसमे मेरा हम नही पहुँचता और इसलिए पैसा मुझे पास लेना पडता है।[48]

जैनेन्द्र के अनुसार अपरिग्रह धर्मनीति का अनिवार्य अग है। अपरिग्रही आचरण द्वारा जीवन के सत्य का बोध हो सकता है। ससार मे कोई न कुछ लेकर आया है न कुछ लेकर आता है और न कुछ लेकर जाता है। वस्तु या धन के सचय मे मनुष्य का 'मै' प्रबल हो उठता है। 'यह तेरा' 'वह मेरा' यह भावना सघर्ष की प्रेरक बनती है। जैनेन्द्र ने मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना के लिए अपरिग्रह को महत्वपूर्ण माना है। जैनेन्द्र के अनुसार ससार मिथ्या है, मानव शरीर नश्वर है। अत सचय की प्रवृत्ति निरर्थक ही सिद्ध होती है।[49]

परहित

जैनेन्द्र के अनुसार मानव धर्म परहित की भावना पर आधारित होना चाहिए। उसमे अह–विसर्जन के भाव सन्निहित होने चाहिए। जैनेन्द्र जी की धारणा है कि शरीर को अधिक कष्ट देकर व्यक्ति इन्द्रियो को सयमित कर लेता है, उसकी सासारिक विषयो मे वासना नही रहती। जैनेन्द्र के अनुसार जो मनुष्य ससार से विरक्त होकर धार्मिक होने का प्रयास करते हैं, वह उनका बाहरी दिखावा है।

---

48 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर पृष्ठ – 141

49. पदार्थों को बटोर कर उनके बीच हमने रुकना चाहा यही हमारी भूल है। क्या कोई कभी रुक सका है? .. (जैनेन्द्र कुमार – प्रतिनिधि कहानियाँ पृष्ठ – 234

जैनेन्द्र के अनुसार काया—क्लेश के द्वारा हम अपनी आत्मा के रस को सूखा देते है। बूँद का अस्तित्व समुद्र की अपेक्षा मे ही सम्भव है। समुद्र से पृथक होकर उसका अस्तित्व स्थिर नही रह सकता।[50] जैनेन्द्र ने 'बाहुबली' को मनुष्यधर्मी बनाने के हेतु उसे तपस्या से विमुख कर जनहित की ओर केन्द्रित किया है कि मैं सबके प्रति सदा सुप्राप्त होने के स्थिति मे अब रहूँगा. बाहुबली ने निर्मल कैवल्य पाया था। ग्रन्थियॉ सब खुल गयी थी। अब उन्हे किस ओर से बन्द रहने की आवश्यकता थी? वे चहुँओर खुले सबके प्रति सुगम रहने लगे थे।[51]

जांव- में धर्म की उपा-यता।

जैनेन्द्र के अनुसार धर्म जीवन का आवश्यक अग है। मानव—जीवन के सभी कर्मों की सार्थकता उसके धर्ममय होने मे है। वर्तमान परिस्थितियो मे धन और उसका भोग ही उसके जीवन का अग बन गया है, धर्म से उसका जीवन दूर होता जा रहा है। बडे—बडे अमीर लोग धन की ओर आकर्षित होते जा रहे है और धन उनके पास खिचता भी आ रहा है, परन्तु उनकी आत्मा सूखती जा रही है। जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य मे ऐसे पात्रो का चित्रण किया है, जिनके लिए अर्थ और काम की प्रधानता है, धर्म से वे लोग बिल्कुल अनिभिज्ञ हैं और न ही उन्हे उसको जानने की जिज्ञासा ही है। जैनेन्द्र ने 'अनन्तर' मे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि ये धाम (शाति धाम) मैं नही समझता, जिसमे रहता हूँ वही समझता हूँ रूपया समझता हूँ यह भी समझता हूँ कि सब मुझे उसी के लिए समझते है। मुझे और कुछ से मतलब नहीं है।[52] 'विवर्त', 'कल्याणी', 'अनन्तर',

---

50 जैनन्द्र कुमार – इतस्तत पृष्ठ – 199
51 जैनेन्द्र कुमार – बाहुबली, पृष्ठ – 179
52 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर पृष्ठ – 70

'मुक्तिबोध' आदि उपन्यासो मे जैनेन्द्र ने अर्थ मे डूबे व्यक्तियो का चित्रण किया है। 'अनन्तर' मे जया अति मौलिकता से परेशान होकर 'शान्तिधाम' की स्थापना करती है। उसके अनुसार जीवन भोगाभिमुख होता जा रहा है उसने सकल्प बॉधा है कि इस गिराव को रोकना होगा। जीवन को उसकी सही धुरी पर फिर से निष्ठ और प्रतिष्ठ करना होगा।[53] जैनेन्द्र के अनुसार सत्य धर्म वही है जिसमे अन्तश्चेतना और आन्तरिकता बढती हुई महसूस हो। जिसमे चित्त सिकुडता, सिमटता हो वही अधर्म है।[54] धर्म का भाव आत्मा के साथ ही पनपता है। अतएव जैनेन्द्र के विचारानुसार जीवन मे जिन कामो से आनन्द और सुख की अनुभूति होती है वही धर्म के नाम से पुकारा जाता है। धर्म का मूल परहित मे घुल मिल जाना चाहिए।

जैनेन्द्र की दृष्टि में मोक्ष

मनुष्य के जीवन मे धर्म का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति करना है। धर्म जीवन का केन्द्र है, आधार है, जिस पर मनुष्य जीवन यात्रा का प्रारम्भ और अन्त करता है। मोक्ष की प्राप्ति ही उसका उद्देश्य है। मोक्ष मनुष्य के जीवन की अन्तिम पहुँच है। जहा पर मनुष्य जाकर शीघ्र ही सारे कर्म–बन्धनो से अलग हो जाता है। जैनेन्द्र ने जीवन की यायार्थता से विमुख होकर किन्ही सिद्धान्तो की स्थापना नही की है।

जैनेन्द्र मोक्ष को ठिकाना न मानकर यात्रा के रूप मे मानते हैं। यात्रा का सुख तभी तक होता है जब तक कही ठिकाने का पता न हो। ठिकाने को जानकर चलने में यात्रा ठिकाने तक ही समाप्त हो जाती है। जैनेन्द्र ने 'समय और हम', 'प्रश्न और प्रश्न' में इन्हीं विचारो को स्पष्ट किया है। जैनेन्द्र का विचार है कि सफर जिसका काम है

---

53 वहीं पृष्ठ – 56
54 जैनेन्द्र कुमार – समय समस्या और सिद्धान्त पृष्ठ – 131

वह मुसाफिर मजिल को माने नही बैठेगा। मुझे तो यह लगता है कि जो मजिल को जान गया वह कभी भी मजिल तक पहुँचा नही।[55]

जैनेन्द्र के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति ससार के त्याग मे नही वरन् उसके सहर्ष स्वीकार मे है। जैनेन्द्र के अनुसार 'ज्ञान', 'कर्म' और 'भक्ति' साधना के ये तीन वर्ग समझे जाते है। ये तीन रहते होगे तब मुक्ति कैसे मिलती होगी, मै नही जानता।[56] ज्ञान, कर्म और भक्ति की समग्रता मे ही जीवन का लक्ष्य पूर्ण होता है। जैनेन्द्र के अनुसार मोक्ष का अभिप्राय ससार से मुक्ति नही, बल्कि अह से मुक्ति पाना है। जैनेन्द्र के अनुसार मोक्ष मे कर्म से मुक्ति नही बल्कि कर्म के लिए प्रेरणा मिलती है। जैनेन्द्र ने अपने सग्रह 'समय', समस्या और सिद्धान्त' मे स्पष्ट स्वीकार किया है कि मुक्ति वास्तव मे अह से मुक्ति है। जैनेन्द्र के अनुसार मोक्ष के रास्ते मे मुक्ति बाधा नही है। वह सिर्फ रूकावट मात्र है। जन्म–मरण के क्रम मे मोक्ष के लिए यात्रा निरन्तर चलती रहती है, क्योकि मोक्ष के सम्मुख सब निरर्थक है। जैनेन्द्र मोक्ष के ठिकाने पर पहुँचने के लिए धीरे–धीरे चलना आवश्यक मानते हैं।

जैनेन्द्र मोक्ष की प्राप्ति के लिए चारो पुरूषार्थों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को आवश्यक मानते हैं। उनकी दृष्टि मे धर्म के द्वारा अर्थ और काम के रास्ते से चलकर ही मोक्ष का ठिकाना प्राप्त हो सकता है। जैनेन्द्र जीवन के सघर्ष से भागकर मिलने वाले मोक्ष को ठीक नहीं मानते। 'बाहुबली' कहानी मे बाहुबली अपने तन को तपस्या के माध्यम से अस्थि मात्र कर लेने पर भी कैवल्य नही प्राप्त कर पाता है। जबकि उसका भाई राज्यभोग करते हुए भी मोक्ष की प्राप्ति करता है। वस्तुत जैनेन्द्र के जीवन, धर्म, दर्शन सबका सार है–अहं से मुक्ति। अह से मुक्ति पाने पर ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है। यही जैनेन्द्र की धार्मिक चेतना का तत्व है।

---

55 जैनेन्द्र कुमार – समय और हम पृष्ठ – 209
56 जैनेन्द्र कुमार – प्रश्न और प्रश्न, पृष्ठ – 48

(खण्ड–3)

जैनेन्द्र के कथा सा॥ ॰त्य में आर्थिक चेतना

समाज के निर्माण मे आर्थिक चेतना का अत्यधिक महत्व है। किसी भी राष्ट्र के सामाजिक जीवन के विकास मे आर्थिक चेतना का अपना निजी महत्व होता है, क्योकि आज के युग मे अर्थ का महत्व ही अधिक है। समाज मे व्यक्ति के उचित स्थान का निर्णय उसकी आर्थिक स्थिति से किया जताा है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि किसी देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियो से कही अधिक प्रभावशाली उसकी आर्थिक परिस्थितियॉ होती हैं।

साहित्य का प्रमुख स्रोत समाज है। कथाकार वैसे तो साधारण व्यक्ति होता है, परन्तु उसकी चिन्तन शक्ति एव सवेदनो को ग्रहण करके उनके अभिव्यक्ति की कला सामान्य जन से भिन्न हुआ करती है। कथाकार समाज मे रहते हुए समाज से प्रभावित होकर समाज के लिए सृजन करता है। समाज व्यक्ति रूपी इकाइयो का एक सगठन है तथा व्यक्ति और समाज के विकास का आधार आर्थिक चेतना ही है। जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे आर्थिक चेतना का भी विशिष्ट महत्व है। जैनेन्द्र जी अमीरी और गरीबी के भेद को स्वीकार करते हैं, उनका विश्वास है कि समाज मे यह कदापि सम्भव नही है कि प्रत्येक को समान आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त हो सके क्योकि इसके मूल मे व्यक्ति प्रकृति की एक दूसरे पर अधिकार करने की भावना विद्यमान है। जैनेन्द्र जी का आर्थिक दृष्टिकोण स्वतन्त्र है। जहा वह अमीरों पर व्यग्य करते हुए गरीबो के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते दिखायी पडते हैं, वही वह किसी वाद से प्रभावित नहीं है। जैनेन्द्र जी ने किसी आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया, बल्कि सामाजिक जीवन मे

आर्थिक विषमता एव पैसे के महत्व को अपने उपन्यासो और कहानियो मे अभिव्यजित किया है।

आर्थिक विषमता

जैनेन्द्र जी का युग आर्थिक वैषम्य का युग था। सामाजिक, सास्कृतिक जीवन मे यह विषमता बढती जा रही थी। अतएव जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे आर्थिक विषमता से प्रताडित मानव अनेक रूपो मे दिखायी पडते है। उनके कथा साहित्य मे सामाजिक और आर्थिक विषमता का स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। उन्होने अपने निकट की परिस्थिति से आत्मसात होकर उसमे निहित सत्य के उद्घाटन का प्रयास किया है। बडे–बडे शहरो मे जहॉ चारो ओर चहल–पहल तथा भव्य आकर्षण के दृश्य दिखायी देते है, वही गरीबी भी परिलक्षित होती है। 'दिल्ली' के बाजार में जहा अमीरी तन कर अपना प्रदर्शन करती फिरती है और जहॉ गरीबी अपने को अमीरी वाणी मे छिपाए, शर्माए चलती है।[57] जैनेन्द्र जी की कृतियो मे अमीरी व गरीबी के वैषम्य का बडा ही मर्मस्पर्शी चित्र प्राप्त होता है, जिससे मनुष्य के जीवन के प्रति उनकी अटूट निष्ठा का परिचय मिलता है। 'अपना अपना भाग्य'[58] शीर्षक कहानी इस दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण तथा उपयुक्त है। इस कहानी मे जैनेन्द्र जी ने आर्थिक विषमता से उत्पन्न गरीबी के कारण मृत्यु पाने वाले बालक का ऐसा मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है जो मानव ह्दय को द्रवित कर देता है। इस कहानी मे जैनेन्द्र जी ने साम्राज्यवादी अग्रेजो के शासनकाल की सभ्यता और सस्कृति का चित्र प्रस्तुत किया है। जैनेन्द्र जी की दृष्टि मे मनुष्य का हित ही प्रधान है। इस दृष्टि से उन्होने मानव–पीडा के

57 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियॉ भाग–2 पृष्ठ – 139
58 हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियॉ – स० गणेश पाण्डेय पृष्ठ – 80

विभिन्न स्रोतो की ओर दृष्टिपात किया है। मनुष्य को जानवर समझने वाली अग्रेज जाति की ओर भी उन्होने इगित किया है। इस कहानी मे कथाकार ने विषमता का वह चित्र प्रस्तुत किया है जिसमे सम्पन्नता के कारण आवश्यकता से अधिक सुख सुविधा प्राप्त करने वाले कुछ व्यक्ति है और कुछ ऐसे हैं जो या तो साहब की मार से मर जाते है अथवा नैनीताल की पहाडियो मे ठडक से सिकुडकर प्राण त्यागने को विवश होते है।[59] जैनेन्द्र जी की दृष्टि मे व्यक्ति के बीच अप्रेम और घृणा की गहरी खाई उत्पन्न करने का एक मात्र कारण धनी वर्ग का झूठा दिखावा और प्रतिष्ठा है। यही कारण है कि जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य मे प्रतिष्ठित माने जाने वाले व्यक्तियो को ही विशिष्टता नही प्रदान की, उनकी दृष्टि मे गरीब व्यक्ति भी अपने आत्मा की उच्चता के कारण प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है। अमीरी पाप नही, किन्तु अमीरी के मार से व्यक्ति की नैतिकता और आत्म–चेतना का पतन हो जाना पाप है। धनिक समाज मे चोर, बेईमान, चरित्रहीन व्यक्ति की सही पहचान नही हो पाती, क्योकि वे पैसे के बल पर ईमानदार और चरित्रवान बने रहते है।

जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे ऐसे समाज मिलते है जहा सज्जनता के पीछे दुष्कर्मों की गन्ध मिलती है। जैनेन्द्र जी की 'एक टाइप' तथा 'आतिथ्य' कहानी मे इस प्रकार के समाज मिलते हैं। 'एक टाइप' मे एक ऐसे व्यक्ति का परिचय मिलता है, जो सचमुच टाइप ही है। वह रेल मे सफर करते हुए पूरे समय तक 'शान्तकारम् भुजगशयनम्' का पाठ अपने ढंग से करता है।[60] उसको देखकर कोई भी यह विश्वास नही कर सकता कि उसकी सज्जनता के पीछे कोई दुष्कर्म हो सकता है। जैनेन्द्र जी ने अपने साहित्य में ऐसे व्यक्तियो के

---

59 वहीं पृष्ठ – 89

60 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 37

जीवन का उद्घाटन किया है जो हर तरह से सम्भ्रान्त दीखते है, जिन्हे देखते ही उन पर आदर आना स्वाभाविक है। उनके जीवन मे, उनके मन मे शका का भाव नही प्रकट होता, बल्कि थोडी आमदनी होने पर भी वे ऊपरी आमदनी के सहारे लम्बे खर्च करते है और बडे गर्व के साथ कहते है कि तनख्वाह बीस रूपये से ही शुरू हुई थी, लेकिन उसी के भरोसे कौन रहता है।[61] ऐसे व्यक्तियो के प्रति जैनेन्द्र जी के हृदय मे घृणा और घोर वितृष्णा है जो उनके कथा साहित्य मे व्यक्त हुई है। 'आतिथ्य' कहानी मे जैनेन्द्र ने एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है जिसकी दृष्टि मे मुनाफा और स्वार्थ प्रमुख है और मित्रता गौण है वह अपने आमत्रित अतिथि (मित्र) को अपनी गौशाल (डेरी) आदि के सम्बन्ध मे सविस्तार परिचय देता है, किन्तु अतिथि सत्कार के नाम पर मित्र के बच्चो को छटॉक भर दूध देने मे वह अपनी असमर्थता व्यक्त करता है। प्रस्तुत कहानी द्वारा जैनेन्द्र जी ने व्यक्ति की स्वार्थी मनोवृत्ति का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है।[62] जैनेन्द्र जी ने आर्थिक वैषम्य का व्यापक चित्रण अपने उपन्यास 'कल्याणी', 'सुखदा', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर और 'अनामस्वामी' मे भी किया है। 'कल्याणी' मे आर्थिक परिवेश कल्याणी एव डॉ असरानी के बीच 'केरीज्म' की विषमता में, सुखदा की पुत्र को पढाने की महत्वाकाक्षा मे चित्रित है। आर्थिक वैषम्य का परिवेश पीढी भेद के रूप मे 'मुक्तिबोध' और 'अनन्तर' उपन्यासो मे उपलब्ध होता है। आर्थिक वैषम्य का परिवेश प्रकारान्तर से 'सुखदा' उपन्यास मे सुखदा की गृहस्थी का विघटन करता प्रतीत होता है। आर्थिक वैषम्य का दूसरा चित्रण 'मुक्तिबोध' मे वीरेश्वर के माध्यम से और 'अनन्तर' मे प्रकाश के माध्यम से प्रकट होता है। 'अनामस्वामी' मे शंकर उपाध्याय के आश्रम के लिए कुमार और रानी वसुन्धरा अपनी जमीन देते हैं।

---

61 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 34–36
62 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ पृष्ठ – 115

अर्थ और शक्ति

जैनेन्द्र जी की दृष्टि मे समाज के स्तर को बढाने के लिए स्नेह, दया, प्यार व ममता की आवश्यकता है। उनके कथा साहित्य का अध्ययन करते हुए यह स्पष्ट होता है कि जब तक अमीरी के प्रति हमारा व्यर्थ का गर्व समाप्त नही होगा, तब तक आपस मे स्नेह, प्यार व ममता की कल्पना करना व्यर्थ है। जैनेन्द्र जी के हृदय मे मनुष्य की अवहेलना और अर्थ के सत्कार को लेकर गहरा दु ख था, क्योकि ससार मे प्राय ऐसा घटित होते हुए देखा जाता है कि रास्ते मे पडा हुआ धन उठा लिया जाता है और दु ख से द्रवित व्यक्ति को छोड दिया जाता है। अर्थ की शक्ति की जानकारी अबोध बच्चे को भी होती है, क्योकि अर्थ से मनुष्य का स्वार्थ जुडा होता है, अर्थ की शक्ति ने ही गरीब और अमीर मे भेद उत्पन्न कर दिया है जिससे मनुष्य–मनुष्य को पहचानने मे असमर्थ है। जैनेन्द्र की दृष्टि मे जब तक हमारी मानसिकता के स्वरूप मे अन्तर नही आयेगा तब तक मानव जीवन यो ही तिरस्कृत होता रहेगा।[63] उनकी दृष्टि मे मालदार बनने की इच्छा मनुष्यता की निधि मे सेध लगाकर चोरी करने की इच्छा से कम या भिन्न नही है।[64]

पूँजीवादी दृष्टि

जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे पूँजीपतियों के प्रति उनका गहरा आक्रोश अभिव्यक्त हुआ है। समाज मे उत्पन्न आर्थिक वैषम्य का दायित्व पूँजीपतियो पर ही है। पूँजीपति वही कहलाता है जो पूँजी बढाने की कला जानता हो और खर्च करने की नही। जैनेन्द्र के

---

63 जैनेन्द्र कुमार – सोच विचार पृष्ठ – 88
64 वही पृष्ठ – 93

अनुसार जिस प्रकार शरीर के स्वास्थ्य के हेतु रक्त का समुचित प्रवाह अनिवार्य है, उसी प्रकार समाजरूपी शरीर के स्वास्थ्य के हेतु धन का समुचित वितरण आवश्यक है। सरकारी मोहर लगने पर ही पूँजी की सार्थकता निर्भर करती है, अन्यथा वह स्वय मे जड है। जैनेन्द्र ने अपनी कृतियो मे 'सरकारी मोहर' शब्द का बार–बार प्रयोग किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि धन के सरकारी सरक्षण को वे उचित नही मानते। 'विवर्त' 'सुखदा', सुनीता', 'जयवर्धन' मे पूँजीपतियो की कटु आलोचना की है।[65] उनके अनुसार पूँजी स्वय मे दोष नही है, किन्तु उसकी वृद्धिकारक प्रवृत्ति समाज के अन्दर व्याप्त है। पूँजीपतियो की दृष्टि मे स्वार्थ की भावना बहुत अधिक होती है। प्रतिष्ठा के सम्मुख देश का हित भी उनकी दृष्टि मे गौण होता है। जैनेन्द्र ने भौतिकता के रंग मे रगे हुए अर्थ वृद्धि के लिए सचेष्ट रहने वाले समाज का चित्रण करते हुए स्पष्ट किया है कि ऐसे मनुष्यो को श्रम भी नही करना पडता और पूँजी बढती जाती है। सामाजिक सस्थाओ को दान स्वरूप कुछ सम्पत्ति देकर वे प्रेम को बहुत प्रतिष्ठित समझने लगते हैं। 'अनन्तर' मे आदित्य ऐसा ही व्यक्ति है जिसका लक्ष्य जीवन स्तर को बढाना है। धर्म, नैतिकता, परमार्थ आदि भावनाएँ उसकी दृष्टि मे निरर्थक हैं।

'विवर्त' मे जैनेन्द्र जी ने ऐसे ही परिवार का चित्रण किया है जहाँ सारा समय सुख भोग मे व्ययतीत होता है। उनके जीवन मे अभाव नाम की कोई वस्तु ही नही होती। वे अपने सुखमय जीवन मे कभी अपनो से नीचे देखने का कष्ट नहीं करते। जैनेन्द्र जी ने इस प्रकार के व्यक्तियों पर गहरा व्यग्य किया है। एक तरफ आवश्यकता से अधिक धन होने के कारण जीवन क्रीडा बन जाता है। दूसरी तरफ थोडे धन के लिए बेटी बेची जाती है। समाज मे यह भेद धन के

65 वही पृष्ठ – 143

कारण होता है। उनकी दृष्टि मे पूँजीपतियो की स्वार्थमयी दृष्टि ने समाज मे ऐसा जहर घोल दिया है जिसे समाप्त किए बिना समस्त मानव सस्कृति का विनाश निश्चित है। ऐसी विषम स्थिति मे जागरूक क्रान्तिकारी समाज के भीतर व्याप्त अर्थ की शक्ति का विस्फोट करने के लिए विवश हैं। 'सुखदा' मे लाल ऐसा ही क्रान्तिकारी व्यक्ति है, जिसकी दृष्टि मे पैसे ने अपने दॉत से काट–काट कर जगह–जगह समाज के शरीर मे जो घाव कर रखे हैं उन घावो का धोना और बहा देना ही उनका प्रमुख शौक है।[66] अर्थ के इस प्रकार पूँजीकृत होने से गरीब, गरीब होते गये और अमीर अधिक अमीर होते गये है। इस प्रकार गरीबी और अमीरी दो ऐसे किनारे बन गये है जिनमे मिलन अर्थात् पारस्परिक प्रेम की कोई सम्भावना ही नही दृष्टिगत होती है। जैनेन्द्र के अनुसार पूँजी ने मनुष्य को आदमियत से अधिक हैसियत से जोडकर झूठी मर्यादा और प्रतिष्ठा को बढाने मे ही सहयोग दिया है। जैनेन्द्र के साहित्य द्वारा धनी वर्ग के प्रति उनकी घोर वितृष्णा का भाव लक्षित होता है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे पूँजीपतियो के विरूद्ध हिसात्मक वृत्ति भी लक्षित होती है, किन्तु इस वृत्ति के माध्यम से जैनेन्द्र का उद्देश्य पूँजीपतियो के प्रति अपने आक्रोश को ही व्यक्त करना है। 'विवर्त' और 'सुखदा' मे जैनेन्द्र के इन्ही विचारो की झलक मिलती है। जैनेन्द्र की दृष्टि मे पूँजीवादी सभ्यता मे व्यक्ति की नहीं बल्कि पैसे की पूजा होती है। इस प्रकार जैनेन्द्र के साहित्य का अध्ययन करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि धनी वर्ग की झूठी और छली सभ्यता के प्रति उनके मन मे तनिक भी सम्मान नही है। उनका आदर्श मानव–मानव के सौहार्द मे ही पूर्ण होता है। उन्होने अपने

---

66 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 107

कथा साहित्य द्वारा समाज के इस दोष को दूर करते हुए प्रेममय भावो के प्रसार का प्रयत्न किया है।

अन्त मे, यह स्पष्ट है कि जैनेन्द्र साधन की शुद्धता के आधार पर प्राप्त होने वाले साध्य को ही स्वीकार करते है। वे रक्त क्रान्ति के द्वारा लायी जाने वाली समानता के पक्ष मे नही थे। उनकी दृष्टि मे इस प्रकार की समानता ऊपर से थोपी गयी होगी। इसलिए कभी न कभी उसकी प्रतिक्रिया की सम्भावना बनी ही रहेगी। इसलिए जैनेन्द्र परिस्थिति और समस्या को लेकर किये जाने वाले सुधार के पक्ष मे नही थे। जैनेन्द्र ने अर्थ को महत्वपूर्ण माना, किन्तु उनकी दृष्टि मे अर्थ ही साध्य नही हो सकता। इस प्रकार वे अर्थ और काम को मार्ग मात्र मानते हैं। उनके अनुसार धर्म पूर्वक उपार्जित अर्थ द्वारा अपना तथा अपने समाज का हित करते हुए मोक्ष की ओर उन्मुख होना ही मानव जीवन का लक्ष्य है।

अध्याय–4

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में दार्शनिक चेतना

अध्याय–4

जेने-- के कथा सा ़त्य में ·ार्शनिक चत- ।

कथा साहित्य और दार्शनिक चेतना:अन्तर्सम्बन्ध

कथा साहित्य का सृजन करने वाला साहित्यकार एक ओर तो कल्पना द्वारा बनाये गये विशाल भवन का कारीगर है तो दूसरी ओर विद्वान, चिन्तक, विचारक एव दार्शनिक है, लेकिन दर्शन परक चिन्तन एक दार्शनिक से अलग होता है। दार्शनिक जहॉ सत्यता को प्रकट करने के लिए शास्त्रीय मानदण्डो का प्रयोग करता है, साहित्यकार वही शास्त्रीय कसौटी से अलग अपने स्वानुभूत जीवन की अभिव्यक्ति का प्रयोग करता है। यह स्वानुभूत जीवन उसके कथा साहित्य का दर्शन बन जाता हैं, जिसे जीवन–दर्शन भी कहते हैं। इसी जीवन–दर्शन को दार्शनिक चेतना की सज्ञा से विभूतिषत किया जाता है। दर्शन को सवृद्धि प्रधान माना गया है। कथा साहित्य मे दर्शन की अभिव्यक्ति होती है। डॉ० भागीरथ मिश्र ने इस सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किए हैं कि–दर्शन काल्पनिक तथ्यो के आधार पर विश्व का रहस्य–उद्घाटन करने का प्रयत्न करता है।[1]

साहित्यकार और दार्शनिक दोनो मगलमयी भावना से प्रेरित होकर जीवन की व्याख्या करते हैं, जीवन की झॉकियॉ प्रस्तुत करते है तथा कथा साहित्य मे मानव के मन की समस्त धारणाऍ एव जीवन–दर्शन के सत्य स्वरूप का उल्लेख करते हैं। साहित्य जीवन की समीक्षा करता है तो दर्शन जीवन के चिरन्तन रूप का विश्लेषण।

1 डॉ० भगीरथ मिश्र – काव्य शास्त्र, पृष्ठ – 42

डॉ० उदय भानु सिह के इस विषय मे विचार द्रष्टव्य है–'दर्शन तथ्यो की सूची न प्रस्तुत करके उनके विहित और नियमित रूप मे तर्क सगत उपस्थापन करता है, उसी प्रकार काव्य अस्त–व्यस्त वैविध्यपूर्ण जीवन के तथ्यो का अनुकरण करके उनकी व्यवस्थित एव रमणीय अभिव्यजना करता है।[2] चिरन्तन शक्ति के प्रति जिज्ञासा साहित्य एव दर्शन दोनो का आधार है। भारतीय साहित्यकार एव दार्शनिक दोनो ही अपने–अपने ढग से सत्य के रहस्य का उद्‌घाटन करते हैं। दार्शनिक का यह चिन्तन बुद्धि परक होता है, परन्तु जब वह कथा साहित्य मे परिलक्षित होता है तो भावना परक हो जाता है, और भावना से जो सन्तुष्टि मिलती है, वही आनन्द है। दार्शनिक जीवन और जगत् के रहस्य का उद्‌घाटन करता है, साहित्यकार भी यही करता है, परन्तु दोनो की क्रियाये भिन्न–भिन्न है।

प्राचीन भारत मे दर्शन का विषय अपने आप मे स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर था। कौटिल्य का कथन है कि दर्शनशास्त्र अन्य सब विषयो के लिए प्रदीप का कार्य करता है। यह समस्त कार्यों का साधन और समस्त कर्मों का मार्ग दर्शन करता है।[3]

कथा साहित्य भाव–प्रधान और विचार–प्रधान दोनो प्रकार का होता है। दर्शन सृष्टि के विभिन्न रहस्यो का उद्‌घाट न करता है, उसी प्रकार कथा साहित्य मे साहित्यकार अन्तदृष्टि के माध्यम से जीवन के विविध रूपो की झॉकी प्रस्तुत करता है। जिस कथाकार की कृति मे इन दोनो का समन्वय होता है, उसकी रचना सर्वश्रेष्त्र मानी जाती है। सफल और श्रेष्ठ साहित्य मे आदर्श, कल्पना एवं जीवन दर्शन का समावेश होता है। कथा साहित्य के जगत् मे जैनेन्द्र कुमार जी इसी प्रकार के साहित्यकार हैं; जिनके कथा साहित्य मे तथाकथित विशेषताऍ सफल रूप मे समाविष्ट हुई है।

---

2 डॉ० उदयभानु सिह – तुलसी–दर्शन – मीमासा पृष्ठ – 26
3 डॉ० राधाकृष्णन – भारतीय दर्शन (प्रथम भाग) पृष्ठ – 19

जैनेन्द्र की दार्शनिक चेतना का स्वरूप

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य मे चित्रित दार्शनिक चेतना का स्वरूप जानने से पहले दार्शनिक क्या है, जान लेना अति आवश्यक है। जैनेन्द्र जी का सम्पूर्ण साहित्य उनकी अन्तश्चेतना का ही परिणाम है। जैनेन्द्र आस्थावादी साहित्यकार है। इनके साहित्य मे जो दार्शनिकता दृष्टिगत होती है, उसमे उनकी आस्था की हार्दिकता ही अन्तर्भूत है। उनके साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि साहित्य–सृजन के लिए उनका प्रमुख आदर्श सत्य के साथ साक्षात्कार करना रहा है। सत्य आत्मा मे है। दर्शन–शास्त्र का उद्देश्य सत्य के प्रति व्यक्ति की जिज्ञासा को शान्त करना है। जैनेन्द्र दार्शनिक होने के साथ ही साथ साहित्यकार भी है। स्पष्ट होता है कि वे लेखक होने के कारण ही दार्शनिक के रूप मे जाने जा सकते हैं। उनका समग्र साहित्य सत्य की खोज और उसकी अभिव्यक्ति का ही प्रतिफल है। जैनेन्द्र चाहे साहित्यकार हो अथवा दार्शनिक किन्तु उन सबसे परे वह एक विशिष्ट व्यक्ति हैं। उन्होने मानव–जीवन के शाश्वत सत्यो को उसके व्यवहारिक धरातल पर उतारने का प्रयास किया है। जीवन और जगत् के मिल जाने से उन्हे एक नितान्त मौलिक दृष्टि उपलब्ध हुई, वही उनका दर्शन है और दार्शनिक होने का सूचक है।

ईश्वर, ब्रह्म, जीव, जगत् के परस्पर सम्बन्ध तथा उनके रहस्य को समझने के लिए वे ससार से अलग नही गए बल्कि प्रतिदिन के जीवन मे ही उन्होने सत्य को खोज निकाला। अपनी आन्तरिक सहानुभूति और सवेदना से उन्होने गम्भीरता और जटिलता मे भी सरलता का समावेश किया है। जैनेन्द्र जी के प्रयास से साहित्य जगत में एक क्रान्तिकारी प्रभाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। उनकी समन्वयात्मक दृष्टि ने मानव को श्रद्धा और विश्वास का अपूर्व सम्बल प्रदान किया।

जैनेन्द्र के अनुसार मानव–जीवन के सर्वागीण विकास के लिए बुद्धि के साथ भावना का योग भी अनिवार्य है। भागवत व्यवहारिकता मे मानव–जीवन का प्रत्येक पहलू समाविष्ट हो जाता है। उन्होने विज्ञान और अध्यात्मवाद मे सामजस्य स्थापित करके जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न की है। यही से उनके जीवन दर्शन के–मूल तत्व–अभेद तत्त्व अथवा अद्वैतवाद का आरभ होता है। उन्होने जीवन के सत्य को ग्रहण कर उसे जीवन के विविध क्षेत्रो मे व्यक्त किया है। उनके अनुसार व्यक्ति का अह उसके जीवन का उद्गम स्थल है, जहा से उसके समस्त विचारो, भावो और कार्यों को दिशा–निर्देश प्राप्त होता है। उनके सम्पूर्ण साहित्य मे अह का विवेचन हुआ है। उनके अधिकाश उपन्यासो और कहानियो मे अह विसर्जन की समस्या मुख्य रूप से प्रकट हुई है।

जैनेन्द्र के जीवन–दर्शन का प्राणतत्व व्यक्ति के अह मे निहित है। उनके अनुसार अचेतन मे व्यवस्थित व्यक्ति की दमित वासना ही उनके कार्यों का प्रतिनिधित्व करती है। उनके अनुसार अह मूल प्रवृत्तियो का पुज है।[4] जैनेन्द्र जी ने स्पष्ट लिखा है कि मनुष्य के मर्मातिमर्म मे भागवत् पडी हुई है और जो अह के एक–एक पटल को भेदकर और चुका कर भागवत् भाव तक पहुँच पाता है, वह अशता से उठकर सर्वता को प्रकट करने लग जाता है।[5]

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे आत्मोत्सर्ग की भावना इतने व्यापक रूप मे अभिव्यक्त हुई कि जैनेन्द्र का साहित्य उनके आत्म–विसर्जन का एक मात्र साधन प्रतीत होने लगता है । 'रत्नप्रभा', 'गवार' और 'बाहुबली' आदि कहानियो के पात्र अपने अह से इतने प्रभावित हो जाते हैं कि वे 'स्व' को 'पर' मे खो देने के लिए प्रेरित हो जाते हैं

---

4 जैनेन्द्र कुमार – समय और हम, पृष्ठ–571

5 जैनेन्द्र कुमार – समय और हम पृष्ठ – 567

ताकि उनका जीवन निर्जीव हो जाये और उनमे सजीव होने की सम्भावना ही न रह जाये। जैनेन्द्र प्रकृति के क्रिया–कलापो मे एक भावना के दर्शन करते है। सूर्य के प्रकाश, वृक्ष की छाया, धरती की शरण मे मानव के सम्मुख जो आत्म समर्पण का भाव निहित है, उसे मानव–समझ नही पाता, इसलिए उसे अपना अकेलापन भारी लगने लगता है। इस भावना को समाप्त कर देने के लिए ही इनमे अह को मिटा देने की भावना जागृत हुई। उनके अनुसार अह–विसर्जन की भावना व्यक्ति के अकेलेपन से मुक्ति प्राप्त करने तथा समष्टि मे 'स्व' को समाहित कर देने की भावना से ही जुडी है।

जैनेन्द्र ने स्त्री–पुरुष दोनो को साहित्य मे व्यक्त किया है। स्त्री अपने स्त्रीत्व मे तथा पुरुष अपने पुरुषत्व मे नितान्त एकाकी तथा अपूर्ण है। स्त्री पुरुष मे अपने अभाव को खोजती है और पुरुष स्त्री मे अपना विकास पाता है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे यह भावना अर्द्धनारीश्वर के रूप मे अभिव्यक्त हुई है। 'फॉसी', 'एक रात', 'रानी महामाया', 'दिन–रात' मे स्त्री–पुरुष का अकेलापन उन्हे अलग कर देता है। वे अपने जीवन की व्यवस्था मे भी मन की बुझाने का रास्ता ढूँढती हैं।

इनके कथा साहित्य के अधिकाश पात्र अपने जीवन मे अधिक से अधिक कष्ट सहकर समाज की मंगलाकाक्षा मे लीन रहते है। 'त्यागपत्र' की मृणाल और 'कल्याणी' मे कल्याणी पीडा को सहकर ही स्वय को समाज के प्रति समर्पित करती है। वैसे जैनेन्द्र ने आत्मोत्सर्ग को जीवन का प्रधान लक्ष्य माना है, किन्तु उनके पात्रो के स्वाभिमान को कोई ठेस नही पहुँचती। उनके पात्र पीडा को तो सहते हैं, किन्तु अपने व्यक्तित्व पर ऑच नही आने देते। 'वह रानी' कहानी मे रानी दुर्भाग्य के थपेडे खाती हुई कहॉ से कहॉ पहुँच जाती है, किन्तु अपमानित होकर अपने प्रेमी की सहानुभूति नही ग्रहण कर सकती।

'त्यागपत्र' की मृणाल भी कम स्वाभिमानी नही है। वह जज की बुआ होने के कारण सुख से जीवन व्यतीत कर सकती थी, किन्तु वह समाज की दृष्टि मे कॉटा बनकर अपने आत्माभिमान को खण्डित नही करना चाहती।

जैनेन्द्र ने अह–विसर्जन के द्वारा जीवन के अति उपेक्षणीय विषय पर विशेष रूप मे अपने विचारो को व्यक्त किया है। स्त्री–पुरुष के परस्पर आकर्षण के मूल मे उनकी आत्म–विसर्जन की भावना ही विद्यमान है। जैनेन्द्र सर्वप्रथम कथाकार है जिन्होने स्त्री–पुरुष के प्राकृतिक सम्बन्ध पर विशेष विवेचन किया है। जैनेन्द्र ने स्त्री को उसकी निर्वैयक्तिकता और गुणहीनता मे ही समझा है। इन्होने स्त्री–पुरुष के निर्वैयक्तिक रूप की अस्पष्टता को दूर करने के लिए इन्हे विभिन्न सामाजिक एव परिवारिक सम्बन्धो मे प्रस्तुत किया। 'सुनीता' मे जैनेन्द्र जी की यह भावना परिलक्षित हुई है–'तुम शायद स्त्री होने को इसी तरह जानते हो, जैसे पदार्थ के होने को। स्त्री को स्त्री की सज्ञा देकर पुरुष को न छुटकारा है न होगा। उसे कुछ न कुछ और भी कहना होगा । माता कहो, बहिन कहो, पत्नी कहो, प्रेमिका कहो कुछ न कुछ अपनापन जतलाए बिना 'स्त्री सज्ञा का प्रयोग करके उस स्त्री'–द्रव्य से छुट्टी तुमको नही मिलेगी।'[6] जैनेन्द्र काम को पाप नही समझते। काम और योग मे सृष्टि की कामना निहित है। जैनेन्द्र के पुरुष पात्र अपने अह को अलग करने के लिए स्त्री के प्रति स्नेह मार्जित कर रहे हैं। अतएव सभोग मे व्यक्ति की अहता की हार है। उनके अनुसार पूर्ण समर्पण एकमात्र ईश्वर के प्रति ही सम्भव हो सकता है। अत स्त्री–पुरुष के सम्मिलन–भाव को भूलकर अद्वैत अथवा अखण्डता की प्राप्ति द्वारा ही काम मे मोक्ष तथा भोग मे योग की कल्पना की जा सकती है।

---

6 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 15

आत्म–समर्पण की भावना से सम्बन्धित होकर ही वे काम, प्रेम, भोग आदि भावो को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके है। जैनेन्द्र ने कहा है कि हमने प्रेम को खानो मे बॉट दिया है और शरीर जहॉ उपस्थित है वहॉ अपवित्र और अनुपस्थित है वहॉ पवित्रता की भावना को विठा दिया है। मै मानता हूँ कि जो अधूरा है वह तृष्णार्थ है।[7] 'एकरात कहानी' तथा 'सुनीता' उपन्यास मे उसकी समर्पण भावना निहित है।

जैनेन्द्र ने पशु–पक्षी तथा जड प्रकृति के क्रिया कलापो मे अन्तर्निहित प्रेम की अभिव्यक्ति की है। पशु–पक्षी मे उन्होने मानवीय सवेदनाओ को प्रतिष्ठित करके प्रेम का उच्चादर्श व्यक्त किया है। 'एक गौ' तथा 'दो चिडियॉ' कहानियो मे सात्विक तथा रोमान्टिक प्रेम की अत्यधिक मार्मिक अभिव्यक्ति है।

जैनेन्द्र जी के अनुसार जीवन सघर्ष–पूर्ण है। ससार रणभूमि है। मनुष्य अपने भाग्य और परिस्थिति से जूझता हुआ अपनी जीवन–यात्रा को पूर्ण बनाने का प्रयास करता है। उन्होने अपने शब्दो मे कहा है–'जीवन एक सहादत है। शास्त्र कहते है कि यज्ञ है।[8] 'कल्याणी', 'जयवर्धन' आदि उपन्यासों मे जीवन के यज्ञ मे स्वय को हुताहन बना देना ही उनका लक्ष्य है।[9] उनके अनुसार जीवन की सार्थकता उससे चिपटे रहने मे ही नही है।[10] उनके अनुसार महान लोग मृत्यु से नही घबराते है और प्रसन्नता से मौत को गले लगा लेते हैं। 'फॉसी' मे शमशेर अपनी मौत द्वारा जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करता है। वह मृत्यु को प्रधानता न देकर यह मानता है कि जीवन के लिए कभी–कभी मृत्यु का आलिगन श्रेयस्कर होता है। जैनेन्द्र मौत मे जीवन को समाप्त नही मानते, क्योकि जीवन तो अनन्त यात्रा है।

---

7 जैनेन्द्र कुमार – काम प्रेम और परिवार पृष्ठ – 33
8 जैनन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ – 110
9 जीवन ही जलना है। वह है यज्ञ मे उससे बचना क्यों चाहे – जैनेन्द्र कुमार
10 जैनन्द्र कुमार – विवर्त पृष्ठ – 126

जैनेन्द्र के अनुसार जिनके मार्ग मे कठिनाइयॉ आती ही नही हैं, सब सुगमता ही सुगमता रहती है, वे जीवन में बहुत दूर तक और ऊँचे तक नही जा पाते। देखा जाता है कि कठिनाई और अवरोधो ने ही अमुक जीवन के मार्ग को दिशा और स्वरूप दिया।[11]

जैनेन्द्र जीवन की परिवर्तनशीलता मे ही विश्वास करते है। पराजित होकर जडबद्ध हो जाना तथा प्रगति को रोकना वे उचित नही मानते। उनके अनुसार परिवर्तन जीवन का नियम है, जीवन प्रेम है और प्रेम का भी नियम परिवर्तन है।[12] 'कल्याणी' मे एक स्थान पर जैनेन्द्र ने जीवन की गतिशीलता पर कहा है 'रुकना नाम जिन्दगी का नही है, जिन्दगी का नाम चलने का है।'[13] जीवन मे सुख–दुख, उतार–चढाव आते रहते हैं किन्तु जीवन निरन्तर अपनी गति से चलता रहता है । खिन्न होकर रुक जाना जीवन का आदर्श नही है। जैनेन्द्र ने व्यापक रूप मे अपने विचार व्यक्त किए है कि मानव चलता जाता है। 'त्यागपत्र' मे अपने विचार व्यक्त किए हैं कि–'मानव चलता जाता है और बूँद–बूँद दर्द उसके भीतर इकठ्ठा होकर मरता जाता है। वही सार है, वही जमा हुआ दर्द मानव की मानस मणि है, उसके प्रकाश मे मानव व्यक्ति–पथ उज्ज्वल होगा।[14] उनके सम्पूर्ण साहित्य का आधार है–व्यथा । व्यथा के रस से पूरित होकर ही उनके पात्र अपनी जीवन यात्रा सम्पन्न करते हैं।

नियतिवादी ·।श।निक चेतना

जैनेन्द्र ने अपने जीवन की लम्बी अवधि मे नियति की हिलकोरो मे बहते हुए, सघर्षो से जूझते हुए संसार के विविध अनुभवो द्वारा जो

---

11 प्रभाकर माचवे – जैनेन्द्र के विचार पृष्ठ – 82
12 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त पृष्ठ – 70
13. जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ – 5
14 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ – 45

जीवन–सत्य प्राप्त किया, उसे उन्होने एक विद्वान साहित्यकार की भॉति अपने साहित्य मे व्यक्त किया। जैनेन्द्र जी नियतिवादी दर्शन से प्रभावित थे। नियतिवादी विचारको के अनुसार यदि व्यक्ति के जीवन के भूत और वर्तमान को ज्ञात कर लिया जाये तो उसके भविष्य के सम्बन्ध मे निर्णय दिया जा सकता है। व्यक्ति के चरित्र की समस्त जानकारी कर लेने पर उसके आचरण के बारे मे कहा जा सकता है। नियतिवादी विचारक व्यक्ति के आचरण और प्रकृति को एक नियम द्वारा ही चलाते है।

जैनेन्द्र के विचारो और नियतिवादी दार्शनिको मे प्रमुख भेद यह है कि जैनेन्द्र के पात्रो की सम्भावनाएँ नियति के कारण विनष्ट नही होती। उनके साहित्य की सर्वप्रथम विशेषता यही है कि वे पात्रो को भाग्य के सहारे छोड देते हैं और भविष्य के सम्बन्ध मे, व्यक्ति के चरित्र के सम्बन्ध मे कोई भविष्यवाणी नही करते। नियतिवादी भविष्य की घोषणा कर देते है, किन्तु जैनेन्द्र जी के अनुसार भविष्य मे क्या होने वाला है–यह कोई नही जानता। उनके अनुसार ब्रह्म सर्वव्याप्त है और वही भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञाता है। इस प्रकार उनके पात्र भाग्यवादी होते हुए भी अपने जीवन की सम्भावनाओ का शोषण नही करते।

आस्थामूलक भाग्यवादिता

जैनेन्द्र जी आस्तिक, विचारक और लेखक हैं। उनके साहित्य मे अटूट ईश्वरीय आस्था का परिचय मिलता है। मनुष्य का निर्माण करने वाला ईश्वर है। ईश्वर से ही मनुष्य परिचालित होता है। उनके अनुसार जीवन के सम्बन्ध मे व्यक्ति का समस्त मन्तव्य समुद्र के तट पर कौडियो से खेलने वाले बालको के निर्णय की भॉति है। फिर भी बालको को मस्तिष्क मिल गया है। वे दोनो निष्क्रिय होकर तो रहते

नही। इसी से जो जानने के लिए नही है, उसे जानने की चेष्टा चली है।[15] उनकी दृष्टि मे मनुष्य निर्जीव, जड और यत्र नही है । उसमे विवेक, बुद्धि, तथा पुरुषार्थ है। अतएव ईश्वर मनुष्य की गति को रोकता नही है बल्कि उन्नति प्रदान करता है। उनके साहित्य मे पात्रो की ईश्वर पर दृढ आस्था है। उनकी दृष्टि मे सब कुछ करने वाला ईश्वर ही है। ईश्वर की महान शक्ति के समक्ष मनुष्य बहुत ही तुच्छ है। अतएव जैनेन्द्र के पात्र अत्यधिक भाग्यवादी हो गए है । उनके जीवन मे सुख–दुख और उतार–चढाव भाग्य की परिधि मे ही सम्भव हुआ है।

जैनेन्द्र के साहित्य मे जगह–जगह भाग्य अथवा ईश्वर की पुकार से ऐसा प्रतीत होता है कि जैनेन्द्र के पात्रो को भाग्य का ही सहारा है और कही–कही तो ऐसा आभास होने लगता है कि अतिशय भाग्यवादिता कही पात्रो के जीवन मे निष्क्रियता न उत्पन्न कर दे। उनकी कुछ कहानियो मे बार–बार ईश्वर के नाम की पुनरावृत्ति हुई है। 'राजीव और भाभी' मे दो–चार बार विधाता के समक्ष व्यक्ति की विवशता का उल्लेख किया गया है। जैनेन्द्र ने स्पष्ट कहा है कि 'जब राजीव ने मोटर की बात मन मे पक्की कर ली, तब सब प्रपचों के रचयिता बाबा विरचि ऊपर बैठे–बैठे मुस्काराए होगे, कहते होगे– देखो लडके की बात – अरे हम फिर कुछ ठहरे ही नही। जो ये दुनिया के छोकरे हमें बिन बूझे ही सब करने लगेगे तो हो लिया काम।'[16] वही से भाग्य देव भी पलट कर बरस पडने लगे।[17] जीवन मे भाग्य का सहारा तो लिया ही जाता है, परन्तु छोटी–छोटी बातो पर बिधाता का अनुसरण करना उचित नही प्रतीत होता। उनके साहित्य मे किसी प्रमुख परिस्थिति में ही विधाता का सहारा लेकर व्यक्ति की विवशता

---

15 जेनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 18
16 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 31
17 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ (राजीव और भाभी) पृष्ठ – 32

को स्पष्ट किया गया है। 'कल्याणी' मे कल्याणी किसी के घर जाने मे अपनी इच्छा पर विश्वास नही करती और कहती है—'अच्छा! भाग्य होगा तो क्यो न आऊँगी।'[18]

जैनेन्द्र ईश्वर को सर्वप्रथम मानते है। अगर ईश्वर की इच्छा न हो तो व्यक्ति कुछ भी नही कर सकता। ईश्वर की आस्था मे व्यक्ति के अह का विगलन हो जाता है । अह का भाव व्रत को सर्वप्रथम प्रमाणित करता है। व्यक्ति तो केवल माध्यम है। किन्तु कर्म का फल भाग्य पर ही आधारित होता है। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तो व्यक्ति कर्म करता जाता है, परन्तु निराश नही होता, क्योकि वह वर्तमान तक ही सीमित है, भविष्य मे उसकी कोई भी पहुँच नही है।

जैनेन्द्र के अनुसार भाग्य का लेखा ससार मे व्यवस्था स्थापित करने का साधन है। जैनेन्द्र ने अपने शब्दो मे व्यक्त किया है कि 'भाग्य का तर्क यदि कठोर है तो ऐसा अकारण नही है। × × × × × यहाँ जो जैसा करता है वैसा ही भरता है।[19] ईश्वर पक्षपात नही करता, उसके लिए ससार मे सब लोग बराबर हैं, न कोई छोटा है न कोई बडा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगता है। भाग्य व्यक्ति के सचित कर्मों का ही अभिव्यक्त रूप है। भाग्य व्यक्ति के पूर्व जन्मो के कर्मों से बनता है । इसलिए यह नही कहा जा सकता कि भाग्य कोरी भावना का प्रतीक है।

जैनेन्द्र के जीवन और साहित्य का प्रमुख आदर्श ईश्वरोन्मुख है। उनकी दृष्टि मे भाग्य पर रहने वाला व्यक्ति कर्म की अवहेलना नही करता। कर्म करना तो उसका कर्तव्य है, किन्तु फल की प्राप्ति न होने पर वह ईश्वर को दोषी नही ठहराता, बल्कि दुख मे भी सुख की प्राप्ति का अनुभव करता है। जैनेन्द्र जी की रचनाओ के पात्र भाग्य के

---

18 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 79
19 जैनेन्द्र कुमार – वह रानी पृष्ठ – 47

चक्र पर क्रोधित नही होते और न ही भाग्य से विद्रोह करना उचित समझते है। 'त्यागपत्र' मे प्रमोद अपनी बुआ की स्थिति पर बहुत दुखी होता है, किन्तु बुआ को उस राह से मोड नही पाता। वह जानता है कि ईश्वर जो कुछ करता है, सोच–समझकर कर ही करता है। ईश्वर की इच्छा के विरूद्ध व्यक्ति कार्य करता है तो वह आत्मा के सन्तोष से भी पराजित हो जाता है। इसलिए वह कहता है कि 'जो कुछ हुआ ठीक हुआ, ठीक इसलिए कि उसे अब किसी भी उपाय से बदला नही जा सकता।' जैनेन्द्र भाग्य और दु ख के मध्य व्यक्ति की पारस्परिकता के हेतु बहुत सतर्क रहे हैं। जैनेन्द्र के अनुसार व्यक्ति स्नेह के आदान–प्रदान के द्वारा अतिशय पीडा को झेलता हुआ भी स्वर्ग का अधिकारी होता है। अतएव भाग्य मे जो होना है, उसे टाला तो नही जा सकता। होनी होकर रहती है और उसको टालना व्यक्ति के द्वारा सम्भव नही है बल्कि उसका परिवर्तन ईश्वर द्वारा ही सम्भव है। जैनेन्द्र ने 'त्यागपत्र' मे स्पष्ट शब्दो मे लिखा है– 'स्नेह – क्या वह स्वय मे इतना पवित्र नही है कि स्वर्ग के द्वार उसके लिए खुल जाएँ।'[20]

'विवर्त' मे भी भुवनमोहिनी रेल–दुर्घटना के लिए जितेन को दोष नही देती । उसका विश्वास है कि 'होता होनहार है और सब काल कराता है।[21] मोहिनी जितेन को समझाती हुई कहती है–'जो हुआ हो गया। होनहर कब टला है।'[22] 'सुखदा' मे सुखदा अपने पति को किसी कार्य के लिए दोष नही देती और कहती है–'उन्होने कुछ नही किया। सब भाग्य के आधीन हुआ है।'[23]

---

20 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–46
21 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 29
22 वहीं पृष्ठ – 30
23 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 204

जैनेन्द्र के कथासाहित्य मे व्यक्ति का समस्त सोच–विचार व्यर्थ ही है। अतएव जैनेन्द्र के पात्र जीवन से जटिल परिस्थितियो मे निराश होकर समाप्त नही होते, बल्कि स्नेह और प्रेम के द्वारा ही वह जीवन का विकास करने मे समर्थ होते है।

निष्काम कर्मयोग

जैनेन्द्र के विचारो पर गीता के निष्काम कर्मयोग का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'गीता' मे अर्जुन को कर्मशीलता का उपदेश देते हुए कृष्ण ने कहा कि 'जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा मे अर्पण करके आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है, वह पुरुष जल मे कमल के पत्ते के सदृश पाप से लिप्त नही होता।'[24] जैनेन्द्र जी के अनुसार विधाता ही सर्वोपरि है। जैनेन्द्र ने बार–बार अपने साहित्य मे इस सत्य की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित किया है कि 'मैं नही हूँ × × × × × क्योकि शून्य है × × × × × मै कुछ नही हूँ–यह अनुभूति ही मेरा सब कुछ है।'[25] उनके अनुसार इस प्रकार की भावना मनुष्य को कर्म से विचलित नही करती, बल्कि उसे कर्तव्य के अहकार से अलग करती है। अतएव जैनेन्द्र की दृष्टि मे भाग्य का निर्णय मनुष्य की प्रगति मे बाधा नही उत्पन्न करता, बल्कि उन्नति की ओर ले जाने का प्रयास करता है।

जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य मे पुरुषार्थ को भी प्रश्रय दिया है। भगवान को ही एक मात्र सत्य मानने के कारण जैनेन्द्र के पात्रो मे मनुष्य के अह भाव के दर्शन नही होते। उनके कर्म सम्बन्धी विचारो पर गीता की निष्काम–कर्म–साधना तथा कर्म–अकर्म की भावना परिलक्षित होती है। जैनेन्द्र के अनुसार 'कर्म' में 'अकर्म' की भावना

---

24 'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सगत्यक्त्वा करोति य'। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।–श्रीमद्भगवद्गीता–5/10

25 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ (तृतीय भाग) पृष्ठ – 126

व्यक्ति को व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख करती है तथा व्यक्ति स्वार्थ को भूलकर परमार्थ हेतु अपना जीवन अर्पित करता है। उनकी दृष्टि मे मनुष्य का कर्मशील होना ही आवश्यक बात नही है, कर्मशीलता के साथ ही उसमे कर्म के प्रति अनासक्ति होना भी आवश्यक है। 'जयवर्धन' मे जैनेन्द्र ने एक स्थान पर 'अकर्म' की आवश्यकता पर अपना दृष्टिकोण बताया है– 'कर्म ठीक है, किन्तु वह अकर्म के साथ ही ठीक है, नही तो बचाव और भरमाव होगा।'[26]

पुनर्जन्म, मृत्यु और अमरत्व

जैनेन्द्र पुनर्जन्म को भी अपने कथा साहित्य मे स्वीकार करते है। वे यह स्वीकार करते है कि मनुष्य मृत्यु के बाद नवीन जन्म को प्राप्त करता है। जैनेन्द्र ने 'कल्याणी', 'रूकिया बुढिया' तथा 'मौत की कहानी' आदि मे जगह–जगह पुनर्जन्म का उल्लेख किया है। वे कर्म की सापेक्षता से पुनर्जन्म को मानते है। इनके अनुसार जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म– यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। ससार कर्म और भाग्य की आस्था पर चलता है। जीवन मे सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा पुनर्जन्म के सचित कर्मों अर्थात् भाग्य के द्वारा ही उपलब्ध होती है।

जैनेन्द्र के पुनर्जन्म सम्बन्धी विचार मौलिक प्रतीत होते हैं। 'सुखदा' उपन्यास मे जैनेन्द्र ने लिखा है कि 'मरने के पहले जो होता है उसे जीना कहते हैं। × × × × × हम तुम नही जीते, जीता खुद जीवन है, वह इतिहास मे जीता है । वह मेरा तुम्हारा नही है, मुझसे तुमसे नही है, बल्कि हम उससे हैं। वह है, हम नहीं है।'[27] उनके अनुसार व्यक्ति को पूर्वजन्म की स्मृति नही रहती। वह यह

---

26. जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 12
27 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा पृष्ठ – 171

स्वीकार करते है कि पूर्वजन्म की स्मृति होने पर मनुष्य का वर्तमान जीवन बहुत दुखपूर्ण हो जायेगा। सत्य को सफल करने के लिए क्या एक ही घटना उपयोगी है। सब कुछ क्या सत्य को ही नही सफल कर रहा है। 'रूकिया बुढिया' कहानी मे उन्होने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है कि भारतीय दर्शन मे पुनर्जन्म की परम्परा स्वीकार की गई है। आधुनिक युग मे ऐसी अनेक घटनाएँ घटती है, जिससे पुनर्जन्म की सत्यता का प्रमाण मिलता है, किन्तु जैनेन्द्र दो–तीन घटनाओ को सत्य की सिद्धि के लिए उपयुक्त नही मानते। उनकी दृष्टि मे जो कुछ है, सब सत्य है, सत्य मे घुल–मिल गया है।

जैनेन्द्र यह स्वीकार करते हैं कि इस जीवन के बाद क्या होगा–यह कोई नही जानता। वर्तमान मे तो व्यक्ति यही सोचता है कि जो जैसा करेगा उसे उसका वैसा फल अवश्य मिलेगा।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे मृत्यु–सम्बन्धी धारणाओ मे उनके गहन चिन्तन की छाप है । जीवन और मृत्यु के रहस्य को उद्घाटित करते हुए जैनेन्द्र ने व्यवहारिक जीवन मे व्यक्ति की मृत्यु–सम्बन्धी धारणाओ को अपनी रचनाओ द्वारा व्यक्त किया है । उन्होने अपने साहित्य मे कई घटनाओ को प्रस्तुत किया है, जबकि परिवार मे कई सदस्य एक के बाद एक मौत को प्राप्त होते हैं। जहाँ मौत का दारुण दृश्य देखकर यह मानना पडता है कि मृत्यु अकाट्य सत्य है। ससार मिथ्या है। जैनेन्द्र ने 'अनन्तर' मे सत्यता के विषय मे बतलाया है कि 'मौत एक द्वार मात्र है, केवल ईश्वर सत्य है। एक चला जाता है और दूसरा जाने के लिए तत्पर है, किन्तु मनुष्य का कर्म हमेशा जीवित है और लोगो को तो मृत्यु पाना ही है। अतएव एक मात्र वही सत्य है और वह सत्य है– ईश्वर।'

उनके अनुसार मृत्यु जीवन का अनिवार्य सत्य है। उसकी कल्पना से जीवन को बहुत शान्ति मिलती है। 'इतस्तत' में जैनेन्द्र ने

कहा है कि 'मैं मृत्यु का कायल हूँ। जीवन से अधिक उसका कायल हूँ। वह परमेश्वर का वरदान है। मै मृत्यु को समाप्त करना नही चाहता हूँ। उसके बिना जीवन असत्य हो जायेगा।'[28] जैनेन्द्र ने 'मौत की कहानी' मे अपने विचारो को व्यक्त करते हुए बताया है कि 'मौत का सिलसिला बन्द हो जायेगा तो जन्म का सिलसिला भी रोक देना पडेगा, नही तो धरती पर ऐसी किचमिच मचेगी कि सॉस लेने को भी जगह न रहेगी।'[29] गरीबी और अमीरी का भेद भी मौत मे समाप्त हो जाता है। जैनेन्द्र ने जीवन मे केवल एक मात्र प्रेम और स्नेह को ही महत्व प्रदान किया है, क्योकि वे स्वीकार करते है कि मौत के पश्चात् कुछ भी शेष नही रहता, केवल प्रेम और स्नेह की स्मृति ही सदैव अपना स्थान बनाए रखती है। स्मृति के सहारे मनुष्य मर कर भी अमर रहता है। 'विवर्त' मे जैनेन्द्र ने इस सत्य पर प्रकाश डाला है कि 'यो हम कब एक दूसरे के हैं, कोई केवल अपना नही है, लेकिन क्षण आते है कि हम आपस के रह ही नही पाते, कही किसी ऊपर के हो जाते हैं। तब मालूम होता है कि आपसीपन खिसक कर ओढे कपडे के मानिन्द हमसे नीचे उतर गया है। हम किसी के भी नही रहे, अपने भी नहीं रहे, माने सिर्फ नही के हो गए है। क्या यही कृत–कृत्यता है? कि यह मृत्यु है।'[30]

जैनेन्द्र कुमार मृत्यु को सार्थक बनाना चाहते है। व्यक्ति मृत्यु की चेतना द्वारा स्व केन्द्रित होकर अधिक सुख–भोग का प्रयत्न करता है तो मृत्यु उसके लिए कष्ट दायक सिद्ध होती है। उनके अनुसार जब मनुष्य निर्भीक होकर कर्म करते है, तो मृत्यु का भय उनके लिए बाधक नही सिद्ध होता है। वे व्यक्ति मृत्यु के आने पर प्रसन्नता के साथ मौत को गले लगा लेते हैं। 'मौत की कहानी' मे उन्होने कहा है

---

28 जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत, पृष्ठ – 113
29 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 68
30 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 217

कि जीवन का कुछ अर्थ ही नही अगर मौत उसके आगे फुल स्टाप की तरह बैठ जाय। इसलिए मृत्यु स्थायी वस्तु नही है।'[31] उनके अनुसार मौत के माध्यम से ही व्यक्ति को रास्ता मिलता है।

'दर्शन की राह' और 'तौलिए' कहानियो मे जैनेन्द्र जी ने मृत्यु के सत्य को उद्घाटित किया है। जैनेन्द्र जी के अनुसार मरना जीवन को राह देता है। हम कही बन गये होते है, काम आ चुके होते हैं।[32] ससार मे कुछ समय व्यतीत करने के बाद मृत्यु अनिवार्य होती है। इस प्रकार जैनेन्द्र ने स्पष्ट कर दिया है कि मृत्यु अनिवार्य है।

जैनेन्द्र के अनुसार शहीद होने वाले मनुष्यो को मौत की कोई चिन्ता नही रहती। वह कर्तव्य मे लीन रहते हैं। उनके कथा साहित्य मे जीवन की बलि देने वाले पात्र प्रसन्नता से मृत्यु का आलिंगन करते है, किन्तु मौत के लिए जिज्ञासु नही होते। 'फॉसी' कहानी मे शमशेर मौत से नही बचता, किन्तु जब मौत के माध्यम से ही परमार्थ सम्भव है तो वह उसकी उपेक्षा भी नही करता और कहता है कि 'मेरी मौत मे दुनिया की अर्थसिद्धि है, मेरी भी परमार्थसिद्धि है। विश्व का अर्थ सिद्ध करने वाले व्यक्ति की मौत आती है। परमात्मा उसे भेजता है। व्यक्ति क्यो न उसे साथ ले और आगे बढे।'[33] यही जैनेन्द्र के कथा साहित्य का अभीष्ट है। 'कहानी की कहानी' मे लेखक ने गॉधी जी की मृत्यु द्वारा उनकी अमरता की ओर इगित किया है।[34]

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे पात्रो के मन मे मृत्यु का भय नही रहता है। जैनेन्द्र के अनुसार 'मौत कैसी होती है, कोई नही जान सकता।'[35] 'मौत की कहानी' मे लेखक ने यम का बहुत ही डरावना

---

31 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ पृष्ठ – 69

32 जेसे एक दिन होकर और कुछ दिन रहकर हम बिसर जाते हैं कि यह होना रहना काल का ही खल था उस खेल के लिए हमारा न होना सगत हो गया है। (जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत पृष्ठ 109)

33 जैनेन्द्र कुमार – प्रतिनिधि कहानियाँ, पृष्ठ – 24

34 जैनेन्द्र कुमार – ज्ञैनेन्द्र की कहानियाँ भाग–8 पृष्ठ–52

35 जैनेन्द्र कुमार – मौत की कहानी, पृष्ठ – 68

चित्र प्रस्तुत किया है– 'यम नाम का देव है, सचमुच बडा डरावना है। वास्तव मे वह किसी अस्त्र–शस्त्र से आदमी को नही मारता, दरअसल वह मारता ही नही, आदमी उसे देखकर डर के मारे स्वय ही मर जाता है।'[36] 'पत्नी' शीर्षक कहानी मे भी लेखक ने मृत्यु के भय को बताया है कि 'हर व्यक्ति इस कल्पना से भयभीत होता है, और यह जानता है कि एक–न–एक दिन उसको मरना अवश्य है।' जैनेन्द्र ने इस कहानी मे लिखा है कि 'यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है– उसको मरना है–उसके पति को मरना है, पर उस तरफ भूल से छत पर देखती है तो भय से मर जाती है।'[37]

मौत से बचने वाला मनुष्य जीवन से सदैव चिपटा रहता है। 'जयवर्धन' उपन्यास मे लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि 'मौत को सतत् भीतर लेकर जीना असल जीना है। यह जीना मरकर होता है।'[38] जैनेन्द्र के साहित्य का आदर्श त्याग और परमार्थ के रूप मे ही घटित होता है।

जैनेन्द्र के विचारो मे दार्शनिकता का भाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। जैनेन्द्र ने जन्म–मृत्यु के आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक पहलू को बहुत व्यापक रूप से विवेचित किया है। उनके साहित्य मे ईश्वरीय आस्था पर भी बल दिया गया है। जैनेन्द्र इस सत्य से अवगत हैं कि मृत्यु के आने पर व्यक्ति का सर्वस्व यही रह जायेगा[39] और वह भी अपनी मजिल पर पहुँच जायेगा। जीवन के सारे रिश्ते–नाते तथा समस्त सम्पदा मौत के आने पर व्यर्थ हो जायेगे।

इस प्रकर यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनेन्द्र की नियतिवादी दार्शनिक चेतना मे एक ओर भाग्यवाद है और दूसरी ओर कर्मवाद है।

---

36 जैनेन्द्र कुमार – मोत की कहानी पृष्ठ – 68
37 जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ पृष्ठ – 70
38 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन पृष्ठ – 11
39 एक दिन मौत आयेगी और सब कुछ रह जाएगा – जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियाँ, पृष्ठ – 167

जैनेन्द्र ने भाग्य, कर्म तथा जीवन–मृत्यु के सम्बन्ध मे अपने मौलिक विचारो का प्रतिपादन किया है। उनके पात्र अतिशय भाग्यवादी है। उनकी परम आस्तिकता उन्हे किसी भी समय भाग्य के घेरे से अलग नही करती। जैनेन्द्र ने कर्म परम्परा को पूर्व जन्म अथवा पुनर्जन्म की श्रृखला से नही जोडा है। उनके अनुसार पुनर्जन्म तो होता है–यह बात सत्य है किन्तु यह कोई नही जानता कि पुनर्जन्म का पूर्व जन्म के कर्मों से सम्बन्ध होता ही है। उनकी दृष्टि मे पुनर्जन्म की सत्यता केवल व्यक्ति के बार–बार जन्म होने मे ही है। जैनेन्द्र के अनुसार मनुष्य के कर्म मृत्यु के पश्चात् उसके साथ नही जाते, वरन् यही व्याप्त हो जाते है। उनके अनुसार मृत्यु से जीवन की समाप्ति नही होती।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैनेन्द्र जी की दार्शनिक चेतना अत्यन्त उच्चकोटि की और महत्वपूर्ण है। दार्शनिक चेतना के परिणामस्वरूप उनकी कृतियो मे नारी–पुरुष सम्बन्धो, अन्त बाह्य परिवेशो तथा प्रेम और विवाह आदि सभी विचारधाराओ का समावेश हुआ है। जैनेन्द्र जी ने दार्शनिक चेतना के अन्तर्गत शाश्वत् सत्यो–ईश्वर, जन्म–मृत्यु, मोक्ष आदि के सम्बन्ध मे आत्मानुभूत सत्य का प्रकटीकरण किया है। उनकी दृष्टि मे ईश्वर सत्य ही नही वरन् वही एक मात्र सत्य है। जैनेन्द्र जी की ईश्वरीय आस्था उनके समस्त कथा साहित्य मे श्रद्धा और आत्म–विश्वास तथा भाग्य–निर्माता के रूप मे लक्षित होती है। उनकी दृष्टि मे मोक्ष जगत् से मुक्ति नही है वरन् अह से मुक्ति है। वस्तुत ससार मे रहकर भी व्यक्ति मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

अध्याय –5

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक चेतना

अध्याय–5

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक चेतना

कथा साहित्य और मनोविज्ञान : अन्तसम्बन्ध

आधुनिक युग मे मनोविज्ञान का साहित्य के विभिन्न अग–प्रत्यगो मे समावेश हो गया है। विशेष रूप से कथा साहित्य मे तो मनोविज्ञान के सिद्धान्तो, दर्शनो तथा उसके निष्कर्षों तक को भी ग्रहण किया गया है। अत हिन्दी मे मनोवैज्ञानिक उपन्यासो तथा कहानियो की एक लम्बी श्रृखला है जिनमे मनोविज्ञान के निष्कर्षों को आधार बनाकर कथानको तथा चरित्रो का विकास प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मे मनोवैज्ञानिक उपन्यासो तथा कहानियो का अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

मनोवैज्ञानिक दर्शन का मूल सिद्धान्त यह है कि मनुष्य की समस्यायें ज्यो की त्यो रहती हैं, परिवर्तन केवल रूप मे होता है, क्योकि मनुष्य मात्र मे आदिम प्रवृत्तियॉ जैसे–घृणा, काम, अह आदि आज भी उसी रूप मे बने हुए हैं, जिस रूप मे यह सृष्टि के आदि मे थे। इन प्रवृत्तियो से ही मनुष्य का जीवन परिचालित होता है। तात्पर्य यह है कि बाह्य समस्याओ के प्रति मनोवैज्ञानिको की ही तरह अनेक मनोवैज्ञानिक कथाकार उपेक्षा भाव रखते है। बाह्य परिस्थितियॉ उन्हे गतिशील नही दिखाई पडती, क्योंकि उनका निदर्शन करने वाली शक्तियॉ ,सहज वृत्तियॉ स्थिर हैं। इसीलिए मनोवैज्ञानिक कथाकार राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था तथा सस्कृति किसी को भी महत्व नही

देता, लेकिन इसका अभिप्राय यह नही है कि राजनीति, समाज, अर्थ व्यवस्था तथा सस्कृति से निर्मित युग तथा वातावरण का चित्रण न करके यह मनोवैज्ञानिक कथाकार किसी अन्य लोक तथा वातावरण का चित्रण करता है। इस प्रकार उनकी कृतियो मे इन तत्वो की सम्पृक्ति की अनिवार्यता होती है, लेकिन इन तत्वो को अन्य कथाकारो की तुलना मे कुछ भिन्न ढग से ग्रहण किया जाता है। अन्तर्मन की स्थितियो का उद्घाटन करने के लिए ही मनोवैज्ञानिक कथाकार बाह्य सृष्टि के व्यापारो का चित्रण करता है। इसमे अगर किसी लेखक के मन मे कोई राजनैतिक आग्रह होता है तथा वह देश या समाज के प्रति कर्तव्य भावना से प्रेरित होता है तो उसके चिन्तन का केन्द्र भी सामाजिक शक्तियॉ न होकर व्यक्ति ही होता है।

तात्पर्य यह है कि मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य का विवेच्य विषय व्यक्ति तथा उसकी मानसिक गतिविधियॉ होती है। राजनैतिक, सामाजिक और सास्कृतिक गतिविधियो को वह इस दृष्टि से देखता है कि उसने व्यक्ति का निर्माण किन रूपो मे किया है, क्योकि यह प्रामाणिक तथ्य है कि व्यक्तित्व के निर्माण मे सामाजिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियो का बहुत कुछ सहयोग तो होता ही है। मनोवैज्ञानिक साहित्यकार प्राय राजनीतिक पात्रो को हिसा दर्शन का समर्थक तथा क्रान्तिकारी विचारको के रूप मे चित्रित करते हैं, क्योकि हिसा उनकी दृष्टि मे मूल प्रवृत्ति है। जैनेन्द्र की 'सुनीता' का हरि प्रसन्न, 'सुखदा' का लाल तथा 'विवर्त' का अजित सभी मनोवैज्ञानिक दर्शन से ही उत्पन्न क्रान्तिकारी हैं। उनकी कुछ मनोग्रन्थियॉ है जो उन्हे क्रान्तिकारी बनने की ओर अग्रसर करती है।

दूसरी बात यह है कि मनोविज्ञान ने कथा साहित्य मे राजनीति को, स्त्री–पुरुष को मिलाने के माध्यम के रूप मे बहुधा ग्रहण किया है। अत मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य कोई स्वस्थ राजनैतिक दृष्टिकोण

व्यक्त नही भी कर सकता, क्योकि राजनैतिक पक्ष से वह बहुत कुछ दूर रहकर व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियो को ही अपना विषय बनाता है। ऐसी दशा मे उसके लिए सम्भव नही है कि वह स्वस्थ राजनैतिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन कर सके। यही कारण है कि मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य जब अपने मूल प्रतिपाद्य विषय से उतर कर अन्य पक्षो का विश्लेषण करता है, तो मात्र भ्रान्त धारणाओ का निरूपण करने के अतिरिक्त वह और कुछ नही कर पाता। मूल प्रतिपाद्य से अलग अन्य विषयो को विवेचित करने वाले प्राय सभी मनोवैज्ञानिक कथा साहित्यकारो की नियति यही होती है। जैनेन्द्र कुमार मे स्त्री–पुरुष दोनो का ही मनोवैज्ञानिक चित्रण दृष्टिगत होता है। जिसकी विस्तृत विवेचना करना आवश्यक है।

जैनेन्द्र के पुरुष पात्रों में मनोवैज्ञानिक चेतना

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे व्यक्ति की प्रधानता है, इसलिए इनके पात्र व्यक्तिपरक हैं, उनका मूल्याकन उनकी निजी चिन्तन पद्धति और उनकी निजी परिस्थितियो और अलग प्रकार के आचरण पर आधारित है। जैनेन्द्र के पात्रो को एक दूसरे के समक्ष रखकर देखना अथवा एक को दूसरे पर प्राथमिकता देना, जैनेन्द्र निर्मित पात्रो के सम्बन्ध मे कठिन पडेगा। इतना ही नही, दो पूर्णतया एक जैसे पात्रो को भी तराजू के पलडो पर रखा जाये तो उनमे भी समरूपता नही मिलेगी, बल्कि दोनो मे अपना कुछ न कुछ निजत्व तो देखने को अवश्य मिलेगा। ऐसा लगता है कि कथाकार ने पात्रो को गढने मे तीन विशेष बातो पर ध्यान दिया है, एक विशेष चिन्तन पद्धति, विशिष्ट मनोवैज्ञानिक लक्षण तथा एक असाधारण व्यक्ति परक पृष्ठभूमि–'परख' से लेकर 'अनामस्वामी' तक सभी उपन्यासो मे पुरुष मात्र इसी तथ्य को उद्घाटित करते दिखायी पडते है। इनमें से मुख्य

पात्रो के चरित्रो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना हमारा लक्ष्य है। 'परख' मे दो पुरुष पात्र हमारा ध्यान आकर्षित करते है—सत्यधन और बिहारी। सत्यधन काल्पनिक आदर्शो से गुजरता हुआ यथार्थ की कठोर धरती पर अवतरित होता है और सासारिकता मे अपने को लीन कर लेता है। बिहारी जीवन की विविधता मे से आदर्श को अपना आधार बनाता है और आजीवन उसी आदर्श को वास्तविक स्वरूप प्रदान करने के लिए अपने को बलिदान कर देता है। दोनो के जीवन मे आने वाले इन परिवर्तनो की पृष्ठभूमि सामाजिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी। सत्यधन भावुक है, उसमे उत्सर्ग की प्रवृत्ति नही है, केवल भावुकता के आकस्मिक वेग मे बहकर वह आदर्श के आवरण को ओढ लेता है। आदर्श उसकी चमडी मे है उसका खून, मास, मज्जा आदर्श का नही। इसके विपरीत बिहारी के भीतर उत्सर्ग की शक्ति है, उसने अपने पर आदर्श का आवरण नही ओढा है, वह जब कट्टो की स्थिति को देखता है और समझता है तो उस लडकी के उत्सर्ग बल को परखता है, उसके अन्तर को पहचान लेता है। वह अपने पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर भी अपना अधिकार त्याग कर स्वय परिश्रम पूर्वक जीवन व्यतीत करने और कट्टो से दूर रहकर भी अपनो जैसा व्यवहार करने की सौगन्ध लेता है। यह आदर्श उसके भीतर की प्रेरणा है जिसमे वह नीचे से ऊपर तक डूब जाता है। इन दोनो पात्रो मे सत्यधन का आदर्श से यथार्थ की ओर झुकाव सामाजिक परिवर्तन है, जबकि बिहारी का आदर्श अभियान एक मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन। विश्लेषण करने से ज्ञात होगा कि सत्यधन वकालत पास करके वकील बनना चाहता है। वकीलो के मिथ्या व्यवहार से दुखी होकर अपने सत्यरूपी धन की रक्षा हेतु उसने उस विचार का त्याग किया, जब त्याग युक्तिपूर्ण न होकर यौवन की तरग मात्र ही था, क्योकि जब भगवत दयाल ने उसे जीवन के यथार्थ का ज्ञान कराया तो वह कट्टो की ओर आकर्षित होता

हुआ भी गरिमा को अपनाने तथा गरिमा के साथ कुछ और सम्भावित उपलब्धियो से विरत नही हो सका। वह कट्ओ से छुटकारा पाने की इच्छा से कभी कट्टो को तो कभी बिहारी को एक दूसरे के प्रति प्रेरित करता रहा। कट्टो ने जब उसके पावो मे लिपट कर रोना आरम्भ किया तब एक बार वह विचलित हो उठा। स्पष्ट ही उसकी बुद्धि अस्थिर है, उसका आदर्श बाहरी आवरण है, यथार्थ की वायु के पहले झोके मे ही उडने लगता है। दूसरा झोका गरिमा तथा जीवन की कुछ सम्पादित उपलब्धियो का था, जिसने पूर्ण रूप से उस आवरण को उडा दिया। यह सब सामाजिक परिस्थितियॉ है। विवाह के बाद कट्टो से पूर्णत सम्बन्ध विच्छेद के मार्ग की तलाश सामाजिक प्रतिक्रिया ही कही जा सकती है।

बिहारी ही 'परख' का एक मात्र ऐसा पात्र कहा जा सकता है जिसमे मानसिक चेतना सजग है और यह पूरे उपन्यास मे अन्तर्मुखी हुआ दिखायी पडता है। जहॉ लेखक सत्यधन की परिस्थिति का बहिर्मूल्याकन करता रहा है, वही बिहारी आदि से अन्त तक न केवल अन्तर्मुखी बना रहा, बल्कि प्रेम के क्षेत्र मे भी आत्मोत्कर्ष करता है।

श्रीकान्त और हरिप्रसनन्न 'सुनीता' उपन्यास के पुरुष पात्र है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दोनो ही कुठित है। सामाजिकता उनमे नही है। व्यक्ति जीवन की प्रधानता के कारण उनके व्यवहार मे सामाजिक मान्यताओ के सन्दर्भों का अभाव है। अपनी–अपनी लीक पर चलते हुए दोनो अग्रसर होते हैं। हरि प्रसन्न का जीवन अकेला है। नारी उसके जीवन मे कभी भी आकर्षण का केन्द्र नही बन पायी थी। किन्तु शनै शनै घनिष्ठता बढने से मामी की गरिमा मे उसने 'नारीत्व' के दर्शन करने आरम्भ किए। एक जिज्ञासा और उत्सुकता उसके अन्तश्चेतना मे पनपने लगी थी, इसलिए उसने सुनीता को हरि प्रसन्न की प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करने का आदेश दिया था। श्रीकान्त शायद

यह समझता था कि हरि प्रसन्न के सन्यासी जीवन व्यतीत करने का प्रमुख कारण स्त्री सम्पर्क का अभाव ही था। सुनीता के एकान्त सम्पर्क के लिए वह कही दूर जाने का बहाना बनाकर घर से चला जाता है। उस एकान्त मे सुनीता का यौवन एव मादकता उसमे पौरुष उत्पन्न करने का माध्यम बनता है, किन्तु वह इस स्थित से बचने के लिए और साहस न कर पाने के लिए सुनीता को क्रान्ति दल की विजयी शक्ति बनाकर एकान्त जगल मे अपने स्थान पर लाता है। जगल मे उसके स्थान पर पुलिस आ जाने के कारण, हरि प्रसन्न और सुनीता वही कही छिप जाते है। चॉद की रोशनी मे सुनीता का सौन्दर्य हरि प्रसन्न को विचलित कर देता है और सुनीता पति के आदेश का पालन करती हुई निर्वस्त्र होकर उसके प्रति समर्पण के लिए तत्पर हो जाती है। यह बिडम्बना हरि प्रसन्न की कठोरता को पराजित कर उसमे सामान्य पुरुष के भावो की स्थापना करती है और वह सुनीता को भोग्या न बनाकर सामाजिकता के लज्जायुक्त परिवेश मे मुँह छिपाकर भाग खडा होता है।

मनोवैज्ञानिक चेतना के आधार पर हम हरि प्रसन्न की असाधारणता का कारण काम अमुक्ति न मानकर काम का परिचय मानते हैं। स्त्री की वासना से परिचित न होने के कारण उसमे स्त्री की कोमलता, करुणा, उदारता, त्याग आदि के लिए कोई लगाव न था। यही असाधरणता का आधार था। सुनीता की निकटता और समर्पण ने उसे धीरे–धीरे सामान्यता प्रदान की। वह समय भी आ गया जब वह सुनीता का सम्भोग चाहने लगा, किन्तु सामान्यता का विकास होने से हरि प्रसन्न वैसा साहस न कर सका। यहीं उसमे समष्टि चेतना पनपी थी। 'सुनीता' मे रिवाल्वर प्रसग एक विशेष प्रतीक सिद्ध हुआ है। सुनीता के द्वारा हरि प्रसन्न से पूछना कि क्या रिवाल्वर तुम्हारे पास है, क्या तुम चलाना जानते हो, यदि हा तो चलाकर दिखाओ, आदि बाते अपने आप मे नारी के माध्यम से पुरुष

के पौरूष को ललकारने का प्रतीक है। हरि प्रसन्न मे 'स्त्री सम्बन्धी नपुसकता' को दूर करने के लिए सुनीता का यह सकेत विशेष मनोवैज्ञानिक महत्व लिए हुए है।

'त्यागपत्र' मे मृणाल प्रधान पात्र है, उसके पुरूष पात्रो मे केवल प्रमोद ही मुख्य है। प्रमोद मे बुआ के लिए आत्मीयता है, उसी सूत्र मे बॅधा हुआ वह कभी अपनी मॉ से और कभी फूफा से लडने को तत्पर हो जाता है। वह महसूस करता है कि दोनो पात्रो का स्वभाव उसकी बुआ के लिए अच्छा नही है। उसकी बुद्धि मे बुआ की खातिर कुछ करने के विचार बारम्बार आते है, किन्तु सामाजिकता मे जकडे होने के कारण प्रमोद मनोवैज्ञानिक धरातल पर मृणाल की कही भी सहायता नही कर पाता। बचपन मे माता—पिता के भय के कारण बुआ पर होने वाले अत्याचारो को देखकर भी सहन करता है। उस परिस्थिति मे वह दौड—दौडकर बुआ का कोई भी कार्य कर देने मे राहत महसूस करता है। शायद इसी से बुआ को कुछ सन्तोष प्राप्त हो सके। शीला के भाई से डॉट खाकर भी चुपचाप सह लेता है। दूसरी बार कोयले वाले के यहॉ जब वह बुआ से मिलता है, तो बुआ को असामाजिक कृत्यो के कारण उबार सकने का साहस नहीं जुटा पाता और तीसरी बार विवाह के सिलसिले मे, जिस मे लडकी देखने जाता है, वही बुआ सामान हो जाने पर वह उसे पुन अपने अच्छे समाज मे ले चलने का प्रस्ताव करने की हिम्मत करता है, तो आत्मव्यथा तथा सत्याग्रह की भावनाओ मे मग्न ससार के सभी दु खो को अपने अन्दर खीच लेने की साध लिए स्वय मृणाल प्रमोद के साथ जाने को प्रस्तुत नही होती। वास्तव मे प्रमोद की बुआ के प्रति आत्मीयता की मनोवैज्ञानिक चेतना तो बारम्बार मृणाल को उबार लेने को कचोहटी है, किन्तु जीवन का सामाजिक यथार्थ सदैव उसकी चेतना पर प्रतिबन्ध लगा देता है। मन के इसी द्वन्द्व से परेशान होकर वह अपने पद से त्यागपत्र दे देता है।

इसमे अन्य पात्रो मे शीला का भाई, मृणाल का पति और कोयले वाला ये तीनो पात्र अपना विशिष्ट स्थान रखते है। शीला का भाई यौवन की भावुकता का, मृणाल का पति सन्देह का तथा कोयले वाला वासनाभिभूत यथार्थ के प्रतीक है। शीला का भाई मृणाल से प्रेम का दम भरने पर भी उसके लिए त्याग करने का साहस नही करता। मृणाल का पति शक्की स्वभाव और निष्ठुर व्यक्ति है। मृणाल विवाह के पश्चात् पतिव्रत्य धर्म के नाते पति–पत्नी के एकत्व को स्थापित करते हुए अपने और पति के मध्य के सब आवरणो को हटाने का प्रयत्न करती है। परन्तु उसका पति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत स्वार्थी और बेईमान प्रकृति का है। वह उसे कभी भी शान्ति नही देता, बल्कि मारता–पीटता है। कोयले वाला वासनाग्रस्त व्यक्ति है। मृणाल की कमजोरी का लाभ उठाकर उसे सहारा देने के बहाने उसके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। मृणाल स्थिति के प्रति चैतन्य है, क्योकि उसने कभी यह आशा ही नही की थी कि वह कोयले वाला उससे निभा पाएगा, किन्तु फिर भी वह उसके प्रति आभारी है, परन्तु कोयले वाला मक्कार पुरुष है। कुछ कारणो से अपने परिवार से दूर वह मृणाल का भोग करता है और मौका पाकर वह चुपचाप अपने परिवार मे लौट आता है। मृणाल ने उससे कोई छल नही, किया, पर वह छली सिद्ध होता है।

डॉ० असरानी 'कल्याणी' का एक मात्र प्रभावी पुरुष पात्र है। प्रारम्भ से ही वह बडा दम्भी और लम्पट है। स्वार्थ और अविश्वास मे लगातार जलता हुआ वह सन्देह मे फॅसा सदैव अपनी अति सफल डॉक्टर पत्नी के विषादोन्माद का कारण बनता है। सर्वप्रथम उसने कल्याणी पर झूठे आरोप लगाकर बदनाम किया और फिर स्वय सहानुभूति का बहाना करते हुए कल्याणी के माता–पिता के पास विवाह का प्रस्ताव रखता है। मनोवैज्ञानिक चेतना के कारण डॉ० असरानी हीनता–ग्रन्थि का शिकार था। उसकी लम्पटता, दम्भ, स्वार्थ

या सन्देह की सवेदनाएँ सब इसी ग्रन्थि की देन थी। वह कलयाणी से इतना प्रभावित था कि विवाह मे उसे प्राप्त करने की इच्छा उसके मन मे बदवती हो उठी थी। हीनता ग्रन्थि के कारण वह समझता था कि कल्याणी उसे पति के रूप मे कभी भी स्वीकार नही करेगी। तभी उसने उसे बदनाम करने का प्रयत्न किया। यदि स्वय वह भी एक सफल डॉक्टर होता तो वह ऐसा व्यवहार कभी नही करता। कल्याणी को बाजार मे पीटने के पीछे उसे अपमानित करने की धारणा भी डॉ० असरानी की हीनता का प्रमाण है। जैनेन्द्र जी ने 'सुखदा', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन', 'मुक्तिबोध' और 'अनामस्वामी' आदि सभी उपन्यासो मे मनोवैज्ञानिक चेतना का प्रस्तुतीकरण किया है। कथा साहित्यकार ने अनेक पात्रो को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है। सामान्य दृष्टि से मिलते–जुलते लगने वाले पात्र भी किसी न किसी सूक्ष्म रेखा से अलग होते है। पुरुष पात्रो के निर्माण मे जैनेन्द्र अपने आधुनिक उपन्यास 'अनामस्वामी' मे सफल कहे जा सकते है। अनाम और शकर उपाध्याय दोनो अद्वितीय निर्माण है।

इस प्रकार जैनेन्द्र के सभी पुरुष पात्रो को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कथाकार ने प्रत्येक पात्र को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है। अन्य पुरुष पात्रो मे कही अह है, कही गर्व, कही दम्भ तो कही लम्पटता कुछ पात्र ऐसे भी है जो आशाओ के अपूर्ण होने पर कुण्ठित हुए है तथा कुछ असफल मानसिक उपचार भी हुआ है।

वर्गीकरण करते हुए हम श्रीकान्त, नरेश और मिस्टर पुरी को एक वर्ग मे रखते है तथा सत्यधन, हरि प्रसन्न, मृणाल के पति, डॉ० असरानी, लाल सहाय को दूसरे वर्ग मे रख सकते है। तीसरा वर्ग आदर्शवादी पात्रो का हो सकता है जिसमे बिहारी, जयवर्धन तथा अनाम के नाम लिए जा सकते हैं। चौथे वर्ग मे किसी कारणवश

उत्पन्न होने वाली कुण्ठा से पीडित जितेन, जयन्त आदि आ सकते है। भिन्न–भिन्न वर्गो मे रहकर भी वे सब अलग व्यक्तित्व के है और जीवन सघर्ष मे अकेले जूझते है।

जैनेन्द्र के नारी पात्रों में मनोवै-।।निक चेतना

जैनेन्द्र की नारी पात्र विविध रूपो मे दृष्टिगत होती है। पहला वर्ग उन स्त्रियो का है जो समाज के अत्याचार का विरोध पूर्ण ढग से न करके गॉधीवादी सत्याग्रह युक्त ढग से करती है। सामाजिक दृष्टि से सत्याग्रह के माध्यम से वे समाज को नवीन मार्ग दे रही है और मानसिक दृष्टि से असमर्थ प्रतिशोध भाव से जलती हुई अपने निकटवर्ती आत्मीयो को क्षुब्ध करने मे सन्तोष पाती है। वे आत्मपीडक साधिकाए है, क्योकि उनका विश्वास है कि सत्य के आग्रह से भोगा हुआ दारूण दर्द भी चेतना को जगाने मे सहायक होता है। ऐसे स्त्री पात्रो मे मृणाल, कल्याणी, इला और वसुन्धरा के नाम लिए जा सकते है। इन चारो की प्रमुख समस्या सेक्स की है। समाज उन्मुक्त भोग की अनुमति नही देता, परिणामत इनके जीवन मे जो तूफान आते है, उन्ही से उनका मन विद्रोही होता है। विद्रोहवर्ती होकर भी वे समाज भग का सहारा नही लेती, सभी दु खो को स्वय सहकर भी कष्ट का अनुभव नही करती। जैनेन्द्र की उपलब्धि यह है कि वे सहकर भी पर–पथ को आलोकित करती है। त्याग, बलिदान, उत्सर्ग और समर्पण की बलवती प्रवृत्तियॉ उनकी सहयोगिनी होती है और सहानुभूति पूर्वक चिन्तन करने वाले के लिए एक नवीन जीवन पथ का उद्घाटन होता है।

'त्यागपत्र' मे मृणाल का सेक्स सर्वाधिक उभर कर आया है। शीला के भाई से उसके रागात्मक सम्बन्ध इतने गर्हित समझे गये कि मामी ने उसे छड़ी से पीटा। उसके व्यवहार मे पाप की दृष्टि कही न

थी फिर भी उसकी पिटाई की गई। इस प्रकार सेक्स के मार्ग मे प्रथम ग्रन्थि का उदय हुआ। विवाह हुआ, एक सती पतिव्रता के नाते सर्वस्व सौपते हुए उसने अपने पति से कुछ भी नही छिपाया। परिणामत उस पर लाछन लगा और पिटाई हुई, यहॉ पर उसमे दूसरी ग्रन्थि ने जन्म लिया। विवाह अनमेल था। पति अधिक आयु का था, शीला का भाई समव्यस्क होने के कारण आकर्षण का स्वाभाविक केन्द्र रहा होगा। आखिर क्यो वह अपनी इच्छा के पुरुष को तन नही दे सकती? पुन ग्रन्थि, सबका निष्कर्ष यह कि तन देना स्त्री की नियति है, इच्छा का पुरुष विसगति। यही से मृणाल का विद्रोह आरम्भ होता है। अत्याचारी और अन्यायी समाज से बदला लेने मे वह अपने को असमर्थ पाती है। विद्रोही का पथ सत्याग्रह का मार्ग वन जाता है। वह समाज की जगह अपने को तोडने का सकल्प लेती है। मै समाज को तोडना–फोडना नही चाहती हूँ। समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेगे? या कि किसके भीतर बिगडेगे? इसलिए मै इतना ही कर सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मगलाकाक्षा मे खुद ही टूटती रहूँ।[1] मृणाल आत्मपीडा की जीवन पद्धति अपना कर इस जलन से दूसरो का पथ आलोकित करने लगती है। दूसरी ओर सेक्स क्षेत्र मे उसका निष्कर्ष उसे धीरे–धीरे वेश्यावृत्ति की ओर धकेलने लगता है। तन देकर धन पाने की प्रवृत्ति तथापि उसमे नही आयी, तो भी उसकी स्थिति सोचनीय है। उसका निजी विश्लेषण है। जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है। यह मेरी समझ मे नही आता। तन देने की जरूरत मै समझ सकती हूँ, तन दे सकूँगी, शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसा? दान स्त्री का धर्म है।[2] मृणाल के विषय मे डॉ० मनमोहन सहगल के विचार द्रष्टव्य है –

---

1 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ – 73

2 जैनेन्द्र कुमार– त्यागपत्र, पृष्ठ–64

वह दान के लिए तत्पर है, पात्र कुपात्र से उसे क्या लेना। पति ने उसके धर्म को नही पहचाना, किन्तु उसने पातिव्रत्य का पूर्ण पालन किया। पति की आशा शिरोधार्य कर वह घर से चली आई। रुचि का पुरुष तो जीवन की विसगति है, जो भी उसे भोगे, उसे अब कोई इनकार नही।[3] मृणाल के जीवन मे सेक्स की समस्या का यह रूप सामाजिक दृष्टि से दूषित दीख पडता है, किन्तु जैनेन्द्र जी ने मृणाल को इतनी सहानुभूति दी है कि उसके वर्णन मे बौद्धिक युक्तिवाद के सहारे उन्होने उसे सती–पतिव्रता दिखाया है, जिसको पढकर पाठक मृणाल के प्रति घृणा न करके करुणा से भर जाता है। कल्याणी भी इसी वर्ग की साधिका है। कल्याणी का लगातार शोषण हुआ है। उस पर चारित्रिक लाछन लगाकर बदनाम करने का षड्यन्त्र किया गया है। विवाह के लिए तैयार हुई तो पति ने हर तरफ से उसका शोषण किया। उसकी सवेदनाओ की न केवल हत्या की गयी बल्कि उसे सामाजिक अपमान का भी सामना करना पडा। कल्याणी के मन मे अनेक बातो ने जन्म लिया, किन्तु वह तो शान्त भाव से अपने पति द्वारा किए गए समस्त अत्याचारो को सहती रही। इसी प्रकार इला और वसुन्धरा भी आत्मपीडक वर्ग की स्त्रिया है, किन्तु इनकी सैक्स समस्या मृणाल आदि से भिन्न है। कथाकार ने उक्त स्त्रियो का मनोवैज्ञानिक हल खोजने की अपेक्षा उन्हे समाज मे असाधारण असभाग एव उदान्त एव उदात्त बनाने मे अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग ऐसी स्त्रियों का है जो विवाहिता हैं, किन्तु अपने पूर्व प्रेमियो के प्रति अब भी उनमे कुछ आकर्षण शेष है। वे पत्नीत्व और प्रेयसीत्व के बीच मे फॅसी हुयी हैं। जैनेन्द्र की दृष्टि मे वे पति परायणा है और सतीत्व के बोझ को

---

3 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्याकन और मूल्याकन, पृष्ठ – 64

लादे चल रही हैं। सुनीता सुखदा, भुवन मोहिनी, अनिता और कुछ सीमा तक नीलिमा की गणना इसी कोटि मे की जा सकती है। सुनीता पति परायणा है, पति की आज्ञा से बॅधी उसके मित्र हरि प्रसन्न को जीवन की नीरसता से दूर लाकर सरसता मे ले जाने का प्रयास करती है। पति को उस पर अडिग विश्वास है। सुनीता श्रीकान्त की पत्नी बनकर रहे या हरि प्रसन्न की प्रेयसी, इस दुविधा से पीडित वह परेशान और दुखी होकर हरि प्रसन्न के सम्मुख समर्पण के लिए मन को स्थिर करने लगी और एक रात वीरान जगल मे हरि की आखो मे छलकती वासना देखकर वह दिगम्बर हो अपने को समर्पित कर देती है। सुनीता का यह साहस हरि को पराजित करता है और वह हमेशा के लिए वहा से चला जाता है। सुनीता को सफलता मिलती है। सुनीता जानती है कि उसी घर की चहारदीवारी मे उसका स्थान है, वह पति–निष्ठ है और पूर्ण आस्था के साथ पति की कामना का बोझ लादे जीवन सघर्ष मे सफलता पा जाती है। बहुत बडा साहस करके अविचलित मन से उसने अपने सतीत्व की रक्षा की है। यही सुनीता की उपलब्धि है।

'सुखदा' की नायिका सुखदा स्वय ही पति के घर मे अपनी कल्पनाओ को तडपता देखकर मानसिक सन्तोष का दूसरा मार्ग खोजती है। सुनीता घर से सन्तुष्ट है, पतिनिष्ठ है, किन्तु सुखदा को पति की आर्थिक स्थिति, पति की निस्साहसी, अन्तर्मुखता और सुखदा की अनुचित स्वतन्त्रता के प्रति उसका मौन आदि बातो से चिढ है। सुनीता मे बाहर का प्रवेश घर मे होता है और 'सुखदा' में घर की चहारदीवारी से निकल स्वय सुखदा बाहर आती है और अपने व्यवहार से मानसिक द्वन्द्व का कारण स्थापित करती है, पतिगृह के सब अभाव उसे लाल के कृत्रिम व्यवहार मे पूरित होते प्रतीत होते हैं। उसका पति उसे अच्छे मार्ग पर लाने के लिए प्रेरित करता था परन्तु सुखदा वासना में डूबे होने के कारण अपने पति की बात जानने के लिए

तैयार नही थी। सुखदा के चित्रण मे जैनेन्द्र ने घर के अभावो के प्रति विद्रोह अकित किया है, पति की कारा को भी नकार दिया है। इसे हम जैनेन्द्र का आदर्शोन्मुख यथार्थ ही कह सकते हैं, किन्तु कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र के नीतिपरक शिल्प मे सुनीता अपना कोई विशिष्ट स्थान नही बना सकी है। भुवनमोहिनी (विवर्त) तथा अनिता (व्यतीत) पत्नी ओर प्रेयसी के बीच उठती हुई नारियॉ है। सुनीता या सुखदा की भॉति इनमे घर और बाहर अभाव और तृप्ति की समस्याए नही, दोनो अपने पति के घर मे सुखी हैं। अपने पति पर उन्हे अदम्य निष्ठा है। किसी भी मोड पर वे पति से अलग होने की कल्पना नही करती परन्तु पूर्व के प्रेमी के प्रति के अपना कुछ कर्तव्य समझती है। वे महसूस करती हैं कि प्रेमी की निराशा की दशा का कुछ कारण वे भी है। इसलिए उनका कर्तव्य है कि ये पूर्व प्रेम की आस्था के ही नाते उनकी निराशा को सुधारे। इस दृष्टि से वे दोनो यद्यपि पत्नीत्व मे बधकर प्रेयसीत्व के असामाजिक कृत्य की पूर्ति का साहस करती है, तथापि वे पातिव्रत्य से विचलित नही होती। इसी वर्ग मे नीलिमा मे पत्नीत्व और प्रेयसीत्व का कोई द्वन्द्व नही है। न मिस्टर दर को नीला के प्रेयसीत्व पर ईर्ष्या या सन्देह है। मुक्त वातावरण मे विचरण करती हुई आधुनिका नीलिमा जहॉ पत्नी है, वहॉ आजीवन पत्नी ही है। प्रेयसीत्व तो केवल मुह का जायका बदलने के लिए आता दीख पडता है।[4] नीलिमा जैनेन्द्र के किसी आदर्श का प्रतीक मालूम होती है। नीलिमा से जैनेन्द्र ने प्रेम के प्रति आस्था प्रकट करने का सफल प्रयास किया है।

नारी पात्रो का तीसरा वर्ग उन स्त्रियो का है, जो अनुगता पत्नियॉ है। वे अपने पति के प्रति पूर्णत- समर्पिता हैं, उन्हे पति की प्रसन्नता मे प्रसन्नता है, दु ख मे दु ख। राजश्री (मुक्तिबोध), गरिमा

---

4 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्याकन और मूल्याकन पृष्ठ – 70

(परख) ऐसी ही स्त्रियॉ हैं। दोनो क्रमश सहाय और सत्यधन की रुचि और इच्छा पर आत्मसमर्पण किए अगाध निद्रा मे लीन रहना चाहती है। राजश्री को नीलिमा से या गरिमा को कट्टो से कोई ईर्ष्या द्वेष नही है। गरिमा भी गौरवमयी पत्नी है कट्टो का स्नेह पाकर उसकी ईर्ष्या लुप्त हो जाती है। इन दोनो नारियो मे जैनेन्द्र की उपलब्धि पत्नी धर्म की स्थापना की है। यो यही स्थापना जैनेन्द्र मृणाल (त्यागपत्र) कल्याणी (कल्याणी), सुनीता (सुनीता), मोहिनी (विवर्त) आदि के माध्यम से भी करते रहे है। जैनेन्द्र के पत्नी पात्रो मे केवल चन्द्रकला (व्यतीत) ही ऐसी आधुनिका है, जो पति से अलग होकर पुनर्विवाह करती है और सुख भोग करती है। यहॉ पर जैनेन्द्र ने चन्द्रकला को दोष न देकर जयन्त को दोषी ठहराया है।

चौथा वर्ग है आदर्श और त्यागशील प्रेमिकाओ का, जिसमे कट्टो (परख) तथा तिन्नी (विवर्त) के नाम लिए जा सकते हैं। कट्टो ने सत्यधन से सच्चे मन से प्यार किया और तिन्नी ने जितेन से। दोनो मे त्याग और समर्पण की भावना है। दोनो मे से किसी ने भी कभी अपने प्रेमी से प्रतिदान की कामना नही की बस मौन प्रेम की साधना मे लीन रही। आदि, मध्य और अन्त इन्होने मात्र प्रेमार्पण मे ही देखा, जैनेन्द्र ने अपने सभी उपन्यासो मे केवल उदिता (अनामस्वामी) मे एक नया प्रयोग किया है। समस्या यहॉ भी यौन की है। किन्तु मुक्त भोग के कारण जीवन मे सार्थकता का नितान्त अभाव है। डॉ० मनमोहन सहगल ने लिखा है—"बालक का पिता कौन है, यह मॉ भी नही जानती—प्रेम होना, छूटना, फिर होना, फिर छूटना यही जिन्दगी का क्रम है। अनव्याहे गर्भ का बोझ होना भारतीय जीवन की दृष्टि में पराजय है।[5] उदिता के चरित्र मे यह सब हुआ, सेक्स के असयत

---

5 डॉ० मनमोहन सहगल – उपन्यासकार जैनेन्द्र मूल्याकन और मूल्याकन, पृष्ठ – 72

सूत्रो के कारण ही तो। जैनेन्द्र के यह सब मान्य नही रहा, 'अनाम स्वामी' मे इसका सकेत मान्यता का द्योतक नही है।''

जैनेन्द्र ने नारी को व्यक्तित्व प्रदान करने के लिए उसके स्वरूप को राजनीति, समाज, परिवार आदि विभिन्न परिप्रेक्ष्यो मे विभिन्न रूपो मे देखा है। जैनेन्द्र पर यह आक्षेप किया जाता है कि उनके नारी पात्र अत्यन्त सोचनीय है। उनमे भारतीय सस्कृति और मर्यादा की चेतना नही है, किन्तु सत्यता यह है कि जैनेन्द्र के पात्र अतीत का स्पर्श करते हुए भी वर्तमान मे जीते है। अपनी सस्कृति की कभी वे उपेक्षा नही करते हैं। भौतिकता के युग मे स्त्री पुरुष से आगे बढने के लिए तत्पर है। स्त्री पुरुष मे होड लगी हुई है, किन्तु जैनेन्द्र के अनुसार स्त्री की पुरूष से प्रतिस्पर्धा उचित नही है। 'त्यागपत्र', 'परख' आदि मे जीवन का जो आदर्श व्यक्त हुआ है, वह सामाजिक मर्यादा का पोषक ही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैनेन्द्र जी ने अपने कथा साहित्य मे पुरुष और नारी पात्रो मे मनोवैज्ञानिक चेतना का समावेश किया है। उन्होने सभी उपन्यासो और कहानियो मे मनोवैज्ञानिक दृष्टि अपनायी है। जैनेन्द्र जी का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक चेतना से प्रभावित होता प्रतीत होता है और उन्होने मनोवैज्ञानिक चेतना को कथा साहित्य के स्तर पर जिस रूप मे स्वीकार किया है, वह व्यक्ति के मन की सत्यता का उद्घाटन करने मे सक्षम है।

अध्याय–6

जैनेन्द्र के कथा साहित्य में शिल्पगत चेतना

जैने-,- के कथा सा ित्य में शिल्प त
चतन

कला और शिल्प तथा युग चेतना : अन्तस-

हमारे साहित्य मे अनादिकाल से ही कला और शिल्प का समादर किया गया है, किन्तु 18वी शताब्दी मे उसका स्वरूप कुछ और निखार के साथ हमारे समक्ष आया है। कोई भी कला युगीन सामाजिक–सास्कृतिक और दार्शनिक गतिविधियो से अछूती नही हो सकती। मानव जीवन से अलग रहकर कला अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए नही रख सकती। यही कारण है कि सभ्यता एव सस्कृति के विकास के साथ जनता की अभिरुचि और सौन्दर्य चेतना मे परिवर्तन होता है। कला की जननी सौन्दर्य चेतना है। अत यह स्पष्ट है कि युग–चेतना से कला और शिल्प सश्लिष्ट हैं। हडप्पा कालीन मूर्तियॉ, खजुराहो की कलाकृतियॉ, आगरा का ताजमहल और इलाहाबाद का किला अपने–अपने युग की कला और शिल्प की अभिव्यजना करते हैं।

कला का स्वरूप

'कला' शब्द यद्यपि सस्कृति की मूल धातु 'कल् (कल्+कच्+टापू) से निर्मित हुआ है तथापि पाश्चात्य पर्याय शब्द 'आर्ट' के द्वारा अर्थ विकास और उसके मूलार्थ को सरलता से हृदयगम किया जा सकता है। 'आर्ट' शब्द के साथ सौन्दर्य बोध जुडा हुआ है जिसने इन्हे आधुनिक अर्थ प्रदान किया है। 'आर्ट' शब्द

प्राचीन लैटिन के 'आर्स' शब्द से बना है। प्राचीन भारतीय साहित्य मे इसे 'कला' की सज्ञा दी गयी थी और कला के लिए 'शिल्प' तथा कलाकार के लिए 'शिल्पी' शब्द का प्रयोग होता था। उस समय शिल्पियो के चार प्रकार मान्य थे—स्थपति, सूत्रग्रही, बर्धकी, तथा तक्षक। तक्षक शिल्पी काष्ठ कला, वस्तुकला, मूर्तिकला तथा लौह कला मे कुशल होता था। शेष शिल्पी वेद शास्त्र ज्ञान मे निपुण होते थे, जिसमे स्थपति सर्वश्रेष्ठ शिल्पी माना जाता था। प्राचीन ग्रीक और रोमन भाषा के 'आर्ट' शब्द मे केवल शिल्प बोध था। उसमे काव्य—कला प्रभृति ललित कलाओ को आत्मसात करने की गरिमा न थी।[1] यूरोपीय सौन्दर्य—चेतना के प्रभाव से 'आर्ट' शब्द ने नूतन अर्थ ग्रहण किया। 18वी शताब्दी के सौन्दर्य—शास्त्रियो ने शिल्प और उसके दर्शन पर विचार किया तथा उसका विभाजन उपयोगी एव ललित कला के रूप मे हुआ। 19वी शताब्दी तक आते—आते 'ललित—कला' के लिए 'कला' शब्द का व्यवहार होने लगा और सौन्दर्य बोध के प्राबल्य मे अभीप्सित अर्थ घोषित करने लगा।[2]

साहित्य में शिल्प प्रयोग एवं [illegible] आशय

जब हम साहित्य के सन्दर्भ मे शिल्प का प्रयोग करते हैं तो साधारणतया हमारा अर्थ कलात्मक सौन्दर्य से होता है, परन्तु साहित्यिक कला के सन्दर्भ मे शिल्प का अर्थ बहुत व्यापक है। शिल्प विधि भी है और विधान भी। शिल्प के अन्तर्गत वे सभी उपाय, विधियॉ—प्रविधियॉ, क्रियाएँ—प्रतिक्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनके द्वारा कलाकार कलात्मक सौन्दर्य सिद्धि करता है। शिल्प वस्तु (विषय अथवा अनुभूति) को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया का वैशिष्ट्य है। कलाकार साक्षात्कार किए गए सौन्दर्य तथा रूप (भाव परक) को न

---

1 डॉ० कमल विमल – काव्य विवेचन, पृष्ठ – 25
2 आर०जी० कलिगवुड – दि प्रिन्सिपल्स ऑफ आर्ट, पृष्ठ – 7

केवल अभिव्यक्त करना चाहता है, अपितु उसे इस प्रकार से अभिव्यक्त करना चाहता है कि वह एक सम्पूर्ण सफल, सार्थक तथा सुन्दर कलाकृति बने। कलाकृति की अभिव्यक्ति की सम्पूर्ण सार्थकता तथा सौन्दर्य के लिए किए गए सभी विधान, व्यस्थाएँ, विधियॉ, आयास और प्रयास, रूप–गठन और रूप–योजनाएँ शिल्प मे सम्मिलित है।[3] शिल्प–सगठन, सश्लेषण तथा अन्विति की प्रक्रिया है। शिल्प का प्रयोग इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उद्भूत सौष्ठव तथा कलात्मक सौन्दर्य के लिए भी किया जाता है। सक्षेप मे अनुभूति शिल्पित होकर ही कला बनती है। कला शिल्प की सिद्धि है। कलाकृति तक का मार्ग 'शिल्प' है। मार्क शोरर ने इसी भाव को बडे सरल परन्तु सुन्दर शब्दो मे बॉधकर शिल्प की सीधी सी परिभाषा खडी कर दी है–'शिल्प, वस्तु (अथवा मूल अनुभूति) तथा सिद्ध वस्तु (अथवा कला) का अन्तर है।'[4] वस्तुत अनुभूति को प्रस्तुत करने के लिए कलाकार अनेक–रूप योजनाओ की व्यवस्था करता है। शिल्प के अन्तर्गत वस्तु को मॉजना, सवारना, सशोधन, परिशोधन, परिष्कार, प्रस्तुतीकरण तथा अभिव्यंजना सभी कुछ आ जाता है। अभिव्यजित तथा रूपायित होने से पूर्व की मानसिक प्रक्रियाओ का, जो कलाकार के मन मे घटित होती है, यहॉ अभिप्राय नही है। शिल्प का सम्बन्ध अभिव्यजना के पक्ष से ही है, उससे पूर्व की सृजन प्रक्रिया इसके विचार से परे है। शिल्प सक्रिय होता है। शिल्प समस्त सृजन प्रक्रिया नही है, सृजन के निमित्त के बाद ही शिल्प सक्रिय होता है। उससे पूर्व की प्रक्रियाओ सवेदना–ग्रहण, उसका भाव–सत्य में विकास तथा कल्पना के सहयोग से बिम्बो के निर्माण को शिल्प की विवेचन परिधि से बाहर जाना पडता है। यह अनुभूति के व्यक्त रूपायन की प्रक्रिया है।

3 डॉ० कैलाश वाजपेयी – आधुनिक हिन्दी कविता मे शिल्प, पृष्ठ – 18

4 The difference between content or experience and achieved contorl or *Art is technique*

इस सन्दर्भ मे श्री ओम प्रकाश शर्मा के विचार द्रष्टव्य है–'शिल्प का सम्बन्ध कला के सौन्दर्य से है और कला का सौन्दर्य व्यक्त का सौन्दर्य है। इस प्रकार शिल्प व्यक्तीकरण की प्रक्रिया है, अव्यक्त की नही। शिल्प के अन्तर्गत वे सभी उपकरण भी आ जाते है जो शिल्प–प्रक्रिया के निमित्त बनते हैं।[5] शिल्प मे प्रक्रिया, प्रयत्न, आयास, उपकरण, सामग्री तथा इनके फलस्वरूप मिलने वाली उपलब्धि सम्मिलित है। यह अनूभूति की अभिव्यक्ति तथा उसका रूपायन है । इस प्रकार शिल्प अनूभूति को स्थापित करने का प्रयत्न है।

शिल्प के लिये अग्रेजी मे 'टेकनीक', 'फार्म' तथा 'स्ट्रक्चर' आदि शब्दो का प्रयोग होता है। शिल्प शब्द के लिए कौन शब्द इसका पर्याय है, यह अभी तक पूर्णरूपेण स्पष्ट नही हो सका है। विभिन्न विद्वानो ने इस शब्द के लिए अग्रेजी के अनेक शब्दो को सुझाया हैं। डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल[6], डॉ० सत्य पाल चुघ[7] तथा डॉ० प्रेम भटनागर[8] अपने–अपने शोध प्रबन्धो मे विधि तथा शिल्प को अग्रेजी शब्द 'टेकनीक' का अनुवाद मानकर चले हैं। डॉ० प्रेम भटनागर आगे चलकर शिल्प–विधि को 'फार्म' का पर्याय मान लेते है। शिल्प शब्द 'टेकनीक' का पर्यायवाची नही हो सकता। 'टेकनीक' में आन्तरिकता तथा पद्धति विशेष का ही अर्थ ध्वनित होता है। साहित्य–कोश मे 'टेकनीक' की व्याख्या मे क्रिया–पद्धति पर ही विशेष बल दिया गया है। डॉ० नगेन्द्र ने अपने विचारो को इस प्रकार व्यक्त किया है –

'किसी भी कला मे प्रविधि का तात्पर्य कलात्मक निष्पादन की विधि से होता है, अर्थात् किसी कृति के विविध अवयवो और ब्यौरो को गुम्फित करने की कुशल पद्धति से।'[9] कुछ विद्वानो ने, 'शिल्प' शब्द

---

5 श्री ओम प्रकाश शर्मा – जैनेन्द्र के उपन्यासों का शिल्प, पृष्ठ–11
6 डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल – हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास, पृष्ठ – 2
7 डॉ० सत्यपाल चुघ – प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि, पृष्ठ – 1
8 डॉ० प्रेम भटनागर – हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ – 10
9 डॉ० नगेन्द्र – मानविकी पारिभाषिक कोश, साहित्य खण्ड, पृष्ठ – 61–62

अग्रेजी के 'क्राफ्ट' शब्द के अधिक निकट है, इस बात पर बल दिया है। इस सन्दर्भ मे डॉ० नगेन्द्र के विचार उल्लेख करना अत्यधिक समीचीन प्रतीत होता है, डॉ० नगेन्द्र के अनुसार –

'मूलत इसका प्रयोग उपयोगी कलाओ की निर्माण क्षमता के लिए होता है। किन्तु उपचार से इसका प्रयोग ललित कलाओ के लिए किया जाता है। यहॉ इससे अभिप्राय है –रचना की दक्षता या निपुणता से। किसी भी उत्कृष्ट रचना मे भावो का गाम्भीर्य, विचारो की गरिमा एव शैली का उत्कर्ष तो पाया ही जाता है, किन्तु साथ ही समग्र रूप से उस रचना का मूल्यांकन करते हैं तो इन सब तत्वो को निजी अवस्थिति एव इनके विकास का अध्ययन भी करते हैं।[10]

इन सब बातो का निर्वाह कलाकार की दक्षता पर निर्भर करता है। इसे ही कला का शिल्प कहा जाता है। स्पष्ट है कि शिल्प मे रचना–कौशल तथा पूर्णता की ध्वनि है। कला–सृजन मे यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। शिल्प उसी व्यक्तीकरण का कौशल है। शिल्प के लिए 'फार्म' का तीसरा प्रयोग किया गया है। डॉ० प्रेम भटनागर ने अपने शोध–प्रबन्ध मे रूप[11], रूपाकार[12] तथा डॉ० सत्यपाल चुघ ने रूपाकार को ही 'फार्म' के पर्यायवाची के रूप मे प्रयुक्त किया है।[13]

फार्म शब्द मे शिल्प जैसी व्यापकता नही है और न ही अर्थ वहन करने की शक्ति। फार्म ही विषय का आधार मात्र है। इस शब्द का प्रयोग शिल्प के लिए नहीं किया जा सकता। वस्तुत 'फार्म' शिल्प का एक अग है। 'स्ट्रक्चर' के लिए हिन्दी में सरचना शब्द का प्रयोग किया जाता है। सरचना का सम्बन्ध रचना के गठन पक्ष से है। इस अर्थ मे यह शब्द शिल्प के बहुत समीप आ जाता है।

---

10 डॉ० नगेन्द्र – मानविकी पारिभाषिक कोश, साहित्य खण्ड, पृष्ठ–61–62
11 डॉ० प्रेम भटनागर – हिन्दी उपन्यास – शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ – 10
12 वही, पृष्ठ – 11
13 डॉ० सत्यपाल चुघ – प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों की शिल्प–विधि, पृष्ठ – 1

वास्तव मे शिल्प को अनुवाद या पर्याय मान लेना बहुत स्वस्थ प्रवृत्ति का द्योतक नही है । शिल्प न टेकनीक का अनुवाद है, न क्राफ्ट का। यह अपनी आत्मा, अर्थ और रूप मे शुद्ध भारतीय है। इस शब्द मे साहित्यिक कृतियो तथा अन्य सर्जक कला–कृतियो के सौन्दर्य को ऑकने, कलात्मक सौन्दर्य का निमित्त कारण बनने, उस हेतु सामग्री–सम्पादन तथा विधियो के आकलन के अर्थ की व्यजना देने की पूरी क्षमता है। वास्तव मे दूसरी भाषा के शब्द का पर्याय बनकर कोई भी शब्द एक सीमा के बाद अर्थ वहन करने मे असमर्थ हो जाता है। शब्द की भी अपनी आत्मा, अर्थ दीप्ति तथा अर्थच्छाया होती है। शिल्प शब्द जैसी व्यापकता तथा अर्थ गम्भीरता अन्य विदेशी शब्दो मे नही है। अत शिल्प शब्द के लिए विदेशी शब्द का प्रयोग करना न्याय–सगत नही प्रतीत होता। जैनेन्द्र जी के साहित्य मे शिल्प का सहज एव स्वाभाविक रूप से निर्वाह हुआ है। अत जैनेन्द्र जी की शिल्पगत चेतना का विस्तृत विश्लेषण करना आवश्यक है।

कथा वस्तु–शिल्प

जैनेन्द्र कुमार ने सदैव रूढिगत परम्पराओ से अपने को अलग रखकर युगानुकूल स्वस्थ परम्पराओं को डालने मे पथ–प्रदर्शक का कार्य किया है। उन्होने जहॉ उन सामाजिक मान्यताओ को, जो रूढि बन कर हमारे प्रगति मे बाधक हो रही थीं, विरोध किया है वही पर उन्होने घिसी–पिटी चली आ रही शिल्प–परम्परा को भी नया आयाम प्रदान किया है । अपनी मौलिक शैली के सन्दर्भ मे उन्होने 'परख' मे स्वय स्पष्ट किया है– 'मैंने इसमे काफी स्वतन्त्रता से काम लिया है। पर विश्वास है उसका दुरूपयोग नही किया। क्या कहूँ और कैसे कहूँ इन दोनों बातो मे मैने किसी नियम को सामने नहीं रखा है–न भाषा

का शिकजा है न भाव का। दोनो किसी क्रोड के नियमो मे बॅधकर नही रह सकते।'[14]

वस्तु शिल्प को सही तथा सपूर्ण परिप्रेक्ष्य मे जॉचने के लिए हमे जैनेन्द्र के कथा साहित्य की मूल सवेदना तक जाना पडेगा। जैनेन्द्र के कथा साहित्य की मूल सवेदना क्या है—यह उलझा हुआ प्रश्न है। यो सतही तौर पर देखने से लगता है कि जैनेन्द्र के साहित्य की मूल सवेदना शान्तिमूलक करुणा है। करुणा की यह सवेदना सदा दर्शन से आच्छादित रहती है। ऐसा लगता है कि जैनेन्द्र सवेदना के पूर्ण होने से पूर्व ही उसे अभिव्यक्त कर देते हैं।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे सिद्धान्त—निवेदन बहुत है। प्राय सभी उपन्यासो तथा कहानियो का कथानक चिन्तनमूलक तथा दार्शनिक छाया से आपूर्ण है। उसमे तर्क—वितर्क तथा चिरन्तर का विवेचन—विश्लेषण है। जैनेन्द्र जी अपने कथा साहित्य मे विराट प्रश्नो के प्रति जिज्ञासु हो उठते हैं जो अपनी प्रकृति मे सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक हैं।

कथानक मे प्राय वाद—विवाद का आत्म—विवाद की शैली से जीवन और जगत् की समस्याओ के समाधान के लिए विचार हुआ है। इस विचार—तत्व की अधिकता के कारण ही उनके कथा साहित्य मे निबन्ध के तत्वो का समावेश हो गया है। जैनेन्द्र जी ने चाहे किसी भी प्रकार की कथावस्तु चुनी हो उसके अध्ययन मे कुशल हैं। उन्होने कथा को कहने के लिए अनेक नाटकीय तथा मनोवैज्ञानिक कौशलो का प्रयोग किया है। कथा को आरम्भ करने की उनकी अपनी शैली है। कथा के आरम्भ के पूर्व वे प्राय. प्रारम्भिक या आरम्भिक का समावेश कर देते हैं जिसका उद्‌देश्य पाठक के लिए वास्तविकता की

---

14 जैनेन्द्र कुमार — परख, पृष्ठ — 3

सृष्टि करना है। जैनेन्द्र ने कथाओ को प्रस्तुत करने की विविध प्रणालियो को अपनाया है। कही वह परम्परागत ऐतिहासिक शैली है, जहॉ लेखक कथा तथा पात्रो के विषय मे स्वय कहता, बखान करता चला जाता है। कही प्रधान पात्र, जिसकी कथा प्रस्तुत है, स्वय अपनी कथा 'आप बीती' के ढग पर प्रस्तुत करता है।[15] कही यह किसी पात्र की डायरी के रूप मे है तथा कही पात्र मात्र बारी–बारी से अपनी कथा पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं। कही–कही कथाकार ने किसी गौण पात्र को वक्ता के रूप मे रखा है जो अपने किसी सम्बन्धी या परिचित की कथा बडे आत्मीय तथा करुणोत्पादक ढग से प्रस्तुत करता है 'त्यागपत्र' मे प्रमोद अपनी बुआ मृणाल की कहानी प्रस्तुत करता है तथा 'कल्याणी' मे वकील साहब जो कल्याणी से सुपरिचित थे तथा जिनके यहॉ वह प्राय आती जाती थी, कल्याणी की कथा प्रस्तुत करते है। इस प्रकार पात्रो के माध्यम से कथा प्रस्तुत करने मे लेखक को विशेष तटस्थता की सिद्धि प्राप्त हुई है। लेखक बीच मे नही आता भुक्त–भोगी या तो अपनी कथा स्वय कह देता है अथवा कोई आत्मीय व्यक्ति उस कथा को पाठको के सामने प्रस्तुत कर देता है। दोनो ही दशाओ मे वह विश्वसनीय बन जाती है । जिसकी वह अपनी कथा है, उससे अधिक और कौन उस कथा की जानकारी रख सकता है? आत्मकथा कहते हुए पात्र प्राय गोपनीय प्रसंगो को भी पाठक के सामने उद्घाटित कर देते हैं।

कही–कही परिच्छेदो का विभाजन भाव–प्रवाह के स्वाभाविक रूप मे बाधक बन गया है। 'विवर्त' उपन्यास मे परिच्छेद आठ के अंत तथा परिच्छेद नौ के प्रारम्भ के बीच ऐसी ही स्थिति है। भुवन मोहिनी तथा उसके पति नरेश चाय पर बैठे हैं। पति दो प्याले चाय पी चुके हैं, मोहिनी तीसरा प्याला तैयार कर रही है, दोनो मे बात–चीत चल रही है, बीच में ही परिच्छेद–परिवर्तन हो जाता है। परिच्छेदो की सन्धि पक्तियॉ उद्धृत करना प्रासगिक होगा –

---

15 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 3

नरेश ने कहा—'अच्छा' और मोहिनी चाय तैयार करती रही।[16]

(परिच्छेद आठ का अन्त)

चाय के बीच मे मोहिनी ने पूछा

'क्यो, आज चुप क्यो हो।[17]

नरेश बोले 'कुछ नही'

(परिच्छेद नौ का आरम्भ)

जैनेन्द्र के अधिकाश उपन्यासो का आरम्भ चिन्तापरक है। आत्म—कथात्मक उपन्यासो मे प्रधान पात्र अपनी विगत कथा को पूर्व दीप्ति के रूप मे प्रस्तुत करता है। प्राय वह पात्र अपने जीवन की अन्तिम स्थिति मे होता है या तो चूक गया होता है अथवा टूट चुका होता है। 'सुखदा' की नायिका क्षय रोगिणी है तो 'व्यतीत' का नायक जयन्त 'पैंतालीसवी वर्षगाठ पर स्वय को बीता हुआ अनुभव करता है। वह अपनी कथा का श्री गणेश स्वय को अनुभव करने की कथा से करता है। इस प्रकार कथा प्रस्तुत करने में जैनेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक प्रयोग के अन्तर्दर्शन का प्रयोग किया है। अन्तर्दर्शन मनोवैज्ञानिक प्रयोग की वैज्ञानिक पद्धति है, जिसमे विषयी अपने मन मे झॉक कर अपने जीवन तथा व्यवहार का निरीक्षण करता है। इस प्रकार पूरी कथा 'आत्म निरीक्षण मूलक सामग्री' के रूप मे हमे प्राप्त हो जाती है।[18]

---

16 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 71

17 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ–72

18 वह भी अपने विचारो, अनुभूतियों और अभिप्रायों का तथा वह जो कुछ देखता सुनता और जानता है उसके विषय में हमें जानकारी करा सकता है। जब वह स्वय अपनी चेष्टाओं का निरीक्षण करता है तो इसे अन्तर्दर्शन कहते हैं और जो सामग्री वह प्रस्तुत करता है उसे अन्तर्दर्शन से प्राप्त सामग्री कहते है। उसे आत्मनिरीक्षण मूलक सामग्री भी कहते है, क्योंकि व्यक्ति आत्म निरीक्षण करके इसे प्रस्तुत करता है।.... अन्तर्दर्शन को पश्चात्–प्रतिमा के निरीक्षण के द्वारा समझाया जा सकता है....किन्तु कोई दूसरा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की पश्चात्–प्रतिमाओं को नहीं देख सकता है ठीक उसी तरह जैसे कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के दाँत में होने वाले दर्द को नहीं देख सकता है। (राबर्ट एस० वुडवर्थ तथा डोनाल्ड डी० मार्क्विस)

पात्रो को जीवन के अन्तिम पडाव पर उन्हे रीता तथा व्यतीत दिखाना भी सोद्देश्य है, क्योकि प्राय व्यथा भरे अन्तिम क्षण ही विगत जीवन के अन्तर्दर्शन के लिए उपयुक्त होते हैं। प्रस्तुतकर्ता पात्र सामान्यतया चिन्तन से कथा आरम्भ करता है, आरम्भ प्राय जगत या जीवन की समस्याओ या समाज के विधि—निषेधो को लेकर किया जाता है। यहॉ चिन्तन जिज्ञासा मूलक होता है। प्रस्तुत—कर्ता पात्र सीधा, बिना किसी भूमिका के समस्या से साक्षात्कार करता है। इस समस्या मूलक विवेचनात्मक पृष्ठभूमि से उस पात्र का जीवन उभरने लगता है, जिसकी कथा कहनी अभीष्ट है। जैनेन्द्र के दो उपन्यासो 'त्यागपत्र' तथा 'कल्याणी' की कथा इसी रीति से प्रस्तुत हुई है। दोनो कथाए प्रताडित तथा शोषित नारियो की हैं। अन्तत वे करुणा तथा सहानुभूति की अधिकारिणी हैं। जैनेन्द्र के उपन्यासो मे कुछ गौण पात्र भी कथा—विकास के माध्यम बने हैं। 'कल्याणी' का श्रीधर पात्र ऐसा ही है। वह कल्याणी के बारे मे अनेक समाचार• वकील साहब को लाकर देता है, श्रीधर ही वकील साहब को सूचना देता है कि कल्याणी को मारा पीटा गया है तथा वह कराची मे न होकर उसी नगर मे कैद है।[19] कथानक के विकास मे श्रीधर की भी अहम भूमिका है।

कथा—विकास मे पत्रो का भी प्रयोग किया गया है। इन पत्रो को हम श्रीधर जैसे गौण पात्रो का स्थानापन्न मान सकते हैं। उपन्यास के विभिन्न पात्र एक दूसरे को पत्र लिखते हैं। जिससे कथानक के अनेक सूत्र स्पष्ट हो जाते हैं। 'परख' में भगवद् दयाल के सत्यधन के प्रति तथा गरिमा के साथ विवाह सम्बन्धी विचार पत्र द्वारा ही प्रकट होते है।[20] पिता और पुत्र दोनो की इस विषय मे क्या

---

19 इसके कोई चारेक रोज बाद श्रीधर खबर लेकर आए कि श्रीमती असरानी एक कोठरी के अन्दर पडी हैं। उन्हे खूब मारा गया है और दो रोज से उन्होंने कुछ खाया—पीया नहीं है। मैने कहा श्रीधर, क्या फिजूल बकते हो। वह तो कराची थी । कब लौटी ? श्रीधर कहा कराची ? कराची क्या होता है ? (जैनेन्द्र कुमार कल्याणी)

20 जैनेन्द्र कुमार — परख, पृष्ठ — 78

राय है यह भी भगवद् दयाल द्वारा बिहारी को लिखे गये पत्र से प्रकट होता है।[21] भगवद् दयाल की सम्पत्ति का बॅटवारा किस प्रकार हो, यह भी हमे पत्र से ही पता चलता है।[22] इस प्रकार सत्यधन की क्या प्रतिक्रिया है—यह भी उसके पत्र मे लिपिबद्ध है।[23]

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे कथावस्तु के क्रमिक उद्घाटन की अनुपस्थिति हमारा ध्यान आकर्षित करती है। इसका यह अर्थ नही है कि जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे कथावस्तु है ही नही, या वे उसके विकास की ओर से उदासीन हैं, वरन् उसका मूल कारण जैनेन्द्र के कथा साहित्य की कथा वस्तु की प्रकृति है। जैनेन्द्र के उपन्यासो मे घटनाएँ उपलक्षण मात्र हैं।[24]

डॉ० देवराज उपाध्याय ने अपने शब्दो मे व्यक्त किया है— 'घटनाएँ कार्क के टुकडे है, पात्रो के चेतना—प्रवाह नदी लहरे है, जिनके वात्याचक्र पर डूबती—उतराती हुई वे हमारा मनोरजन करती रहती हैं। कार्क तो छोटा सा नगण्य टुकडा मात्र है पर नदी की लहरो की उन्मत्तता का सहारा पाकर स्वय नदी की उन्मत्तता बन जाता है।[25]

जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासो के वस्तु—निबधन तथा उपस्थापन मे एकाधिक मनोवैज्ञानिक विधियो का प्रयोग किया है। पात्र जीवन—परिस्थिति से उद्दीप्त होकर अथवा मात्र मानसिक रूप से उत्तेजित होने के कारण स्वय को हीनता की मनोदशा मे पाते है। 'सुखदा' और 'व्यतीत' की कथा का विकास इसी पद्धति से हुआ है। सुखदा क्षयरोगिणी होकर अस्पताल के एकान्त से और जयन्त वर्षगाठ

---

21 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ—80
22 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ—120
23 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ—121
24 जैनेन्द्र जी के उपन्यासों में कहानी केवल निमित्त मात्र होती है (डॉ० नगेन्द—आस्था के चरण, पृष्ठ—621)
25 डॉ० देवराज उपाध्याय—आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, पृष्ठ—36

पर स्वय को चुक जाने की स्थिति मे पाकर अपने गत जीवन को प्रस्तुत करते है। पूर्वदीप्ति से कथा मे सक्षिप्तता की सिद्धि होती है, क्योकि घटनाएँ व प्रसग स्वय ही घट जाते है। पूर्वदीप्ति प्रधान उपन्यास न होने पर भी 'परख' मे सत्यधन का प्रारम्भिक जीवन काफी बाद मे लाया गया है। 'कल्याणी' मे डॉ० कल्याणी वकील साहब के सामने आपना वर्तमान जीवन प्रस्तुत करती है।

जैनेन्द्र के कथा–साहित्य के वस्तु–शिल्प मे नाटकीय विधियो का प्रयोग भी मिलता है। प्रत्यावलोकन शैली के कारण पात्र का अतीत वर्तमान बन जाता है।[26] 'व्यतीत' मे जयन्त अपनी कहानी सुनाता–सुनाता झट से क्रियाओ का काल बदल देता है–'यह नही कि मै समझ नही सका × × × × × वह अभाव कहाँ से आ गया था ? बीज तो था नही, किस मे यह फल आया था? याद कर सकता हूँ कि कुछ हॅसी आ गई थी। कहा × × × × ×' [27]

सुखदा अपने बीते जीवन मे पति–सम्बन्धो की चर्चा करते वर्तमान की स्थिति से पाठको को फिर से अवगत करा देती है 'स्वामी ने कहा, तुम बनाओगी ? नही, चलो आज किसी रेस्तरा में खायेगे।'

'लेकिन उनकी इस तरह की बात पर मेरे लिए असम्भव हो गया है कि मैं रोटी बनाने के मौके को छोड दूँ। वह सध्या मुझे याद आती है। लेकिन किस बात पर उसे याद करूँ। आज यहॉ इतनी दूर आकर बडी लगने वाली घटनाएँ तुच्छ मालूम होती हैं × × × × × हाय आज कैसा अचरज है × × × × ×'[28]

---

26 It is not something in the past bur something going on now in the immediate persent And this is where the dramatic novelist takes clue from drama. Even in the novel there is something that is felt as the dramatic present (J.W Beach the twentieth century novel . - Page - 147)

27 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 95

28 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 32

जैनेन्द्र का शिल्प इन स्थलो पर इतना सजीव है कि पाठक की कल्पना–शक्ति जागृत हो उठती है और वह विश्वास के भ्रम का शिकार हो जाता है। कथावस्तु मे नाटक के समान ही पात्रो की क्रियाओ मे विभिन्न ध्वनियो तथा पात्रो के हाव–भाव, मुख–मुद्राओ को कोष्ठक मे रखकर सक्षिप्तता तथा गति की सिद्धि की गयी है। नाटक के समान कथावस्तु मे सघर्ष को स्थान दिया गया है। जैनेन्द्र ने वस्तु नियोजन मे सयोग–तत्व का प्रयोग किया है। अग्रेजी आलोचक हडसन ने कहा है कि हम कथावस्तु मे सयोग का समावेश मात्र इस आधार पर नही कर सकते कि वे वास्तविक जीवन मे भी घटित होते हैं। उनका मत है कि कथात्मक साहित्य बिलकुल वास्तविकता जैसा नही होता।[29]

कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण मे जैनेन्द्र जी ने परम्परागत शैली का अनुगमन किया है। वे कथा कहते हुए पाठक को सम्बोधित करते चलते है। 'परख' मे यह प्रवृत्ति बहुत है। 'त्यागपत्र' का आरम्भ भी सम्बोधन शैली से होता है। सुखदा भी बीच–बीच मे पाठको को सबोधित करती चलती है। मानो सम्मुख बैठे लोगो को अपनी कहानी सुना रही हो। 'त्यागपत्र' मे कहानी सुनाते समय हामी भरने की लोक रीति का भी पूर्ण प्रयोग हुआ है, यह जैनेन्द्र की अपनी मौलिक देन है। प्रमोद अपनी बुआ को अपने परिवार और जीवन की परिवर्तित परिस्थितियो के ब्योरे सुना रहा है। बीच–बीच मे प्रमोद चुप बैठी बुआ से हामी भरवाने के लिए कहता है 'सुनती हो? क्यो बुआ ? तुम मत बोलो, लेकिन मैं तुम्हे बताये देता हूँ . .आदि।[30] जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे पाठक एक करुणा की आर्द्रता का अनुभव करता है,

---

29 The defence which is Something offered for the free use of coincidcnce that Concidences to happen in real lige is searcely to the point, for the adrise of the dictum that truth is stranger than fiction is that fiction should not be so strange as truth" (Willion Heary hundson - An Introduction to the Study of Literature, Page 186)

30 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–56

उसका एक प्रधान कारण यह सवेदनशीलता ही है। मूलत चिन्तक होने के कारण जैनेन्द्र जी कई बार मूल कथा तन्तु तोडकर भावुक होकर दार्शनिक चिन्ता मे निमग्न हो जाते हैं। प्राय ऐसे अश दीर्घ हो जाते है और लघु निबन्ध का रूप ग्रहण कर लेते हैं। 'जयवर्धन' मे तो यह प्रवृत्ति अपनी पराकाष्ठा पर है और वहॉ पूरे के पूरे निबन्ध भाषण या पत्र रूप मे मूल कथा मे ठूॅस दिए गए है, 'त्यागपत्र' मे भी इसी प्रकार के लम्बे–लम्बे वक्तव्य आए हैं।

कई बार ऐसा भी होता है कि कथावस्तु का चरम बिन्दु आ जाता है, कथा समाप्त हो जाती है परन्तु जैनेन्द्र जी पुन प्रसग को उठा लेते हैं। 'परख' मे कट्टो और बिहारी का विवाह 'क्लाइमेक्स' बिन्दु है। उसके पश्चात् कथा को फैलाना अस्वाभाविक है।

विषय–वस्तु की दृष्टि से जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे प्रेम–परिवार तथा व्यग्य रूप से सामाजिक तथा क्रान्तिकारी तत्वो का समावेश हुआ है। कथावस्तु मे वे सामान्यत त्रिकोणात्मक प्रेम की स्थापना करते हैं। यह स्थापना दो पुरुषो तथा एक नारी को लेकर होती है किन्तु 'व्यतीत' अपवाद है। 'व्यतीत' मे एक पुरुष तथा दो नहीं, कई नारियॉ है, जयन्त के विवाह के प्रसग मे बुधिया अपनी भावनाओ को प्रकट करती है। यह प्रसंग साधारण रोमांस की गन्ध देता है।[31]

सामाजिकता का अत कथा साहित्य की विषय–वस्तु मे गौण तथा परोक्ष रूप से आया है। 'परख' में विधवा की समस्या आयी है जिसका समाधान लेखक ने आदर्श किन्तु अव्यावहारिक रूप से दिया है। 'सुनीता' मे घर–बाहर की समस्या है। जिस पर डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने रवीन्द्र के 'घर और बाहर' का प्रभाव देखा है। उनका मत है

31 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 36

कि इसका निरूपण पहले रवीन्द्रनाथ कर चुके है। डॉ० मदान के विचार द्रष्टव्य है – 'इस तरह घर और बाहर की समस्या इनकी उपन्यास कला की मूल समस्या है, जिसका निरूपण रवीन्द्र नाथ के उपन्यास 'घर और बाहर' मे पहले हो चुका था।'[32]

जैनेन्द्र जी के प्राय सभी उपन्यासो की कथावस्तु करुणा से भीगी हुई है। उनकी मूल सवेदना को देखते हुए यह सर्वथा स्वाभाविक भी है। कथावस्तु को दु ख का रग देने के लिए कई उपकरणो का प्रयोग हुआ है। कथा मे वर्णित पात्रो का जीवन दु खमय होता है, वे जीवन भर निर्दोष रहने पर भी समाज या समाज के व्यक्तियो, विधानो द्वारा दी गयी यातना के सघर्ष भोगते हैं तथा अन्त मे प्रतिवाद का एक शब्द कहे बिना इस ससार से विदा हो जाते हैं । पाठक की कथा के प्रति तल्लीनता भी इस करुणोत्पादन के लिए उत्तरदायी है। समाज का जीतना तथा पात्र की हार की त्रासदी भी इस करुणा को सघन बनाती है। इस शिल्प से कथावस्तु की प्रभावात्मकता सघन हुई है।

चरित्र–चित्रण–शिल्प

जैनेन्द्र जी ने विशुद्ध रूप मे जीवनियॉ तो नही लिखी, परन्तु ऐसे उपन्यास अवश्य लिखे हैं जिनमे प्रधान चरित्रो को महत्व दिया गया है। उनकी कथा वस्तु, उनके चरित्रों के अनुरूप और अधीन रही है। टाइप चरित्रो के स्थान पर व्यक्ति चरित्र देने का ऐतिहासिक कार्य सर्वप्रथम जैनेन्द्र जी द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्होने ही सर्वप्रथम चरित्रों को नैतिक–अनैतिक के दल–दल से निकालकर मानव की स्वाभाविक भाव–भूमि पर प्रतिष्ठित किया। मानव उनके लिए सद् या असद् नहीं था, मात्र मानव था।

---

32 डॉ० इन्द्र नाथ मदान – आज के हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ – 24

पात्र चयन के विषय मे जैनेन्द्र ने बडी सूझ–बूझ से काम लिया है। उनके कथा साहित्य की मूल सवेदना करुणा की है। वे अपने उपन्यासो द्वारा एक विशिष्ट दर्शन प्रतिफलित करना चाहते है। जैनेन्द्र ने अचेतन मन को बहुत महत्व दिया। उन्होने पात्रो के अचेनत मन के चित्रण मे भरपूर प्रयोग किया है। उनके पात्र साधारण नही असाधारण है। वर्गगत नही विशिष्ट है। जैनेन्द्र के पात्र अचेतन से परिचालित होते है। पात्र के मन मे कोई न कोई ग्रन्थि या अतृप्ति रहती है। शची रानी गुर्टू का मत है कि 'जैनेन्द्र के पात्रो की कहानी × × × × × परिस्थितियो से जूझने वाले व्यक्तियो, उनके परिवेश और सामाजिक सम्बन्धो की कहानी न होकर कुण्ठा ग्रस्त और किसी एक वृत्ति या मूड के वशीभूत आत्म केन्द्रित लोगो की कहानी है।[33] 'परख' के पात्रो की मनोवैज्ञानिक अर्थ मे कोई ग्रन्थि नही है। यह ग्रन्थि युक्त पात्र–परम्परा 'सुनीता' से प्रारम्भ होती है। 'सुनीता' मे मनोवैज्ञानिक शब्दावली का स्पष्ट प्रयोग है। श्रीकान्त के शब्दो मे हरि की आत्मा मे कहॉ गॉठ पडी है कि वह अतर्क्य होता × × × × × जैसे अपने भीतर भेद को पाल रहा है × × × × × क्या उसे भरमा रही है × × × × ×[34] 'कल्याणी' मे लेखक श्रीधर का परिचय देते हुए कहता है कि उसमें गॉठ नही है। सुखदा विवाह पूर्व भावी पति के विषय मे कल्पना चित्र बनाती है कि उनकी आमदनी सात सौ रूपये होनी चाहिए। मोटर तो पास होना अनिवार्य ही है।[35] परन्तु थोडे दिन बाद विवाह हुआ तो उनका वेतन कुल डेढ सौ।[36]

जैनेन्द्र ने चरित्र–चित्रण के अन्तर्गत अचेतन मे सक्रिय रहने वाली मूल प्रवृत्तियो का उपयोग किया है। उनके अधिकाश पात्रो के

---

33 शची रानी गुर्टू – जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक अतिवाद (लेख) – साप्ताहिक हिदुस्तान 16 मार्च 1958
34. जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 103
35 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 10
36 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा पृष्ठ – 10

अन्त सम्बन्ध काम वृत्ति से प्रेरित है स्त्री–पात्र पुरुषो की ओर यौन–आर्कषण से प्रेरित होकर पतियो की उपेक्षा और विरोध करते है। उनके पुरुष पात्र नारियो को 'समूची' चाहते है और प्राय वह विविध पदावली[37] से पुरुषो के प्रति प्रस्तुत रहती हैं और इसके तुरन्त पश्चात् ही पाटी पर सिर पटक कर या बूटो के तस्मो को आसुओ से भिगोकर अथवा साडी–बाडी उतारकर जिस दृश्य का निर्माण करती है वह काम मूलक तो है परन्तु गौरवहीन है। कतिपय विचारको ने इसकी कटु आलोचना की है।[38] अचेतन मे काम–प्रवृत्ति की सक्रियता के आत्यन्तिक चित्रण के अतिरिक्त कही उसके हल्के रूप का भी वर्णन है। मुक्तिबोध मे मिस्टर सहाय नीलिमा के पास से आए हैं। घर आकर पत्नी राजश्री को बात–बात पर डाटते हैं। उसे उनका शेष समझ मे न आ रहा था × × × × ×[39] की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मिस्टर सहाय नैतिकता का उपदेश देते हैं, इस पर नीलिमा भर्त्सना करती हुई कहती है–'मुझे नही मालूम था सहाय कि तुम्हारा दिल इतना कमीना हो गया है।[40] सहाय के क्रोध पूर्ण व्यवहार मे अचेतन का आहत शामिल है।

जैनेन्द्र के पात्रो मे दूसरो की प्रणय–क्रीडाओ तथा प्रणय–रहस्यो को छिपकर देखने या सुनने की प्रवृत्ति पायी जाती है। डॉ० देवराज उपाध्याय ने इस प्रवृत्ति को 'वायोरिज्म' का नाम दिया है।[41] सुनीता और हरि प्रसन्न के स्टडी–रूम से हरि प्रसन्न का सम्भवत सुनीता के लिए कहा गया शब्द 'ठहरो कहॉ जाती हो? सुनाई दिया तो वह 'बाबा रे। चिल्लाती हुई भागी जाती है।[42]

---

37 जैनेन्द्र कुमार –सुनीता, पृष्ठ – 198
38 डॉ० त्रिभुवन सिह – जैनेन्द्र व्यक्ति और कृतित्व (स० सत्य प्रकाश मिलिद) पृष्ठ – 81–82
39 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 71
40 वही, पृष्ठ – 64
41 डॉ० देवराज उपाध्याय – जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृष्ठ – 89
42 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ–143

जैनेन्द्र के अधिकाश पात्र नागरिक, सुशिक्षित सुरुचिपूर्ण तथा कला—प्रेमी हैं। 'परख' की कट्टो ही इसका अपवाद है। प्राय वे अच्छे पदो पर है तथा उनके सामने रोजी—रोटी की समस्या नही है। यह विस्मयजनक साम्य है कि जैनेन्द्र के पुरुष पात्र प्राय न्यायपालिका से सम्बन्धित हैं। सत्यधन और श्रीकान्त वकील है, प्रमोद तथा राम चरण जज हैं, नरेश बैरिस्टर है, कल्याणी और जयन्त कविताएँ लिखते हैं, सुनीता के स्टडी रूम मे शेली तथा अन्य कवियो का कविता—सकलन है तथा वायलिन, सितार, हारमोनियम तथा तबला आदि वाद्य—यन्त्र है। हरि प्रसन्न चित्रकारी करता है तथा फोटो भी ठीक कर सकता है। जैनेन्द्र का यह चयन सोद्देश्य है। ऐसे भावुक पात्र अधिक सवेदनशील होगे तथा उनके व्यवहार सामान्य से पृथक् होगे। वकील या बैरिस्टर पात्र इसलिए रखे गए है क्योकि वह समाज के विधि—निषेधो के प्रतीक एव कानून के प्रतिनिधि है क्योकि जैनेन्द्र अपने कथा साहित्य मे सामाजिक कानून को स्वीकार नही करते है। मनोविज्ञान मे व्यक्ति के मन के रहस्यो को जानने के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की कई विधियाँ हैं। जिन व्यक्तियो के मन मे कोई ग्रन्थि या दमित इच्छा है उनके उपचार करने के लिए मनोविज्ञान मे इन विधियो का प्रयोग किया जाता है। उपन्यास या कहानी के पात्रो के मन मे जो भावनाओ की आँधी प्रतिपल चलती रहती है, अथवा ऐसे रहस्य गढे हुए है जिनका कारण सुदूर अतीत मे है, जिससे वह स्वय भी परिचित नही, उन्हें पाठक तक कैसे पहुँचाया जाये? उत्तर स्पष्ट है × × × × × मनोविश्लेषण की विधियो द्वारा। यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य परिवर्तित रूप मे प्रयुक्त होता है।

स्वप्न

फ्रायड का मत है कि हमारे जीवन मे ऐसी बहुत सी इच्छाएँ होती है जो असामाजिक तथा अनैतिक होती है। सामाजिक सस्कार के प्रहरी जिन इच्छाओ को चेतन अवस्था मे उभरने नही देते, स्वप्न मे वही रूप बदल कर आते हैं। सभी स्वप्न इच्छापूर्ति है।[43] उनके मतानुसार स्वप्न–विश्लेषण अचेतन मानस की जानकारी प्राप्त करने का साधन है। प्रत्येक स्वप्न का एक अर्थ होता है तथा विचित्र से विचित्र स्वप्न की व्याख्या की जा सकती है। जैनेन्द्र ने स्वप्न द्वारा चित्रण किया है। सुखदा के स्वप्न–विश्लेषण मे हम उसके अचेतन की इच्छा की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील पाते है। सुखदा स्वप्न मे देखती है कि कोई व्यक्ति उसके तकिये के नीचे पत्र रखकर जा रहा है।[44] इस स्वप्न मे सुखदा की लाल को प्रेम करने तथा उसके सामीप्य के लिए स्वतन्त्रता–प्राप्ति की इच्छापूर्ति है। पत्र रखने वाला हाथ सुखदा के पति कान्त का है, पति स्वय घर छोडकर जा रहा है। इससे सुखदा की लाल के प्रति आकृष्ट होने इच्छा की पूर्ति होती है, परन्तु साथ ही पति के चले जाने से स्वय को अरक्षित अनुभव करने से उसकी चीख निकल जाती है। इस स्वप्न से सुखदा के अन्तर्जगत् की कुण्ठा व्यक्त होती है।

दिवास्वप्न

बिहारी गॉव जा रहा है, रेल मे बैठे–बैठे वह आगे आने वाले जीवन का चित्र बनाता है, वह जाग्रतावस्था में भी कष्टो को लेकर तत्संबधी तरह–तरह की योजनाएँ बनाता है। रेल चल रही है और

---

43 Dreams are one of the manifestations of the suppressed material .. finds ways and means of obstruding inself on conciousness during the night Sigmund Freud-The Basic writing of Singmand Freud (Trans. A A.Brill, Page - 559)

44 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–42–43

उधर बिहारी का कल्पनाशील मन सक्रिय है। वह कट्टो के काल्पनिक चित्र को लेकर सोचना आरम्भ करता है कि वह पानी भर रही होगी × × × × × कही सत्य उसे पढाता मिले × × × × × गॉव मे रहने लगूँगा × × × × ×एक झोपडी बनवा लूँगा × × × × × बाबूजी कहेगे तो कहे × × × × × अग्रेजी डिग्री खूँटी पर लटका दूँगा × × × × × कैसा मजा रहेगा × × × × × एक गाय रखूँगा आदि। लेखक की पक्ति 'इसी तरह की बहक में वह बेरोक बह चला'– इसी ओर सकेत करती है।[45] इस दिवा–स्वप्न से बिहारी के चरित्र का उद्‌घाटन होता है। यह भी प्रकट होता है कि कट्टो के विषय मे उसकी कैसी भावनाएँ है।

विभ्रम

निराधार प्रत्यक्षीकरण को विभ्रम कहते है। यह आत्मगत प्रक्षेपण है। इसके लिए बाह्य जगत मे किसी आधार की आवश्यकता नही होती। व्यक्ति अपने मानसिक द्वन्द्व के कारण ही बाह्य जगत मे वस्तुत न होते हुए भी अनेक वस्तुओं को देखता–सुनता है। वह रोग की आरम्भिक अवस्था मे प्रेत छायाओ अथवा फुस–फुसाहट को भ्रम कहकर टाल देता है और उन्हे सत्य नही मानता। किन्तु रोग बढ जाने पर फुस–फुसाहट की ध्वनियॉ अथवा छायाएँ इतने प्रबल रूप से उसके प्रत्यक्षीकरण पर छा जाती हैं कि वह उन्हे सत्य समझता है।[46] हरिप्रसन्न सुनीता को जगल मे ले जाता है। प्रत्यक्षीकरण है–दल का नेतृत्व, परन्तु अचेतन मे उसे समूची पाने की इच्छा है। वह उसे बॉहो मे समेट लेना चाहता है। उसमे प्रेम का तीव्र प्रवाह उमडता है। सवेद और मन पूर्व धारणाओ से प्राय· भ्रम और विभ्रम हो जाया करते है।[47]

---

45 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ– 57–58

46 Wılliam Medougalı-An out lıne of Psycology, Page-373

47 डॉ० रामनाथ शर्मा – सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृष्ठ–187

अत उसे लाल रोशनी दिखायी पडती है जिसे वह खतरे का चिन्ह मानकर सुनीता को अपने वक्ष से चिपका लेता है।[48] यह विभ्रम सुनीता के प्रति हरि प्रसन्न की प्रच्छन वासना व्यजित करता है। कल्याणी को कभी–कभी मृत आत्माएँ देखने का सन्देह होता है।[49] उसे गुसलखाने मे से फुस–फुस की आवाज आती है। उसी स्थान पर किसी स्त्री–पुरुष की बहस सुनायी पडती है। फिर उसे लगता है जैसे स्त्री की हत्या कर दी गयी हो। कल्याणी को हत्यारा कमरे के आर–पार जाता दिखायी पडता है, आदि–आदि।[50] जैनेन्द्र जी इस विभ्रम को विश्वसनीय बनाने के लिए स्त्री–पुरुष की आकृति और वेशभूषा भी देते है।

सम्मोहन तथा मुक्त–आसंग

सम्मोहन की दशा मे व्यक्ति अत्यधिक निर्देशनीय हो जाता है। वह निर्देशो को तुरन्त मानकर मन के अनेक गुप्त भेद कह देता है तथा उनके उपचार के लिए दिये गये निर्देश को भी मान लेता है। वह व्यक्ति सम्मोहन से प्रभावित होकर अधिक निर्देशनीय बनता है जो अपने विचारों को हीन तथा दूसरे के विचारो को श्रेष्ठ समझता है। ऐसे लोगो में मनोबल की कमी होती है। मुक्त–आसग में पात्र अपने मन को खुला छोड देता है तथा विचारो, भावनाओ तथा इच्छाओ को निर्बाध रूप से बिना किसी भ्रम, भय तथा सकोच के प्रकट करता है।[51] जैनेद्र के कथा साहित्य मे प्राय एक पात्र मनोविश्लेषक का कार्य करता है–तथा उसके सम्मुख एक असामान्य पात्र रहता है। वह अपने मनोविश्लेषण के निर्देशो से सम्मोहित की सी अवस्था में अपनी

---

48 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 230
49 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 76
50 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 78
51 Alffed Adler-Understandıng Human Nature, Page - 52

कथा तथा जीवन के भेदो का उद्घाटन करता है। कभी—कभी पात्र अटककर मनोविश्लेषण के लिए रोक भी उत्पन्न करता है जिसे वह सहानुभूति और विश्वास के आधार पर हटा देता है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे मुक्त आसग प्रणालियो का सर्वोत्तम उदाहरण 'जयवर्धन' है। हूस्टन मनोविश्लेषक की सी शैली मे जय से कहता है—'× × × × × मुझे आपका कर्म विवरण नही चाहिए। वह तो उजागर ही है। आया हूँ तो अन्तरग लेने आया हूँ × × × × ×।'[52] जय उसमे रोक उत्पन्न करता है क्योकि पात्र एकाएक निर्देशनीय नही बनता। जय का उत्तर है—'अन्तरग लेने के लिए नही, न देने के लिए है।'[53] इसी प्रकार इला भी आरम्भ मे रोक उत्पन्न करती है।[54] हूस्टन समझ लेता है कि उस समय और प्रश्न नही पूछने चाहिए। शुद्ध रूप मे नहीं किन्तु आशिक रूप मे जैनेन्द्र जी के कथा साहित्य मे मनोविश्लेषक पात्र की स्थिति विद्यमान है।

अन्तर्दर्शन

अन्तर्दर्शन मे व्यक्ति एकान्त मे अपनी अनुभूतियो का ही मूल्याकनात्मक निरीक्षण करता है। प्रायः यह प्रत्यावलोकन की शैली मे होता है। सुखदा तथा जयन्त अन्तर्दर्शन के द्वारा अपना समस्त जीवन हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। 'त्यागपत्र' का अन्तिम अंश[55] प्रमोद का अर्न्तदर्शन है। अन्तर्दर्शन से व्यक्ति का आन्तरिक जीवन तथा पात्र की उसके प्रति प्रतिक्रिया पाठक के सामने स्पष्ट हो जाती है।

---

52 जैनेन्द्र कुमार — जयवर्धन, पृष्ठ — 23
53 वही, पृष्ठ — 23
54 वही, पृष्ठ — 25
55 जैनेन्द्र कुमार — त्यागपत्र, पृष्ठ — 98—100

अन्तविवा -

'अनन्तर' मे नायक प्रसाद का एक सुन्दर अन्तर्विवाद है।[56] 'जयवर्धन' मे अनेक भीतरी विचार अन्तर्विवाद बनते–बनते रह गए है, क्योकि वहॉ के सवाद किसी अन्य पात्र की उपस्थिति मे कहे सुने जाते है। 'सुनीता' मे भी एक सुन्दर अन्तर्विवाद खण्डित हो गया है।[57] 'सुखदा' में प्रभात लाल का विरोध करता है। सुखदा लाल के प्रति अतिरिक्त सहानुभूति भाव रखती है। प्रभात सुखदा से लाल के बारे मे बार–बार पूछता है कि साहब कहॉ हैं, मानो सुखदा को लाल की हर प्रकार की जानकारी होनी चाहिए। सुखदा को अनुभव होता है कि लाल के सम्बन्ध को लेकर उस पर व्यग्य किया जा रहा है। उसे दिखा जैसे प्रश्न के साथ उसके ओठो मे व्यग्य की मुस्कराहट खेल आयी।[58] वस्तुत यह सुखदा के मन को प्रक्षेपीकरण है।

'विवर्त' मे जितेन के पास मोहिनी के गहने हैं। वह तिन्नी को बार–बार आग्रह करता है कि वह गहने पहन कर उसे दिखाए। मोहिनी को आभूषण–सज्जित देखने की वह लालसा स्थानान्तरित होकर तिन्नी पर आ जाती है,[59] इसी प्रकार अनिता का जयन्त की बहू को देखने की कामना प्रकट करने का प्रसग है। वह जयन्त के प्रति वात्सल्य भाव प्रकट करती है। यह प्रणय–प्रेम से वात्सल्य प्रेम के स्थानान्तरीकरण का उदाहरण है।[60]

---

56 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 102
57 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 87–88
58 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 186
59 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ – 171–172
60 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 74

संघर्ष

जैनेन्द्र ने अपने पात्रो के चरित्र–चित्रण के लिए सघर्ष का भरपूर प्रयोग किया है। इनके पात्रो का सघर्ष समाज से या सामाजिक समस्याओ से नही वरन् निज से है। अत सघर्ष विशेषत नारियो मे तीव्रतम पाया जाता है। वे हृदय की दो विरोधी वृत्तियो के द्वन्द्व से टूट जाती हैं। यह द्वन्द्व इदम् और अह के मध्य है। इद मूल प्रवृत्तियो का कोष तथा मन ऊर्जा मूल स्रोत है। बाह्य जगत से सम्बन्ध न होने के कारण यह अनुभव के द्वारा परिमार्जित नही होता। किन्तु अह के द्वारा इस पर नियन्त्रण रखा जा सकता है × × × × ×[61]। इद अत्यन्त शक्तिशाली होता है तथा सुख के उद्देश्य से परिचालित होता है,[62] अहम्, इद और पराहम् के बीच सामंजस्य स्थापित करता रहता है, किन्तु यदि अहम, इद या परमहम् के सम्मुख आत्म समर्पण कर देता है तो व्यक्तित्व मे असामन्जस्य का बोलबाला हो जाता है।[63] जैनेन्द्र के अधिकाश नारी पात्र व्यक्तित्व के असामजस्य से पीडित हैं।, उनका चेतन मन उन्हे सतीत्व की ओर खीचता है और अचेतन मन उन्हे प्रेमियो की ओर ले जाता है और दोनो का निर्वाह करने के प्रयास मे उनका जीवन दयनीय हो जाता है। एक ओर उनके मन मे परम्परागत सस्कार है जिनसे चाहकर भी वे मुक्ति नही पाती और दूसरी ओर प्रच्छन्न वासनाएँ हैं जो तृप्ति के लिए निरन्तर छटपटाती हैं तथा नारियो के सभी नैतिक–सामाजिक कर्तव्यों को लॉघ जाती है। सुखदा इसका जीता–जागता उदाहरण है। वह हरीश की ओर भी झुकती है तथा लाल की ओर भी। वह पति का अकुश नही मानती और स्पष्ट कहनी है × × × × × मै सभा जाऊँगी, तुम रोक नही

---

61 कैल्विन एस० हाल – फ्रायड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृष्ठ–12
62 कैल्विन एस० हाल – फ्रायड मनोविज्ञान प्रवेशिका पृष्ठ–23
63 कैल्विन एस० हाल – फ्रायड मनोविज्ञान प्रवेशिका, पृष्ठ–24

सकते।[64] तुरन्त उसके सस्कार गतिशील होते है और वह कह उठती है—'मै साथ तो हूँ, पर पदाधिकारी न बनाएँ और कभी उनसे पूछन भी नही × × × × × ।[65]

जैनेन्द्र के नारी—पात्र पुरुष—पात्रो की अपेक्षा अधिक आकर्षक है। जैनेन्द्र नारी मनोविज्ञान की जानकारी का अच्छा परिचय देते है कल्याणी मान्यता चाहती है, सुखदा मे स्त्री की स्वामित्व की इच्छा का तत्व है । वह चाहती है उसका पति उसे रोके—टोके और जब ऐसा प्रतिरोध नही हो पाता तो झुँझलाकर उनके विरूद्ध हो जाती है सुखदा के लिए समस्या यही है कि उसका पति 'देवता या एकदम गऊ है।[66]

जैनेन्द्र के पात्र मानसिक अधिक है और मासल कम, क्योकि वह नही चाहते कि उनके पात्र डेढ—डेढ दो—दो मन के हों।[67] उनके पात्रो के अन्तरग को जानने के लिए अनुभाव सर्वोत्तम साधन है। जैनेन्द्र पात्रो का सक्षिप्त रूपाकार चित्रण करते हैं। प्राय वे पात्र का बाहरी हुलिया या वेशभूषा का विस्तृत चित्र नहीं देते । ऐसे स्थानो पर जैनेन्द्र का चयन प्रशसनीय है। वे चित्र मे कम रेखाए ही नही चुनते है अपितु ऐसी रेखाए चुनते हैं, जो व्यजक हो। सुनीता की सुन्दरता वे इतनी—सी बात कहकर व्यजित कर देते है—'एक बॉह, गोरी—गोरी बॉह'।[68] सत्या का हमे इतना ही परिचय मिलता है × × × × × 'सुनीता की छोटी बहिन है—आजकल कालेज मे इण्टरमीडिएट के दूसरे वर्ष मे पढती है।'[69]

---

64 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 26
65 वही, पृष्ठ – 28
66 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 22
67 जैनेन्द्र कुमार – साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृष्ठ – 157
68 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 51
69 वही, पृष्ठ – 64

कई स्थानो पर 'यथा नाम तथा गुण' की प्रणाली अपनाई गई है तथा गुण–विरोधी नाम रखे गए हैं यथा बिहारी उन्मुक्त है, मृणाल पवित्र है, भुवनमोहिनी सबको मोहित कर लेती हैं। जयन्त, वस्तुत नारियो मे जयन्त है, आदि। किन्तु फिर भी बिहारी बॅध जाता है सत्यधन धन का सत्य बन जाता है, सुखदा दुखदा बन जाती है, सुनीता के सुनीता होने मे सन्देह लगता है, हरि प्रसन्न मे न वास्तविक हरियाली है न प्रसन्नता, कल्याणी अकल्याणी बन जाती हैं।

जैनेन्द्र के ढाई पात्रो की बात अत्यन्त प्रसिद्ध है।[70] स्वय उन्होने कहा कि तीन चार व्यक्तियो से मेरा काम चल गया है।[71] अत उनके उपन्यासो मे पात्र–विरलता सहज ही उपलब्ध है। जैनेन्द्र पात्रो को आवश्यकतानुसार ही अवतरित करते है–'सुनीता' मे सत्या का अवतरण तब होता है जब हरि प्रसन्न को घर मे बॉध रखने के लिए काम की खोज की जाती है।

जैनेन्द्र के चरित्र–चित्रण मे तुलनात्मक प्रवृत्ति भी लक्षित होती है। यह तुलना कभी–कभी ही सम होती है, अधिकाशतया विषम होती है। 'सुनीता' के आरम्भ मे श्रीकान्त तथा हरि प्रसन्न का तुलनात्मक चरित्र–चित्रण है। दोनो की चारित्रिक विशेषताओ का अन्तर स्पष्ट किया गया है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे कुछ पात्र सवेदना के मापक के रूप मे प्रस्तुत हुए हैं। यह प्रधानता प्रमोद (त्यागपत्र) तथा वकील साहब (कल्याणी) मे है। ये पीडा भोगती नारियो के प्रति हमारी सवेदना का असाधारण कार्य निभाते है। प्रमोद और वकील साहब क्रमश मृणाल और कल्याणी की करूण गाथाएँ सहानुभूति के साथ सुनते हैं तथा सावेगिक मूर्च्छना की स्थिति मे उन्हे सहारा देते है। ये दोनो पात्र दु खी नारी जीवन के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते है तथा बीच–बीच मे आलोचनात्मक टिप्पणियॉ देते जाते है।

---

70 डॉ० राम रतन भटनागर – जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा पृष्ठ–170
71 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 5

जैनेन्द्र के पात्रो मे एक विशिष्ट प्रकार का अन्तर्विरोध तथा रहस्मयता पायी जाती है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य' मे अपने दो निबन्धो मे मृणाल के व्यवहार की औचित्य सबधी अनेक आशकाए उठाई है। अन्यत्र उन्होने उनके पात्रो को निष्क्रिय माना है।[72] जैनेन्द्र के पात्र प्राय नियतिवादी है। उनके कथा साहित्य मे प्राय एक दार्शनिक पात्र आवश्य रहता है। सुनीता पहले चौका वासन करने वाली है और अन्त मे कितनी रहस्यमयी हो उठी है। पतियो मे पुरुषोचित ईर्ष्या का अभाव है। जयन्त कश्मीर की सुषमा मे भी नव परिणीता की प्रणय याचना के प्रति आकर्षित नही होता है।[73] सुनीता भी एक ओर पतिव्रता का दम भरती है और दूसरी ओर हरि प्रसन्न के सम्मुख निर्वस्त्र होती है और जाते हुए हरिप्रसन्न की पद रज ग्रहण करती है। मृणाल भी जिस किसी को जब—तब ग्रहण कर लेती है तथा छोड देती है।

कथ।पकथ- शिल्प

घटना को अप्रधान बना देने पर चरित्र—चित्रण का आधार कथोपकथन मात्र रह जाता है।[74] कथोपकथन के माध्यम से हम चरित्रो के अन्तर्जगत मे प्रवेश करते हैं। उनमें उठने वाले भावावेग, उनके विचार और दृष्टिकोण को लेखक के विचारो और दृष्टिकोणो का प्रतिनिधि भी कह सकते हैं। ये भाव पात्रों की चेष्टाओ के अतिरिक्त उनकी वाणी द्वारा भी प्रकट होते हैं। जिन उपन्यासो मे घटनाओ की प्रधानता रहती है उनमे भी कथोपकथन कथा विकास के साधन बनते हैं। कथोपकथन से कथा मे नाटकीयता तथा रोचकता का समावेश होता है। कथोपकथन की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

---

72 आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी – उपन्यासकार जैनेन्द्र, (लेख) युग चेतना—मार्च 1955 पृष्ठ—22
73 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 85—87
74 डॉ० प्रभाकर माचवे – जैनेन्द्र ' व्यक्तित्व और कृतित्व (सपा० – सत्य प्रकाश मिलिद) पृष्ठ—43

मानवीय सस्कृति और सभ्यता के विकास के साथ–साथ भाषा जन्य अक्षमता का प्रहार होता रहा। शिल्प की दृष्टि से आज के सफल उपन्यासो और कहानियो मे जो वार्तालाप प्राप्त होता है वह कथानक को सहज–स्वाभाविक गति प्रदान कर चरित्र–चित्रण मे योगदान देता है। जैनेन्द्र कुमार के कथासाहित्य मे विविध प्रकार के कथोपकथनो का शिल्पगत प्रयोग हुआ है। अतएव उनके उपन्यासो मे स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक, सुन्दर, सरस, सजीव, वैयक्तिक, चरित्र–व्यजक कथोपकथन उपलब्ध होते है। वह निरन्तर प्रयत्न करते हैं कि उनके कथोपकथनो मे नवीनता, मौलिकता तथा सुन्दरता की सृष्टि हो। फलत उनके कथासाहित्य मे शिल्पगत सौन्दर्य दृष्टिगत होता है।

जैनेन्द्र के 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' तथा 'जयवर्धन' उपन्यासो मे कथोपकथन का पर्याप्त और कलात्मक प्रयोग परिलक्षित होता है। जैनेन्द्र जी ने चरित्र–चित्रण की दृष्टि से कथोपकथन का भरपूर प्रयोग किया है। एक आलोचक का तो यहॉ तक मत है कि जैनेन्द्र ने कथोपकथन से वातावरण–निर्माण का कार्य भी लिया है।[75] यद्यपि उन्होने इसका एक भी उदाहरण नही दिया। जैनेन्द्र ने वातावरण–निर्माण के लिए कथोपकथन का प्रयोग प्राय नही किया है।

यद्यपि जैनेन्द्र के कथासाहित्य मे कथानक स्वल्प है तथापि उसके विकास के लिए सवादो का प्रयोग किया गया है। 'त्यागपत्र' का अधिकाश कथा–विकास सवादो से हुआ है। लेखक प्रमोद को मृणाल के सामने रख देता है, तथा उनके पारस्परिक वार्तालाप से कथा विकसित हो जाती है।

निम्नलिखित सवाद मात्र सूचनात्मक हैं –

---

75 डॉ० घनश्याम मधुप – हिन्दी लघु उपन्यास, पृष्ठ–132

'मै वहाँ गया था

'धीमे से बोली 'मै जानती थी, तुम जाओगे।'

'अस्पताल मे भी गया था। तुमने मुझे नही लिखा।'

'क्या लिखती ?'

'अच्छा, मुन्नी कहाँ है?'

'मर गई।'

'मर गई । कब मर गई ?'

'दस की होकर मर गई । रोग से मरी, कुछ भूख से मरी ?'

' .मिशन वाले उसे माँगते थे। दे क्यो नही दिया ?'

' यहाँ कैसे आयी ?'

' लटकते–भटकते ही आयी।'[76]

'अनन्तर' का एक सूचनात्मक संवाद इस प्रकार है – मैने पूछा 'आपको कोई अपरा का पत्र मिला है? गुरू ने कहा . चेक उसने मेरे पास ही भेजे थे। उसके साथ के पत्र के अलावा तो और कोई नही मिला।"

"आपके पास अब उसका कितना रूपया है – बैंक मे जमा के अलावा ?

'होगा तीन–एक हजार। क्यो?'

'अहमदाबाद से अपने साथ वह कुछ पैसा ले गयी थी?'

"नही उल्टे दे गयी थी।"[77]

---

76 जैनेन्द्र कुमार – त्याग पत्र, पृष्ठ–84–85
77 जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर, पृष्ठ – 141

सवादो से चरित्र अभिव्यक्त होता है। व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ सवादो की शब्दावली, शब्द चयन, उनके कहने के ढग से स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार के सवाद अन्य पात्रो के विषय मे टिप्पणी देकर उसका चरित्र विकास करते हैं। बिहारी से वार्तालाप करते समय कट्टो के सवादो से अडिग आत्म विश्वास टपकता है।[78] वह बिहारी से कहती है कि 'तुम दिल्ली से व्यर्थ आये हो, सत्यधन के विवाह को पक्की नही कर सकोगे'। कट्टो के सवादो मे सरलता तथा सत्यधन के सवादो मे वक्रता लक्षित होती है। 'सुनीता' मे हरि प्रसन्न के कथन मे सहानुभूति तथा समर्पण की प्रवृत्ति है। श्रीकान्त –'नही –नही अपने पसन्द की चीज बतलाओ .. नही–नही जी, यह सब भी कोई बात होती है कि सब अच्छा लगता है .रोज क्या खाया करते हो, जल्दी करो जी[79]. हरि, माफ करना, देर हो गई

बात यह है घर मे कोई नौकर नही है ।[80] हरिप्रसन्न ने कुछ दृढ पडकर कहा, 'मै अन्न नही खाया करता हूँ श्रीकान्त अन्न मै खाया तो नही है लेकिन।[81] हरिप्रसन्न टहलते–टहलते रुक गया। उसने अप्रसन्नता से कहा–नौकर नही है?[82] नौकर क्यों नही है? 'हरि प्रसन्न सुनीता को जगल मे ले जाना चाहता है और इसके लिए सुनीता को तर्कों से परास्त करना चाहता है।[83]

जैनेन्द्र के सवाद सामान्यत पात्रो के अनुकूल हैं। सवाद पात्रो के पद तथा व्यक्तित्व के अनुरूप हैं। 'व्यतीत' मे बुढिया के सवाद अनिता तथा जयन्त के संवादो से भिन्न हैं। उसके तर्क वडे सीधे–साधे तथा ग्रामीण हैं।[84]

---

78 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 74
79 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता पृष्ठ – 40–41
80 वही, पृष्ठ – 47
81 वहीं, पृष्ठ – 47
82 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 47
83 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 201–203
84 जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत, पृष्ठ – 36

ये कथोपकथन पात्रो के अन्त सम्बन्धो तथा परिचय की प्रगाढता के अनुसार भिन्न हैं। प्रमोद और बुआ के वार्तालाप, प्रमोद–कोयले वाले अथवा मृणाल–कोयले वाले के वार्तालाप से भिन्न है। 'जयवर्धन' के सवादो मे चाहे वह इला के साथ है या हूस्टन के साथ अथवा आचार्य के साथ, उसकी दार्शनिक प्रकृति का परिचय मिलता है। जैनेन्द्र की कहानियो मे तथा उपन्यासो के सवादो मे विचार–प्रतिपादन, तर्क–वितर्क तथा चिन्तन की प्रधानता है – जैनेन्द्र के पात्र प्राय प्रतिभासम्पन्न सुशिक्षित तथा अधीत है। 'मुक्तिबोध' मे भी नीलिमा पिता–पुत्र के सम्बन्धो तथा दायित्व को लेकर अपना कथन इतना दीर्घ कर लेती है कि सहाय को कहना पडता है–खासा लेक्चर था[85] दर्शन से भरे यह सवाद अत्यन्त असाधारण तथा रहस्यमय लगते है × × × × × अच्छा हुआ आप आ गए। सुनिये न अब कुछ मेरा है न उनका है। सब जगन्नाथ जी का हे। जगन्नाथ के दरबार मे अनबन क्या?[86]

किचित् हॅसकर जितेन ने कहा——नही, मरना किसको नही है? क्या सबके मरने का पाप हमेशा भगवान को ही उठाते रहना होगा? तुम्हारे उस भगवान की हमे भी कभी सहायता करनी चाहिए—— ।[87]

दर्शन के सिद्धान्तो की ऊहा हरि प्रसन्न, मृणाल, कल्याणी, जयवर्धन, सहाय और प्रसाद के कथनो मे निरन्तर पायी जाती है। प्रमोद के दीर्घ स्वगत भाषणो मे भी चिन्तन को बोझिलता है। इसी चिन्तन प्रधानता को व्यक्त करने के लिए सवादो मे गतिरोध का समावेश किया गया है। सवाद बीच–बीच मे टूटे हुए है तथा एक–एक कर आगे बढते है। मानो पात्र सोच–सोच कर बोल रहे हो

---

85 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ–136
86 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ–32
87 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त पृष्ठ–29

अथवा उनके मानस के भँवर से कथन लहरो के धक्को से आगे बढते हो। पात्र कई बार स्वय प्रश्न करता है तथा स्वय उत्तर देता है अथवा कथन मे एक साथ कई प्रश्न करके झडी लगा देता है। जैनेन्द्र सवादो को स्फुट, अधखुले तथा अपूर्ण रखकर उनमे अपार व्यजना भर देते हैं । कई स्थलो पर अन्तराल तथा मौन से भी कार्य लिया गया हैं । मौन के रूप मे अन्तराल को सवादो मे लिया जाय या नही–इस पर मतभेद हो सकता है, परन्तु उन्हे सवादो का एक भाग मानना उचित है, क्योकि वह दो पात्रो के कथोपकथन के बीच आए है। पात्र की स्थिति वहॉ है मात्र वह बोलता नही, कभी–कभी मौन भी मुखर होता है। ऐसा मौन भी उद्धरण चिन्हो मे दिया गया है । जिससे लक्षित होता है कि लेखक उसे सवाद मे सम्मिलित करना चाहता है। कुछ सवाद ऐसे भी है जिनमे सन्दर्भ की प्रतीति के विशेष मे अर्थ गाम्भीर्य आ जाता है। कही–कही ये सवाद अत्यन्त असाधारण है परन्तु सन्दर्भ से जुडकर चमत्कारिक अर्थ देते हैं। सुनीता, सत्या, श्रीकान्त तथा हरि प्रसन्न सिनेमा हाल मे हैं। हरिप्रसन्न पानी लेकर आता है, श्रीकान्त को पानी की आवश्यकता नही है। पानी सत्या और सुनीता को चाहिए क्योकि वह प्यासी हैं। सुनीता कहती है———हरि बाबू पानी लाए हो? लेकिन सर्दी मे क्या पानी से खातिर होगी? सत्या पानी पी लेती है, पर नाक–भौं सिकोडकर कहती है, हा जीजी! पर जीजी, पानी कुछ खारा था, मानो वह पानी सत्या के अनुकूल नही और केवल सुनीता के लिए हो। हरि प्रसन्न सुनीता की उपेक्षा से किंचित् खिन्न होकर पूछता है–तो इसे मैं फेक दूँ? फेक क्यो दोगे? सुनीता हाथ बढाकर बोली लाओ मुझे दे दो, नहीं–नही मै भूल गयी थी, मुझे प्यास है।[88] मानो सुनीता को एकाएक याद आ जाता हो कि पानी तिरस्कार योग्य न हो जाय और उसे प्यास है । आरभ मे, सर्दी मे पानी से क्या खातिर होगी, का सन्दर्भ सुनीता की स्थिति से जुडा

---

88 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता पृष्ठ–79–80

हुआ है। जहा पति के रूप मे ही श्रीकान्त का उस पर अधिकार है तथा वैसी स्थिति मे वह पानी ग्रहण करने मे असमर्थ है। इसी प्रकार

'सुनीता' मे हरि प्रसन्न के प्रथम गृह प्रवेश के समय श्रीकान्त के कथन–'हरि चले आओ, अभी तो वह कोना बचा है। ठहरो–जाती कहॉ हो———और यह हरि प्रसन्न है' तथा सुनीता का कथन–'भला देखो इन्हे'[89] भी प्रसग–सम्बद्धता से गहन अर्थ ग्रहण कर लेते है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे जहॉ लम्बे कृत्रिम सवाद उपलब्ध है, वहॉ स्वाभाविक, सहज, बात–चीत का आत्मीय सवाद भी है। एक ही सवाद मे बिन्दु समूह के द्वारा चलती बात को अपूर्ण छोडकर सहसा दूसरी और फिर तीसरी बात भर दी गयी है। जैसे प्राय हम दैनिक जीवन मे कहते है तथा बोलते हैं । ए एक, दो ओ ओ देखो. ठीक कहॉ बोलता है। यहॉ बोलता हूँ आगे———[90]

न रूढ अर्थ मे भारतीय होगा–खडी क्यो हो, बैठ–जाओ ––जो काम हो––अच्छा–अच्छा । हो तो वनानि को आशा है————।[91]

जहॉ सवाद आकार मे छोटे हैं वहॉ वे बिहारी के दोहे के समान 'नावक के तीर' हो गए है। उनमे विचित्र चमत्कार देखने को मिलता है।

निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है———

मैने पूछा–बरतन मॉजना जानते हो?

'हॉ।'

'कहार हो'

---

89 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता, पृष्ठ–38–39

90 जैनेन्द्र कुमार–परख पृष्ठ–64

91 जैनेन्द्र कुमार–अनन्तर, पृष्ठ–73

'नही——

'फिर?

'कहार हूँ।'

'क्या लोगे?'

'पढे–लिखे मालूम होते हो—

'नही———जी—

'कुछ नही पढे?

'चार जमात पढा हूँ।[92]

किस भाति विद्युत सी गति से सवाद आगे बढते है। इसके अलावा छोटे–छोटे सवाद शीघ्र समाप्त हो जाते है———

'अच्छा तमारा——शायद मिलना हो।'

'तो मै जाऊं।'

'हॉ नमस्ते'

'नमस्ते।'[93]

सवादो मे नाटकीयता की वृद्धि करने के लिए कोष्ठक मे विभिन्न ध्वनियॉ, पात्र के हाव–भाव दे दिए गए हैं[94] यह प्रवृत्ति 'परख', 'सुनीता' तथा 'कल्याणी' मे विशेष रूप से पाई जाती है। कही–कही लम्बे भाषणो मे इन कोष्ठको से विराम अवकाश भी मिला है। कही–कही यह प्रवृत्ति आत्यन्तिकता को स्पर्श करने मे कृत्रिम हो

---

92 जैनेन्द्र कुमार–सुखदा पृष्ठ–14
93 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता पृष्ठ–53
94 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता पृष्ठ–53

गयी है। 'परख' मे कट्टो की मॉ बेटे से बात करते समय सम्भवत इतने अधिक बार बेटा सम्बोधन का प्रयोग करती है कि वहॉ पर कृत्रिमता आ जाती है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे कुछ ऐसे सवाद भी प्राप्त है जो साधारणतया हिन्दी कथा साहित्य मे दुर्लभ है। ऐसा करके वे अपनी मौलिकता का परिचय देते हैं।

द्विमुखी संवाद

'सुनीता' मे श्रीकान्त एक ही समय मे एक ही सवाद मे दो व्यक्तियो से बात करता है। सवाद इस प्रकार–

'अजी, सेर–भर तो लीजिए ही।'

'सेर, अच्छा सेर सही।' (मुडकर), चल सत्या, हमारे साथ ही चल। आज तेरी पढाई हुई कि नही?——और वही से साईस को आवाज देकर बुलाया, कहॉ हो भाई, यह सब गाडी मे रखो और देखो वह तागा खडा है, उसका सामान भी गाडी मे रख लो। (मुडकर) जीजा जी तागे वाले को कितने पैसे देने है।[95]

देशकाल तथा वातावरण निर्माण

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे देश–काल चित्रण व्यग्य रूप में विद्यमान है। अनेक ऐसे प्रसग तथा छिटफुट ब्यौरे जहॉ–तहॉ उपलब्ध हैं जो कथा साहित्य का समय तथा स्थान सकेतित करते हैं। 'सुनीता' मे दिल्ली का 'पॉच लाख के शहर मे, जहॉ वाइसराय भी रहता है–होना[96] तथा सुनीता–श्रीकान्त की फोटो पर 5/6/32 लिखा

---

95 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता पृष्ठ–218
96 जैनेन्द्र कुमार–सुनीता पृष्ठ –28

होना[97] 'त्यागपत्र' मे दुअन्नी, अठन्नी[98], 'कल्याणी' मे चैरिटी हॉस्पिटल तथा महिलाओ के डेपुटेशन का मिलना,[99] 'सुखदा' मे इवनिग न्यूज[100] व्यतीत मे ड्योढे दर्जे का सफर[101] 'जयवर्धन' मे प्रेम गोष्ठी[102] 'अनन्तर' मे हिप्पी लोग[103] आदि सकेत उस काल का बोध करा देते हैं– जिससे उपन्यास का कथानक सम्बन्धित है। 'मुक्तिबोध' तथा 'अनन्तर' मे दिल्ली के अतिरिक्त बम्बई, नैनीताल, अहमदाबाद तथा माउन्ट आबू नगर भी उल्लिखित हैं। 'परख' के कथानक मे गॉव के वातावरण का उल्लेख है। परन्तु बाद के उपन्यासो 'मुक्तिबोध' तथा 'अनन्तर' मे आकर यह महानगरो, होटलो ट्रक–काल्स, कैडलैक कारो तथा 'एयर कडीशन कोच' का हो जाता है।

जैनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य मे देशकाल की अपेक्षा वातावरण के निर्माण को अधिक ध्यान दिया है। पात्र तथा उनकी मन स्थिति का सम्बन्ध व्यापक देशकाल की अपेक्षा तात्कालिक परिवेश तथा आस–पास फैली वस्तुओ तथा व्यक्तियो से अपेक्षाकृत अधिक निकट का रहता है। अत कही–कही जैनेन्द्र के पात्र परिस्थितियो से जुडे वातावरण का कुशल चित्रण कर देते है। जैनेन्द्र के कथा साहित्य में विविध प्रकार के वातावरण मिलते है। वह वातावरण कही घरेलू जीवन से सम्बन्धित रसोइयो का है, कहीं अस्त–व्यस्त रहने वाले कुण्ठाग्रस्त पात्रो की कोठियो का है, तो कही मध्यवर्गीय सम्भ्रान्त सुशिक्षित व्यक्तियो के कमरो का है। जयन्त की कोठरी का वातावरण चित्रित करने के लिए लेखक विशद् आडम्बर नही रचता, केवल इतना लिखता है–'आगे कोठरी की दीवार है जो मैली है और धरती ऊबड खाबड है। मैंने दौडकर कुप्पी जलाई———वह झट खटोला लेकर

---

97 जैनन्द्र कुमार–सुनीता पृष्ठ –46
98 जैनन्द्र कुमार–त्यागपत्र, पृष्ठ –41
99 जनन्द्र कुमार–कल्याणी, पृष्ठ –21
100 जैनन्द्र कुमार–सुखदा पृष्ठ –28
101 जैनेन्द्र कुमार–व्यतीत पृष्ठ –67
102 जैनन्द्र कुमार–जयवर्धन, पृष्ठ –260
103 जैनन्द्र कुमार–अनन्तर, पृष्ठ –133

बैठकर बोली।[104] जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे केवल बाह्य चित्रण ही नही मिलता, बल्कि वह बाह्य चित्रण को काटकर तुरन्त पात्र के चिन्तन–मनन या क्रिया–कलाप पर कूद जाना चाहता है। कश्मीर का सुन्दर वातावरण है जिसकी शोभा को चित्रित करने के लिए कई पृष्ठ रगे जा सकते थे, परन्तु लेखक जैसे शीघ्रता मे है, कश्मीर के दिन आनन्द से बीते, कही एक जगह नही रहना था–कश्मीर की सुषमा बिखरी थी। आज यहॉ, कल वहॉ, इसमे पता ही नही चला कि आनन्द नही है, जैसे लहरे हो और हम तैर रहे हो। सब था, लेकिन नीचे क्या मुझमे ग्रन्थि थी ?[105] यह उद्धरण लेखक की प्रवृत्तियो का परिचायक है। वातावरण के सक्षिप्त चित्रण की प्रवृत्ति के बावजूद जैनेन्द्र कही–कही इन चित्रो को पूर्ण बनाने हेतु प्रयत्नशील दिखाई पडते हैं। ऐसा वातावरण–चित्रण भी बहुत नही हुआ है, केवल लेखक ने उसे सागोपाग बनाने की चेष्टा की है। जहॉ पूर्व चर्चित चित्रण रूप–रेखात्मक है, वही इनमे मासलता भरने की चेष्टा हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है, जहॉ कथाकार कोठरी का क्षेत्रफल तक देता मिलता है–'कोठरी बारह वर्ग फीट से बडी न होगी। बाहर थोडी खुली जगह ही जहॉ धोती, ॲगोछे सूख रहे थे। कमरे मे एक ओर कपडे चिने थे। उनके पास ही एक–दो बक्स थे। उनके ऊपर बॉस टॉगकर कुछ काम के कपडे लटका दिए गये थे। बुआ की पीठ की तरफ दो–एक टीन के आधे कनस्तर, दो चार हॅडिया और कुछ मिट्‌टी के सकोरे और टीन के डिब्बे थे। वहॉ पास कुछ पीतल, एल्यूमीनियम के बर्तन रखे थे और एक टीन की बाल्टी और पानी का घडा भरा रखा था, एक कोने मे कोयले की बोरी आधी झुकी हुई खडी थी।'[106]

---

104 जैनेन्द्र कुमार–व्यतीत, पृष्ठ–15

105 वही, पृष्ठ–82

106 जैनेन्द्र कुमार–त्यागपत्र पृष्ठ–54

लेखक ने शायद ही कोठरी मे होने वाली किसी निजी वस्तु को छोडा हो, यह पृथक् बात है कि उस ढग के मुहल्ले की कोठरी मे उतनी ही चीजे हुआ करती थी। इस प्रकार बाह्य वातावरण के चित्रण को भी जहॉ तक सम्भव बन पडा है, पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है, यथा—'विचित्र मुहल्ला था। वहॉ दिन शायद ही कभी होता हो। दिन मे रात होती थी और रात मे क्या होता पता नही। सटी—सटी कोठरियॉ थी। वे कोठरियॉ ही दूकाने थी और रात मे वे ही ख्वाबगाह। किसी पर सस्ती विसाहत की चीजे है तो किसी पर ताजी साग—भाजी और चुचके फल रखे हैं। कही नाई है, कही हाथ की मशीन लिए दर्जी बैठा अमरीकन तर्ज के कपडे सी रहा है। यहॉ आसमान भी इकबाली बन जाता है और काल की गिनती रातो के हिसाब से होती है।'[107]

प्रकृति—चित्रण

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे वातावरण के रूप मे प्रकृति—चित्रण का बहुत कम उपयोग है। इस सम्बन्ध मे डॉ० रामरतन भटनागर का मत द्रष्टव्य है—'उनमे प्राकृतिक चित्रपटी का अभाव है। उनके अधिकाश उपन्यासो मे हमे किसी प्राकृतिक दृश्य की पृष्ठिभूमि नही मिलती। वह तग गलियो एव नगर के गली—कूचो से बाहर नही जा पाते।'[108] कथाकार प्रकृति—चित्रण को अपने शिल्प का आधार बनाकर कथानक और पात्रो का परिवेशात्मक औचित्य प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार का एक चित्र 'जयवर्धन' मे उपलब्ध है। जय और इला समुद्र तट पर मिलते है। पृष्ठभूमि मे वातावरण का चित्रण इस प्रकार है—

---

107 वही, पृष्ठ—56

108 डॉ० रामरतन भटनागर — जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा पृष्ठ — 46

'सागर का तट था। सन्ध्या डूब चली थी। तट सूना था। लहरों पर लहरे लेकर सागर आता और पछाड खाकर पीछे लौट जाता। मै बराबर मे साथ '[109] उधर समुद्र मे लहरो का उद्वेलन है, उधर जय और इला भावार्द्र होकर एक दूसरे को पाना चाहते हैं। जय पुकारता है—इला! और इला महसूस करती है—'मेरे समूचेपन मे से बोल उठा—लो, लो, लो मुझे लो '[110] कही—कही वातावरण का सम्बन्ध पात्र की आन्तरिक मनोदशा से भी सम्बद्ध है। एक ओर चिन्तन—मग्न पात्र है और दूसरी ओर प्रकृति का फैला ऑचल। ऐसे प्रसगो मे प्राय प्रकृति के दूरस्थ चित्रण को लिया गया है, जिसकी पात्र की मन स्थिति से सगति बैठ जाती है। सुखदा अतीत के गर्भ से निकलकर अपनी कहानी पाठको को सुनाना अभी आरम्भ ही करती है कि उसका मन कैसा होने लगता है। उसकी दृष्टि दूर फैलाव विस्तार को देखती—देखती एक प्राकृतिक चित्र बना देती है जहॉ धरती ढल गई है, पार मैदान बिछा है पूरी सी मकानो की बिन्दिया—हरियाली इकट्ठी हो गयी है रग मटमैला . एक—दो पतली सफेद लकीर जो नदियो के निशान धुँधली रेखा से सिमट कर समाप्त हो जाता है। वही हमारा क्षितिज है।[111]

प्रकृति के आश्रय बिना भी कलाकार ऐसे वातावरण का निर्माण करने मे सक्षम है जिसमे पात्रो की खिन्नता, दु.ख, पीडा जैसे भाव व्यक्त हो जाते हैं। 'परख' मे ऐसे छोटे—छोटे चित्र पर्याप्त सख्या मे हैं। कट्टो, सत्यधन तथा बिहारी के वार्तालाप में जब—जब नीरवता आ जाती है, कथाकार भी तदनुसार वातावरण का चित्रण कर देता है। ऐसी स्थिति का वातावरण द्रष्टव्य है—

---

109 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन पृष्ठ – 128
110 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन पृष्ठ – 128
111 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा पृष्ठ – 4

'सुन्न सन्नाटा रहा। किसी का बोल नही आया। तीनो के मन से न जाने क्या–क्या निकलकर अलक्षित और अव्याहत रूप से उस कमरे की शून्यता मे व्याप्त हो गया। एक भारी त्रास सारे कमरे मे इन तीनो ही के जी को घोटने लगा।'[112] नीरवता के वातावरण को साकार करने मे कथाकार का शिल्प यहॉ बेजोड है।

भाषा–शैली

कथाकार जैनेन्द्र ने परम्परागत शैली से दूर हटकर नवीन शैली का सृजन किया है। उन्होने शिल्प के पुराने बन्धनो को तोडकर अपनी वस्तु उद्देश्य तथा मूक सवेदना के अनुरूप निजी भाषा–शैली का आविष्कार किया है। उनकी भाषा शैली उनकी करुणा की मूल सवेदना से उपयुक्त रूप से सम्बद्ध है, अत उसमे अपना निजी वैशिष्ट्य लक्षित होता है। अपनी भाषा शैली द्वारा वे वस्तु, पात्र–चयन तथा उनका चित्रण इस ढग से करते हैं कि उनकी अन्तिम परिणति एक विषादमय वातावरण मे होती है। जैनेन्द्र अपने सवेदना–बिम्ब की कुशल अभिव्यक्ति के लिए सक्षिप्त तथा तीखी शैली तथा सरल किन्तु वक्र, क्षिप्र भाषा को प्रयोग मे लाते है। जैनेन्द्र की भाषा शैली का शिल्प विभिन्न तत्वों से निर्मित हुआ है, अत शैली तथा भाषा दोनो का विवेचन अपेक्षित है।

कथाकार जैनेन्द्र ने अपने साहित्य में व्यास, प्रत्यक्ष, इतिहास तथा समाज, परोक्ष और नाटकीय दोनो कोटियों की शैलियो का प्रयोग किया है। 'परख' में विवरण देने के लिए प्रत्यक्ष या इतिहास शैली का आश्रय लिया है। 'परख' मे लेखक सत्यधन का परिचय देने मे अपनी ओर प्रत्यक्ष तथा पात्र की ओर इतिहास का आश्रय लेता है। सत्यधन का परिचय कथाकार स्वय देता है तथा उसकी विवेचना

---

112. जैनेन्द्र कुमार – परख पृष्ठ – 62

विस्तार से करता है। एक अन्य वकील मुशी होशियार बहादुर के विषय मे कथाकार पूरे ब्योरे देता हुआ लिखता है। मुशी होशियार बहादुर जिले के नामी–निरामी वकील थे। आमदनी खूब थी। दबदबा (?) भी खूब था[113]

व्यास, प्रत्यक्ष तथा इतिहास–शैली के अन्तर्गत वे पाठक सम्बोधन के भी शिकार होते है। 'परख' मे तो अनेक स्थलो पर कथाकार पाठक को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बोधित करता हैं। 'परख' मे सत्यधन हमारे 'महाशय'[114] है। 'सुनीता' मे यह प्रवृत्ति विद्यमान है, जब सत्या के विषय मे लेखक कहता है कि अठारह वर्ष की लडकी को आप अनजान मत जानिये।[115] यह प्रवृत्ति बहुत आगे तक 'विवर्त' मे भी उपलब्ध होती है। जब लेखक पाठको से कहता है——आइए एक तमाशा दिखाएँ।[116] प्रधानतया जैनेन्द्र की शैली मे मितव्ययिता विद्यमान है जिसमे सक्षिप्तता, साकेतिकता तथा व्यजना सम्मिलित है। कथाकार को बहुत विवरण विस्तार तथा खोलकर बात कहना पसन्द नही है। वह बात को सक्षेप मे कहकर सन्तुष्ट हो जाता है। सक्षिप्तता की प्रवृत्ति ने कथानक–कथन, पात्रो के जीवन–चरित्र उनके रूप चित्रण, सवाद, वातावरण के रेखन, वाक्य–रचना तथा शब्दो के रूप–निर्माण का एक प्रसग प्रस्तुत किया है———'सार सक्षेप यह है मित्र के पुत्र बैरिस्टर नरेशचन्द्र वहॉ आये, परिवार की दो महिलाएं वहॉ आयी। दो रोज रही और प्रसन्न लौटे। फिर दोनो ओर से तैयारियॉ हुई और जल्दी ही विवाह हो गया।[117] ऐसा प्रतीत होता है कि स्थूल चित्रण की ओर कथाकार बिलकुल रुचि नही रखता है।

---

113 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 7
114 वही पृष्ठ – 8
115 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 206
116 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त पृष्ठ – 8
117 वही, पृष्ठ – 19

चरित्रो के शील–निरूपण तथा रूप–चित्रण मे मितव्ययिता का सुखद परिणाम यह हुआ कि जैनेन्द्र जी के साहित्य मे हमे पात्र आकर्षित करते है। एक ऐसा चित्र प्रस्तुत है–'बडी प्यारी दिखती है तमारा। पैतीस बरस की होगी। ब्याह नही किया है, आर्टिस्ट है।[118]

जैनेन्द्र का काम सक्षिप्तता द्वारा इसलिए चल जाता है क्योकि इस सक्षिप्तता मे व्यजना के प्राण हैं। वह थोडा कह कर भी वहुत कुछ कह जाते है, कल्याणी के समान वे 'चार मे तीन हिस्से बात की झनक ही रखते है और समझते है कि समझने को काफी हो गया। इस व्यजना शक्ति को आलोचको ने अत्यत शक्तिशाली तथा आकर्षण से पूर्ण माना है।[119]

जैनेन्द्र बहुत सी बात सकेत से भी कह देते है, यह उनकी व्यक्तिगत रुचि है। कथाकार ने साकेतिक शैली का विशेष रूप से वहॉ प्रयोग किया है, जहॉ वे गोपनीय बात कहना चाहते है। मृणाल और शीला के भाई के प्रेम–सम्बन्धो का आभास–साकेतिक शैली मे दिया गया है। लेखक इस कला मे दक्ष है। प्रमोद के द्वारा पत्र का माई डियर (My dear) दिखाकर पाठको को वह उद्घाटन कर देता है, कि वह प्रेम–पत्र था।

जैनेन्द्र चिन्तनशील कलाकार है। वह कुछ अबूझ तथा वास्तविकता से परे को पकडना चाहते हैं। कथा साहित्य के सन्दर्भ मे वास्तव को सत्य की सीमा पर स्वीकार नही करती तथा सत्य को वास्तव से परे भी मानकर चलती है। डॉ० मक्खन लाल शर्मा के शब्दो मे–'प्रतीक मे इतनी गहन व्यजना–सकुलता एव देशकाल, परिस्थिति निरपेक्ष सार्थकता रहती है'–[120] जैनेन्द्र अपनी प्रतीक शैली के द्वारा बहुत गूढ बात कह जाते हैं तथा साफ बचे भी रहते है। जैनेन्द्र की

---

118 जैनन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 28
119 डॉ० राम रतन भटनागर – साहित्य और समीक्षा पृष्ठ – 173

शैली मे एक विचित्र रहस्य तथा भेद पलता है। यह रहस्य तत्व साकेतिकता, व्यजना तथा प्रतीकत्व से आया है। जैनेन्द्र के कथनो मे कही–कही गूढ आशय आ जाता है। दर्शन के प्रसगो मे वे विशिष्ट प्रकार के चिन्तन की बात करने लगते है जो साधारण पाठक की समझ मे नही आती।

अनिश्चयात्मकता

शैली को रहस्यमय बनाने का एक उपादान अनिश्चयात्मकता है। कथाकार कही भी निश्चित सुस्पष्ट कुछ नही कहता है। स्थानो के वारे मे अमुक से काम चला देता है। कई बार अपनी स्मरण शक्ति के धोखे से त्रस्त, वह कहता है 'पता नही यह था या वह' अथवा याद नही आता का सहारा लेता है। बिहारी सत्यधन को लिखता है कि वह लोग अमुक दिन कश्मीर जा रहे है।[121] प्रमोद को अपनी बुआ के बारे मे ठीक याद नही कि वह नवी क्लास मे थी या दसवी मे। अपनी आयु भी वह अनुमानत ही बताता है कि बारह बरस की हो रही होगी।[122]

जैनेन्द्र चिन्तनशील लेखक हैं। वे सोचते–सोचते लिखते है और लिखते–लिखते सोचते हैं, जिसके कारण जैनेन्द्र की शैली मे तर्क–वितर्क तथा प्रश्नाकुलता का वैशिष्ट्य आ गया है, चाहे स्वय लेखक वस्तु कथन कर रहा हो या किसी पात्र का ब्यौरा दे रहा हो अथवा नाटकीय विधि के अन्तर्गत, पात्र स्वय सोच रहा हो अथवा एकाधिक पात्रो मे कही वार्तालाप हो, सब स्थानो पर हम इनकी दृष्टि सप्रश्न पाते हैं, मानो वह किसी अतिम निर्णय पर पहुँच मे असमर्थ हो अथवा प्रश्नो के माध्यम से पाठक के सामने निर्णय लेने की दुविधा

---

120 डॉ० मक्खन लाल शर्मा – हिन्दी कहानी रचना प्रक्रिया का सदर्भ (लेखक) सचेतना मार्च 1970 पृष्ठ – 171–172

121 जैनेन्द्र कुमार – परख पृष्ठ – 24

122 जैनन्द कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ – 13

को प्रस्तुत करते है। दुविधात्मक स्थिति मे पडकर सत्यधन सोचता हें कि वह अपने जीवन की धुरी को किस दिशा मे गतिशील रखे। 'मुक्तिबोध' मे राजनैतिक नेता के मस्तिष्क मे चल रहे अन्तर्द्वन्द्व मे अनेक प्रश्न है। सत्यधन के मन मे अनेक तर्क–वितर्क के प्रश्न फूट पडे है। 'यह क्या हुआ ? मै कैसे सामने पड गया ? बिहारी क्या सोचेगे? आखिर मैने क्या कहा ? यही कि वह मुझे स्वीकार करती या नही ? तो क्या मैं उसे अपनाऊॅगा ? क्या अपनाना होगा? सवादो तक मे प्रश्नो की आवृत्ति है।

कट्टो ने पूछा –जाऊॅ ?

'जाओ ।'

'जाऊॅ'

'जाओ'

'जाऊॅ'

'जाओ'। वह चल गई[123]

तुलनात्मक शैली

जैनेन्द्र अपनी शैली के शिल्प–निर्माण मे तुलना का पर्याप्त सहारा लेते हैं। यह तुलना सम भी है तथा विषम भी। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "जीवन के दो पहलुओ को पहले विरोध मे रखकर फिर विरोध के भीतर से एक समाधान निकालने की शैली उनके सभी उपन्यासो में मिलती है।[124] जैनेन्द्र जी की इस द्वन्द्वात्मक स्थिति के कारण ही उनके कथा साहित्य में नाटकीय

---

123 जैनेन्द्र कुमार – परख पृष्ठ – 47
124. जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 43

आकर्षण की योजना हो गयी है। जीवन मे घटित होने वाले दो विरोधी आदर्शो को उन्होने दो पुरुष पात्रो के माध्यम से व्यक्त किया है और नारी–पात्रो द्वारा वे चुनाव का कार्य लेते है। इस प्रकार जैनेन्द्र जी के उपन्यास और कहानियो मे नारी पात्र तो एक ही है पर पुरुष–पात्र प्राय एक या दो होते है, एक नारी पात्र और दो पुरुष–पात्रो का सयोग अत्यन्त नाटकीय स्थिति है। इस शैली को जैनेन्द्र जी ने बहुत अपनाया है।

समर्थ–भाषा

शैली के समान जैनेन्द्र की भाषा अत्यन्त समर्थ है। वे विचारो के ही नही लेखनी के भी धनी हैं। उनकी भाषा भावानुमार्मिक है। वे पात्रो के मन के अन्तर्द्वन्दो, भीतर घुमडते भावो को अभिव्यक्ति देने मे पूर्ण समर्थ है। मिस्टर सहाय के मन मे अबूझ विस्मय भाव है जिसे भाषा ने सफलता से व्यक्त किया है' . मेरे लिए वह अनुभव था। लेकिन वह सब तत्व दर्शन जाने मेरे भीतर कहॉ सिमट कर रह गया था। मुझे विस्मय हुआ जब देखा कि मेरा मन भर आ रहा है।.. विधान निर्मम होता है, विधाता भी निर्मम होता है। उसके तले हम सबको भी ममताहीन और दृढ होकर चलना है यह सारा तर्कनिष्ठ भाव किसी तरह भी मेरे भीतर सिर नही उठा सका और मैं अवसन्न रह गया, यह अनुभव करके कि....... ।[125]

जैनेन्द्र के भाषा की रूपायन शक्ति भी दार्शनिक है। जैनेन्द्र अपनी भाषा–सामर्थ्य से किसी भी भाव, दृश्य, वस्तु या स्थिति को हमारे सम्मुख सहज ही साकार कर देते है। कट्टो की ऑखो का चित्रण इस प्रकार है.. 'ऑखे आंसुओ से खूब धोई गई हैं और फूल आई हैं जैसे फूली–फली (?) धुली कमल की दो लाल पंखुडियॉ हो,

---

125 जैनन्द्र कुमार – मुक्तिबोध पृष्ठ – 16–17

लेकिन उनके सारे भेद और सारे स्नेह को (?) पलकें मजबूती से ढके हुए है।[126]

भाषा की रूपायन क्षमता बनाने मे जैनेन्द्र की पैनी दृष्टि तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण भी योग देते हैं। वे वातावरण, वस्तु या व्यक्ति की छोटी सी छोटी बात भी अकित कर देते है। 'सुखदा' मे कान्त—सुखदा रात भर नयी बोलते, प्रात काल सुखदा कमरे मे जाती है, कमरे के वर्णन मे लेखक यह कहना नही भूलता—'बराबर तिपाई पर सिगरेट का टुकडा धुँआ देते—देते गद्दे पर रखा बुझ गया था।[127]

जैनेन्द्र की भाषा की रूपायन—शक्ति का रहस्य उनकी बिम्ब योजना है। मूल सवेदना—बिम्ब को साकार करने के लिए ही भाषा का माध्यम ग्रहण किया जाता है। जैनेन्द्र अनेक कौशलो का प्रयोग कर इन बिम्बो को सामने लाते हैं। आहत अभिमान से झुँझलाए व्यक्ति के लिए कहा है 'उसका मन अन्दर ही अन्दर झुझला रहा था जैसे उसे हार मिली हो, उसकी बुद्धि के फन को छेड दिया गया हो।[128]

कथाकार जैनेन्द्र कहीं—कही चाक्षुष, सुनने तथा सम्पर्क सवेदनाओ के माध्यम से अपनी भाषा की क्षमता का परिचय देते हैं। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है— 'रेशमी साडी की धानी आभा ही कॉपती हुई झलमल, झलमल हरि प्रसन्न की ऑखो मे रह गयी और उसके कानो में साडी की तरह पर्तो को छूकर जाती हुई समीर की सरसराहट भरने लगी। मानो कुछ हौले—हौले बज रहा हो। कुछ भीना—भीना बरस रहा हो और भीतर से उसे भिगो रहा हो।[129]

---

126 जैनेन्द्र कुमार – परख पृष्ठ – 43
127 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा पृष्ठ – 44
128 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त पृष्ठ – 111
129 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 67

जैनेन्द्र की भाषा सरल वक्रता सिद्ध है। सरल, छोटे–छोटे वाक्यो मे वह गहरी बात कह जाते है। भाषा पाठक को मूक रूप से अनेक सुझाव देती है। एक विशिष्ट दिन के पश्चात् मृणाल प्रमोद से स्वय को बुआ कहने को मना करते हुए कहती है–'मै बुआ हूँ। बुआ मुझे अच्छा नही लगता। प्रमोद तू मुझे जीजी कहा कर जीजी। शीला मुझे जीजी कहती है मै नही बुआ होना चाहती। बुआ छी ! देख चिडिया कितनी ऊँची उड जाती है मै चिडिया होना चाहती हूँ।[130]

जैनेन्द्र की भाषा बडी सरल, सीधी–सादी है। यद्यपि उनमे चिन्तन का भार वहन करने की अनुपम शक्ति है। जैनेन्द्र ने भाषा को कठिन नही होने दिया है। वक्ता बात को कहकर पुन उसे संशोधित करता है, जैसा हम प्राय दैनिक जीवन मे करते हैं। कल्याणी की कहानी कहते हुए वकील साहब कहते है–'हाल की तो बात है। ऐसा लगता है जैसे कल की हो। न सही कल की पर दो ढाई बरस से अधिक नही हुए।[131] गहन से गहन चिन्तन मे भी भाषा सरल, अक्लिष्ट, सुगम रही–यहॉ किसी को यह कहने का लोभ नही है कि वह सच्चरित्र है। यहॉ सच्चरित्र के अर्थ मे मानव का मूल्य नही माना जाता। दुर्जनता मानो कीमती है। यहॉ उसी हिसाब से मानव की घट–बढ की है। कलई वाला सदाचार यहॉ खुलकर उधड रहता है। यहॉ खरा कचन ही टिक सकता है कचन की मॉग नही है। पीतल से परहेजी नही है।[132]

वाक्य रचना

वाक्य रचना का शैली से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। वे प्राय सरल वाक्यो का प्रयोग करते हैं क्योकि उनका शिल्प सूक्ष्म आन्तरिक

---

130 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ – 15
131 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ – 3
132 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ – 93

एव व्यजक है। जैनेन्द्र प्राय छोटे–छोटे वाक्यो का प्रयोग करते है। जयवर्धन को देखा। मिला। बात हुई। व्यक्ति नही, वह घटना है। वह दो व्यक्तित्व स्पष्ट नही है कहीं भीड खो भी सकती है।[133] जैनेन्द्र जी के वाक्य रचना शैली के अनुरूप तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिए अत्यन्त उपयुक्त है।

शब्द भण्डार

जैनेन्द्र भाषा को स्वय मे कुछ न मानकर भावो की अभिव्यक्ति का साधन मानते है। इसलिए उन्होने शब्द चयन मे भाषा की कृत्रिम सीमा का बन्धन नही माना। उनकी भाषा मे तत्सम्, तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्द उपलब्ध हैं। जहॉ अग्रेजी मे स्कीम[134] म्यूजियम[135], चैरिटी हॉस्पिटल[136], डेप्युटेशन[137], स्टडी[138] जैसे तथा उर्दू मे 'कुबूल'[139], गनीमत[140], माफिक[141], फर्ज[142], अर्ज[143] जैसे सुपरिचित शब्द आए है, जिन्हे साधारणतया समझा जा सकता है। वही अक्सेट[144], इकनामिक डिपेनडेस[145], आओसिल[146], ट्रान्जिट[147], तथा अकीदे[148], फाहिश[149],

133 जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन, पृष्ठ – 17
134 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 11
135 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 11
136 जैनन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ – 21
137 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 21
138 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 9
139 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ – 88
140 जैनन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 20
141 जैनन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ – 20
142 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 47
143 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध, पृष्ठ – 48
144 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ – 8
145 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी, पृष्ठ – 86
146 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 32
147, जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ – 95
148 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 40
149 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ – 70

मुल्तवी[150], मुस्तहक[151], आजिज[152], मुतफर्रक[153] जैसे अग्रेजी तथा उर्दू के शब्द भी आए है जिन्हे साधरणात उस भाषा का ज्ञान न रखने वाला समझ नही सकता। अग्रेजी के शब्द कही रोमन लिपि बिना हिन्दी अर्थ कोष्ठक मे दिये[154] लिये गए है, कही उनके रोमन लिपि के रूप के साथ हिन्दी पर्याय भी दे दिया गया है।[155]

भाषा के शब्द प्रयोगो मे एकरूपता का अभाव है। उनका रूप कही एक प्रकार है कही दूसरे प्रकार का। मोहर[156] मुहर[157] नाराजगी[158] नाराजी[159] गिरस्ती[160] गिरिस्ती[161] गिरस्तिन[162] गृहस्थ[163] गृहस्थी[164] गृहिस्थिनी[165] ढारस[166] ढाढस[167] कुछ ऐसे ही रूप हैं। डॉ रामचन्द्र तिवारी जैनेन्द्र की भाषा के विषय मे निम्नलिखित विचार व्यक्त करते हुए लिखते है।

जैनेन्द्र का सोचने का अपना ढग है अपना व्यक्तित्व है। उनकी भाषा शैली उनके इस निजीपन का प्रतीक है। उनके गद्य मे चिन्तन और चिन्तन प्रक्रिया दोनो ही साकार हुए हैं। इस दृष्टि से समूचे हिन्दी साहित्य मे उनका गद्य अप्रतिम है।[168]

---

150 जैनन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ–51
151 जैनन्द्र कुमार – कल्याणी पृष्ठ–117
152 जैनन्द्र कुमार – विवर्त पृष्ठ – 141
153 जैनन्द्र कुमार – मुक्तिबोध पृष्ठ – 47
154 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–60
155 जैनेन्द्र कुमार – 'परख पृष्ठ–113
156 जैनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–7
157 जेनेन्द्र कुमार – परख, पृष्ठ–7
158 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र पृष्ठ–28
159 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–65
160 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा पृष्ठ–50
161 जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ–42
162 जेनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–12
163 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–26
164 जेनन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–129
165 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ–101
166 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा, पृष्ठ–1
167 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त, पृष्ठ–58
168 डॉ० रामचन्द्र तिवारी – हिन्दी का गद्य साहित्य, पृष्ठ–445

उद्देश्य–प्रतिफल– –शिल्प

जैनेन्द्र उद्देश्यवादी कलाकार है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने उन्हे आदर्शवादी कलाकार नही माना[169] वरन् भावुक तथा कल्पना जीवी लेखक कहा है। डॉ० नगेन्द्र ने अपने लेख मे कथाकारो की एक सभा आयोजित की थी जिसमे जैनेन्द्र कहते है–'मेरे मन मे कुछ है जो बाहर आना चाहता है – और उसको कहने के लिए उपन्यास लिख बैठता हूँ। वह है जीवन की अखण्डता की भावना। मुझे अनुभव होता है कि जीवन और जगत् जैसे मूलत एक अखण्ड तत्व है। आज इसकी अखण्डता खण्डित हुई सी लगती है, दरअसल है नही आज मानव इसी भ्रम मे पडकर भटक रहा है। जीवन की कुन्जी खो गई है और कुन्जी है यही अखण्डता का मानव। इसे ढूढने का साधन है केवल प्रेम, प्रेम या अहिसा। प्रेम या अहिसा का अर्थ है, दूसरे के लिए अपने को पीडा देना–पीडा मे ही परमात्मा बसता है। मेरे उपन्यास आत्मपीडन के साधन हैं। पाठक को जितनी आत्मपीडन की प्रेरणा देते हैं, जिनका उसके ह्रदय मे प्रेम पैदा करके जीवन की अखण्डता का अनुभव कराते है उतने ही सफल कहे जा सकते है।[170]

उद्देश्य 'प्रति फलन' पतन की दृष्टि से लेखक का कथावस्तु चयन उल्लेखनीय है। वह इसमे सूझ बूझ से काम लेता है। कथानक की अतिम परिणति भी लेखक की उद्देश्यवादी दृष्टि के अनुरूप हुई है। 'त्यागपत्र' का अत जज रामदयाल के रूप मे कथाकार के दृष्टिकोण का परिचायक है। त्यागपत्र पर सही करना समाज के मान्यताओ तथा आदर्शों के खोखलेपन का परिचायक है, मानो जज राम दयाल सहमत है कि समाज मे वह रहता है अथवा जिसका वह

---

169 आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य, पृष्ठ – 209
170 डॉ० नगेन्द्र – आस्था के चरण, पृष्ठ – 299–300

प्रतिनिधि है वह आततायी है और मृणाल जैसी स्त्रियो की दशा के लिए उत्तरदायी है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे पत्रो का बहुत अधिक प्रयोग हैं। कही—कही पत्रो ने 'उपन्यासकार' के विविध उद्‌देश्यो मे से कतिपय की अभिव्यक्ति की है। सत्यधन को लिखे पत्र मे घरेलू बातो के अतिरिक्त भगवद्‌दयाल बहुत से विचारात्मक सूत्र भी देते हैं। इसमे सामाजिक दायित्वो का उल्लेख है। जैनेन्द्र जी के बाद के साहित्य मे विवाह के बारे मे पत्रो का ऐसा उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार दृष्टिगत नही, यद्यपि उस पत्र मे 'सुनीता' तथा 'त्यागपत्र' मे विवाह को सामाजिक तथा निभाने योग्य सस्था माना गया है।

जैनेन्द्र ने अपने बहुत से सिद्धान्तो को अपने पात्रो के माध्यम से व्यक्त किया है। जैनेन्द्र ने कथावस्तु की अपेक्षा चरित्रो का अधिक उपयोग किया है। जैनेन्द्र के चरित्र प्रतीकात्मक है। वे सिद्धान्त के किसी न किसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। सत्यधन मे व्यावहारिकता का, बिहारी मे आदर्श का, कट्‌टो मे त्यागमय प्रेम का, हरि प्रसन्न मे हिसा का, श्रीकान्त मे अहिसा का, सुनीता मे आदर्श सती का, प्रमोद मे सामाजिक व्यवस्था का, मृणाल मे सामाजिक विडम्बनाओ के अत्याचार को सहने वाली नारी का प्रतीकत्व है। जैनेन्द्र उद्‌देश्य प्रतिफलन के लिए पात्र की मन स्थिति अन्त या बाह्य का प्रयोग करते हैं। जितेन जानता है कि मोहिनी कैद है। उसने सख्त हिदायत दी थी कि किसी को पास जाने की जरूरत नही और न ही रियायत करने की। किन्तु उसका मन उद्विग्न रहा। वह जीप मे बैठकर जमुना की ओर चल देता है।[171] जैनेन्द्र इस मन स्थिति पर अपना दर्शन जमा देते है कि प्रकृति पुरुष की सहायिका है। वह विधि—निषेध, अच्छे—बुरे से परे है।

---

171 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त पृष्ठ – 200

पात्रो के कथनो तथा सवादो द्वारा भी लेखक का दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। यो तो पात्रो के कथन भी सवादो मे ही आते है किन्तु फिर भी दोनो मे एक सूक्ष्म सा अन्तर है। कथनो मे हम पात्र के उस सवाद को लेवे जिसमे वह बोलता रहता है तथा दूसरा पात्र अपेक्षाकृत मौन रहता हैं। अपने कथन को विस्तार से कहते समय प्राय वक्ता दूसरे पात्र की उपस्थिति का ध्यान नही रखता मानो वह हो ही नही। यदि दूसरा उपस्थित पात्र कही बोलता भी है तो मात्र हॉ, हूँ या तनिक से कथन से स्वय को सन्तुष्ट कर लेता है। मानो दूसरे वक्ता पात्र को अवकाश दे रहा हो।

'सुनीता' मे हरि प्रसन्न श्रम, उत्पादन, वस्तुओ के मूल्यो की विस्तृत चर्चा करता है। हरि प्रसन्न ऐसा आभास देता है कि वह मूल्य बदलने वाली विचारधारा का प्रतिनिधित्व कर रहा हो। वह क्रान्ति की भी चर्चा करता है। यद्यपि व्यावहारिक रूप मे वह क्रान्ति के लिए सुनीता को जगल मे ले जाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। हरिप्रसन्न के वक्तव्य मे हम क्रान्ति का सैद्धान्तिक विवेचन पाते है।[172] श्रीकान्त रूपये पर स्वामित्व की व्यर्थता को सिद्ध करते हुए अपना कथन प्रस्तुत करता है।[173] अन्यत्र श्रीकान्त सुनीता की उपस्थिति मे साधुत्व के खोखलेपन को लक्ष्य करता है। वह इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रकट करता है कि स्त्री पुरुष की परस्परता मे ही व्यक्तियो का हितलाभ है।[174] 'त्यागपत्र' मे मृणाल उपन्यास के उत्तर–भाग मे लम्बे–लम्बे वक्तव्य देती है, यद्यपि उसके सामने प्रमोद उपस्थित रहता है। मृणाल कोयले वाले के प्रसग के माध्यम से स्त्री के शाश्वत धर्म, सेवा तथा प्रेम का परोक्षत प्रतिपादन करती है। उसके कथनो मे व्यग्य है कि अप्रेम पाप है।[175]

---

172 जेनेन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ – 30–31
173 जेनन्द्र कुमार – सुनीता, पृष्ठ –33
174 जेनेन्द्र कुमार – सुनीता पृष्ठ – 21–22
175 जैनन्द्र कुमार – त्यागपत्र, पृष्ठ – 67–68

पात्र के कथन की अपेक्षा छोटे–छोटे सवादो मे उद्देश्य प्रतिफलन अधिक कलात्मक है। 'कल्याणी' इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। उसके छोटे–छोटे सवादो मे सूत्रात्मक रूप मे बहुता सा दर्शन भर दिया गया है।

जैनेन्द्र जी ने अनेक विचारो तथा दर्शन को अपने कथा साहित्य मे समाहित किया है। उन्होने इसके प्रतिफलन के लिए प्राय सभी प्रमुख तत्वो, वस्तु, चरित्र–सवाद आदि का सहारा लिया है।

जैनेन्द्र के कथा साहित्य मे प्रचलित परम्परा का निर्वाह न होकर बल्कि नवीन परिपाटी का सृजन हुआ है और यही परिपाटी शैली का मूलाधार है। इसी के माध्यम से हम रचनाकार के मनोलोक मे प्रवृष्टि हो जाते है और उसके स्वभाव, सस्कार एव अन्त प्रेरणाओ की जड को पकड पाते हैं। इसी के अन्तर्गत मन के चेतन, अचेतन व अवचेतन मे मानसिक प्रभाव सन्निहित होते हैं। जैनेन्द्र जी के साहित्य मे जो बारीकी आई है, उसका आधार उनके मूलग्राही विचार ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने युग के विचारो का बडी सार्थकता से दोहन किया है।

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे जैनेन्द्र कुमार की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सास्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा शिल्पगत चेतना के परिप्रेक्ष्य मे युगीन परिस्थितियो का अध्ययन किया गया है, साथ ही युगीन परिवेश की अभिव्यक्ति का क्रमिक प्रतिपाद्य जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य मे दिखलाते हुए युगानुसार परिवर्तित सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सास्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और शिल्पगत चेतना का प्रभाव उनके कथा साहित्य मे लक्षित किया गया है। इन युग चेतना के सवाहक स्वरो को जैनेन्द्र कुमार के जीवन और व्यक्तित्य तथा साहित्य से सम्बद्ध करके विवेचित किया गया है।

जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य मे सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, आर्थिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और शिल्पगत युग चेतना की किस सीमा तक अभिव्यक्ति हुई है, यही इस शोध–प्रबन्ध का उद्देश्य रहा है। साहित्य मे युग भावनाओ की अभिव्यजना युग–चेतना कहलाती है। चेतना स्वय को और अपने आस–पास के वातावरण को समझने तथा उसका मूल्याकन करने की शक्ति है। साहित्य युग चेतना से जुडा हुआ होता है। वह अपनी उपजीव्य सामग्री युग से ग्रहण करता है और कथाकार या साहित्यकार उस युग–बोध को सम्प्रेषित कर एक शाश्वत रसात्मक सृष्टि करता है। जैनेन्द्र कुमार का कथा–साहित्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जैनेन्द्र कुमार का जन्म ऐसे समय मे हुआ जबकि उन्होने भारत परतन्त्र रूप मे देखा। उनका जीवन एक ओर पृष्ठभूमि से सम्बद्ध दिखायी पडता है तथा दूसरी ओर परम्पराओं से भी निकट का सम्बन्ध जोडे हुए था। ऐसी ही पृष्ठभूमि मे उन्होने युग चेतना से सपृक्त होकर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सास्कृतिक नीरस सिद्धान्तों को साहित्य का अग

बनाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया कि उनकी नीरसता का तो परिहार हो ही गया साथ ही एक विशाल युग का चित्रपट साकार हो उठा।

उन्नीसवी शताब्दी मे सामाजिक, धार्मिक एव सास्कृतिक जीवन मे क्रान्ति और नवीन खोजो के कारण आमूल परिवर्तन हुए। इस परिवर्तन मे एक नूतन चेतना पून्जीभूत थी जिसकी अभिव्यक्ति परम्परागत साहित्यिक अभिधान मे सम्भव न थी। इसलिए परिवर्तनशील युग चेतना के परिपार्श्व मे सामाजिक मूल्यो के अभिव्यजनार्थ गतिशील साहित्यिक विधा कथा साहित्य का जन्म हुआ जो आज भी अपने दायित्व का निर्वाह कर रही है। यही कारण है कि जैनेन्द्र कुमार अपने युग का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करने के लिए काव्य से कथा साहित्य मे आये और अपनी कृतियो मे घटनाक्रम एव पात्रो मे युग के प्रतिबिम्ब–स्वरूप उन्होने कथा साहित्य को अपनी सूक्ष्म दृष्टि की सहायता से युग साक्ष्य के रूप मे विकसित किया। यूँ तो जैनेन्द्र कुमार हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र मे पहले–पहल चिन्तक के रूप मे आये लेकिन एक बार अपनी प्रतिभा के इन उपकरणो की क्षमता जान लेने के बाद उन्हे चिन्तन के मुखौटे की कोई आवश्यकता न पडी। जैनेन्द्र कुमार को युग चितेरा होने मे अपनी प्रतिभा का उल्लास दीख पडा। उनकी कृतियॉ – 'परख', 'सुनीता', 'सुखदा', 'फॉसी', व्यतीत', 'जैनेन्द्र की कहानियॉ' और 'अनन्तर' आदि ऐसी रचनाएँ है जिनमे सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा शिल्पगत चेतना का रूप मिलता है। जैनेन्द्र कुमार सच्चे अर्थों मे युग चेतना के प्रतिनिधि कलाकार हैं जिनकी कृतियॉ भारतीय जनमानस की प्रतिच्छवि है।

सामाजिक स्तर पर जैनेन्द्र कुमार ने स्त्री–पुरुष सम्बन्धो को लेकर उनसे सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ की ओर दृष्टिपात् किया। परिवार, ब्रह्मचर्य, विवाह, प्रेम–विवाह, वैवाहिक जीवन मे प्रेम,

काम–भावना, वेश्यावृत्ति आदि विषयो का विवेचन उन्होने अपनी अनुभूतियो के आधार पर प्रस्तुत किया। जैनेन्द्र कुमार ने सामाजिक मर्यादा का निषेध नही किया और न ही परिवार को तोडने के पक्ष मे विचार व्यक्त किया, किन्तु जहाँ तक प्रेम का सम्बन्ध है, उसे वह सामाजिक बन्धन से मुक्त मानते रहे। काम और प्रेम को लेकर उनके साहित्य मे अनेकानेक समस्याएँ दृष्टिगत होती है। यह सत्य है कि विवाह मे प्रेम द्वारा जैनेन्द्र कुमार ने जीवन के एक महत्वपूर्ण सत्य की ओर दृष्टिपात किया, क्योकि इस सत्य को कोई नकार नही सकता कि विवाह के बाद पति–पत्नी का आकर्षण बाहर की ओर से पूर्णतया समाप्त हो जाता है और वे परिवार के घेरे मे बन्द हो जाते है। हम व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकते है कि विवाह के अनन्तर भी प्रेम की स्थिति बनी रहती है। यह बात दूसरी है कि वह काम के स्तर पर घटित होता हुआ न दिखाई दे। जैनेन्द्र कुमार ने जीवन की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि समस्याओ को व्यक्ति–सापेक्षता मे ही स्वीकार किया।

कथा साहित्य और दर्शन दोनो एक दूसरे से अलग हैं, परन्तु दार्शनिक चेतना की अभिव्यजना इसलिए होती है कि उसमे एक विशाल युग–जीवन के साथ–साथ मनुष्य के जीवन की व्याख्या ओर आलोचना होती है। इसके अलावा पात्रो के अपने विश्वास, तर्क, बौद्धिकता तथा आस्था मे कही–न–कही कथाकार का जीवन दर्शन अभिव्यक्त हो जाया करता है। जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य का प्रमुख तत्व नियतिवाद है। उनका कहना था कि हमको कर्म करना चाहिए, होगा वही जो होना है, इसे हम परिवर्तित नहीं कर सकते है। जैनेन्द्र कुमार का यह नियतिवाद गीता का कर्मवाद है। 'गीता' मे निराशावाद से भरी अकर्मण्यता के स्थान पर आशावाद युक्त कर्म मार्ग को नियतिवाद माना गया है। जैनेन्द्र कुमार के नियतिवाद तथा गीता–दर्शन मे साम्य है, जिसकी उनके कथा साहित्य मे व्यापक रूप

मे अभिव्यजना हुई है। वह नियतिवाद कही भोगवादी दर्शन की अभिव्यक्ति करता है तो कही भाग्यवाद के पर्याय के रूप मे आया है। इस प्रकार जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य की दार्शनिक चेतना परम्परानुमोदित भारतीय है।

जैनेन्द्र कुमार ने मनोवैज्ञानिक चेतना को भी अपने कथा साहित्य मे निरूपित किया। उन्होने पुरुष पात्रो की मनोवैज्ञानिक चेतना और नारी पात्रो की मनोवैज्ञानिक चेतना की विशद् व्याख्या की।

युग—चेतना कथाकार का एक ऐसा अस्त्र है जो कथा साहित्य के भावपक्ष और प्रतिपाद्य मे ही परिवर्तन नही लाता अपितु कथा साहित्य के प्रस्तुतीकरण—शिल्प मे भी नवीन परिवर्तन लाता है। प्रत्येक युग की परिस्थितियाँ और युग चेतना अपने विगत से भिन्न हुआ करती है, जिसकी अभिव्यक्ति का माध्यम पूर्णत मौलिक और अभिनव होता है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य का अवलोकन करने पर यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है। कथा साहित्य तो यथार्थ की अनुकृति है तथा युग चेतना का अनुगामी है, इससे कथा साहित्य अछूता नही रह सकता। जैनेन्द्र कुमार का कथा साहित्य स्वय इसका प्रमाण है। 'परख', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' 'अनन्तर' तथा 'सुनीता', शिल्पगत भावगत एव विचारगत परिवर्तनशील युगचेतना के प्रमाण हैं। उनकी भाव शैली उत्तरोत्तर यथार्थवादी, चित्रात्मक तथा नाटकीय होती गई। यही कारण है कि जैनेन्द्र कुमार के प्रस्तुतीकरण—शिल्प मे मौलिक परिवर्तन होता रहा है। भाषा—शैली मे मुहावरो, लोकोक्तियो, सूक्तियो तथा देशज शब्दो के प्रयोग से अद्‌भुत अभिव्यजनात्मक शक्ति आती गयी।

युग चेतना का वाणी विधान करना जैनेन्द्र कुमार का साहित्यिक धर्म था। युग परिवर्तनशील है। फलत जैनेन्द्र कुमार के साहित्य मे भाव परिवर्तित होते गये। साथ ही साथ वे बिना किसी पूर्व योजना के

कथा–साहित्य–सृजन करते थे। युग चेतना का इतना सशक्त और सरल कथाकार हिन्दी साहित्य मे दूसरा नही हुआ।

जैनेन्द्र कुमार की मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि का कथा साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पडा। उनकी कथा क्षीणता, चरित्रो को केन्द्रीय महत्व देना तथा उनके नाम पर कथा साहित्य का नामकरण करना, चरित्र–चित्रण मे मनोविश्लेषण की विधियो का प्रयोग करना – कुछ प्रमुख विशेषताएँ है – जो उन्होने परवर्ती कथा शिल्प को प्रदान की। जैनेन्द्र कुमार ने हिन्दी उपन्यासो को एक नयी दिशा दी। आज के विभिन्न उपन्यासो पर उनके प्रस्तुतीकरण–शिल्प का प्रभाव देखा जा सकता है।

जैनेन्द्र कुमार भाषा के स्तर पर व्याकरण सम्मत भाषा के आदी नही थे। इसलिए उनके कथा साहित्य की अभिव्यजकता मे व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग नही मिलता। वह अपने पात्रो के हृदयगत भावो के लिए वाक्य सरचनात्मकता का परम्परित रूप ग्रहण नही करते थे, क्योकि वे भाषा को भावो की अनुवर्तिनी मानते थे। पात्रो की जैसी भी आभावधारा होगी भाषा उसके अनुरूप ही स्वरूप ग्रहण करेगी – ऐसा उनका मानना था।

जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य पर तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा शिल्पगत युग चेतना का व्य।पक प्रभाव पडा है। उनकी सास्कृतिक चेतना मे बौद्धिकता का आग्रह है, जिससे सास्कृतिक धरातल पर अराजकता की स्थिति दिखायी पडती है। आज ऐसा लगता है कि सास्कृतिक विकास मे गतिरोध की स्थिति आ गई है। प्राचीन काल के शाश्वत जीवन मूल्यो की स्थापना नही हो पा रही है। जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य मे युग चेतना का सर्वांगीण चित्रण हुआ है। इसलिए वह युग चेतना के प्रतिनिधि कथाकार कहे जाते है।

अस्तु, निवेदन है कि प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे एक साहित्यकार का गवेषणात्मक विवेचन किया गया है, जो अबाध गति से साहित्य की रचना मे सलग्न रहा तथा जिसने हिन्दी साहित्य को बहुमूल्य निधियॉ प्रदान की। शोधकर्त्ता को विषय की मर्यादा का पालन करना आवश्यक था, अत कृतियो को ही समीक्षा हो सकी है। ऐसी स्थिति मे प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे निष्कर्ष की अपनी सीमाये है।

जैनेन्द्र कुमार का व्यक्तित्व एव कृतित्व विराट है, जिसे किसी निश्चित विषय सीमा या शीर्षक के अन्तर्गत समेट पाना सभव नही है। अत जैनेन्द्र कुमार के कथा साहित्य मे शोध एव विवेचन की अपार सभावनाऍ विद्यमान है। भावी शोधार्थियो के लिए प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध सदर्भ के रूप मे दिशा–निर्देश देने मे सहयोग प्रदान करेगा– इसी विश्वास के साथ यह शोध–प्रबन्ध विद्वज्जनो के समीक्षार्थ प्रस्तुत है।

सहायक ग्रंथ सूची

स ायक ग्रंथ सूची

हिन्दी ग्रंथ

1 इन्द्रनाथ मदान – आज के हिन्दी उपन्यास

2 उदयभानु सिह – तुलसी दर्शन मीमासा

3. ओम प्रकाश शर्मा – जैनेन्द्र के उपन्यासो का शिल्प

4 कमल विमल – काव्य विवेचन

5 कुसुम कक्कड – जैनेन्द्र का जीवन दर्शन

6 कैलाश वाजपेयी – आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प

7 गणेश पाण्डेय – हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियॉ (सम्पादित)

8 गोपाल दत्त सारस्वत – आधुनिक काव्य परम्परा तथा प्रयोग

9 घनश्याम मधुप – हिन्दी लघु उपन्यास

10. जैनेन्द्र कुमार – अनन्तर

11 जैनेन्द्र कुमार – अनामस्वामी

12 जैनेन्द्र कुमार – इतस्तत:

13 जैनेन्द्र कुमार – कल्याणी

14. जैनेन्द्र कुमार – काम प्रेम और परिवार

15. जैनेन्द्र कुमार – जयवर्धन

16. जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की कहानियॉ

17. जैनेन्द्र कुमार – जैनेन्द्र की प्रतिनिधि कहानियाँ

18. जैनेन्द्र कुमार – त्यागपत्र

19 जैनेन्द्र कुमार – परख

20 जैनेन्द्र कुमार – परिप्रेक्ष्य

21 जैनेन्द्र कुमार – प्रश्न और प्रश्न

22 जैनेन्द्र कुमार – प्रेम और विवाह

23 जैनेन्द्र कुमार – मथन

24 जैनेन्द्र कुमार – मुक्तिबोध

25. जैनेन्द्र कुमार – व्यतीत

26 जैनेन्द्र कुमार – विवर्त

27 जैनेन्द्र कुमार – समय और हम

28. जैनेन्द्र कुमार – समय, समस्या और सिद्धान्त

29 जैनेन्द्र कुमार – साहित्य का श्रेय और प्रेय

30 जैनेन्द्र कुमार – सोच विचार

31 जैनेन्द्र कुमार – सुखदा

32 जैनेन्द्र कुमार – सुनीता

33 देव राज उपाध्याय – आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान

34 देव राज उपाध्याय – जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

35 देव राज उपाध्याय – संस्कृति का दार्शनिक विवेचन

36. देव राज उपाध्याय – साहित्य चिन्ता

37 नगेन्द्र – आस्था के चरण

38. नन्ददुलारे वाजपेयी – आधुनिक साहित्य

39	नेमिचन्द्र जैन	— अधोसाक्षात्कार
40	पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	— हिन्दी कथा साहित्य
41	पन्ना द्विवेदी	— दिनकर के काव्य मे युगीन चेतना
42	प्रताप नारायण टंडन	— हिन्दी उपन्यासो में कथा साहित्य का विकास
43	प्रभाकर माचवे	— जैनेन्द्र के विचार
44	प्रेमचन्द	— साहित्य का उद्देश्य
45	प्रेम भटनागर	— हिन्दी उपन्यास शिल्प . बदलते परिप्रेक्ष्य
46	बैजनाथ प्रसाद शुक्ल	— भगवती चरण वर्मा के उपन्यासो में युग चेतना
47	भगीरथ मिश्र	— काव्य शास्त्र
48	मक्खन लाल शर्मा	— हिन्दी उपन्यास . सिद्धान्त और समीक्षा
49	मनमोहन सहगल	— उपन्यास कार जैनेन्द्र · मूल्याकन और मूल्यांकन
50	महावीर लोढा	— हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन
51.	महेन्द्र चतुर्वेदी	— हिन्दी उपन्यास · एक सर्वेक्षण
52	महेन्द्र भटनागर	— स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास (सम्पादित)
53.	रघुनाथ सरन झालानी	— जैनेन्द्र और उनके उपन्यास
54	रमेश तिवारी	— हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन
55.	राजेन्द्र प्रसाद	— साहित्य शिक्षा और संस्कृति

56. राधाकृष्णन – भारतीय दर्शन (प्रथम भाग)

57 रामचन्द्र तिवारी – हिन्दी का गद्य साहित्य

58 रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास

59 रामधारी सिह दिनकर – संस्कृति के चार अध्याय,

60 रामधारी सिह दिनकर – साहित्य मुखी

61 रामनाथ शर्मा – सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा

62. रामरतन भटनागर – जैनेन्द्र . साहित्य और समीक्षा

63 रामविलास शर्मा – प्रेमचन्द्र और उनका युग

64 लक्ष्मीकात शर्मा – जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोविज्ञानपरक और शैलीतात्विक अध्ययन।

65 लक्ष्मीकात वर्मा – नई कविता के प्रतिमान

66 लक्ष्मीनारायण लाल – हिन्दी कहानियो की शिल्प विधि का विकास।

67 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – पश्चिमी आलोचनाशास्त्र

68 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – बीसवीं शताब्दी–हिन्दी उपन्यास · नये सन्दर्भ

69 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियॉ

70. विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी – स्वतंत्रता और सस्कृति (अनुवादित)

71. सत्यपाल चुघ – प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्प विधि

72 सत्य प्रकाश मिलिन्द – जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व (सम्पादित)

73. सरनाम सिह शर्मा – साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा

74 सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास

75 सुषमा धवन – हिन्दी उपन्यास

76 त्रिभुवन सिह – हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद

77 हजारीप्रसाद द्विवेदी – अशोक के फूल

78 हजारीप्रसाद द्विवेदी – विचार और वितर्क

अंग्रेजी ग्रंथ

1 कैल्विन एस० हाल – इन्ट्रोडक्शन ऑफ साइक्लॉजी

2 क्रिस्टोफर काडवेल – स्टडीज इन ए डाइग कल्चर

3 ई० टाइलर – प्रिमिटिव कल्चर

4 गिलवर्ट मरे – दि क्लासिक ट्रेडिशन इन पोयट्री

5 एच०बी० रूथ – इंगलिश लिटरेचर आइडियाज इन दि ट्वेन्टीथ सेन्चुरी

6 हेवलॉक एलिस – साइक्लॉजी ऑफ सेक्स

7. जॉन लिविंग्सटन – कन्वेशन एण्ड रिवोल्ट इन पोयट्री

8 महात्मा गाधी – वोमेन एण्ड सोशल जस्टिस

9. एम० जे० हर्स कोविट्स – मैन एण्ड हिज वर्क्स

10 मैकाइवर एण्ड पेज – सोसायटी

11 आर०जी० कलिंगवुड – द प्रिसिपल ऑफ आर्ट

12. रिचर्ड स्टेंग – दि थ्योरी ऑफ नावेल इन इग्लैड

13. टी० एस० इलियट – आफ्टर स्टेन गॉड्स

कोश

1. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज (भाग–3)
2 मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खड)
3 हिन्दी विश्वकोश
4. हिन्दी साहित्य कोश – डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (सम्पादित)

पत्रिकाएं

1. आलोचना – उपन्यास अक – 73
2 कल्याण – हिन्दू संस्कृति विशेषाक
3 नई धारा – फरवरी, मार्च अक, वर्ष 1966
4 युग चेतना – मार्च अंक, वर्ष 1955
5 सचेतना – मार्च अंक, वर्ष 1970
6. सप्त सिंधु (मासिक) – सितम्बर अंक, वर्ष 1970
7. साप्ताहिक हिन्दुस्तान – 16 मार्च, वर्ष 1958
8 हस – सितम्बर अंक, वर्ष 1936